आत्म-बलिदान

['सरला की भाभी' का तीसरा भाग]

— इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रकाशक—

विजय पुस्तक भण्डार,

श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली.

मुद्रक

अर्जुन प्रिं

श्रद्धानन्द ब

विषय-सूची

आत्म-बलिदान

पहिला परिच्छेद

भूकम्प

[१]

१९३४ ईसवी के जनवरी मास की १७ वीं तारीख थी और प्रातःकाल का समय था। बिहार प्रांत के एक छोटे से गांव में एक किसान अपनी घरवाली से परामर्श कर रहा था। किसान का नाम था केदारा। आज सायंकाल मुंगेर शहर में उसकी रिश्तेदारी में एक शादी होने वाली थी। पति-पत्नी में विवाद्ग्रस्त विषय यह था कि उस शादी में जाते हुए दो साल की बच्ची कृष्णा को साथ ले जाया जाय या नहीं? कृष्णा लगभग एक सप्ताह से बीमार है। उसे एक दिन छोड़ कर जाड़ा बुखार आता है। आज सुबह पसीना आकर बुखार उतरा है। प्रश्न यह है कि बीमार बच्चे को लेकर शादी में जाना चाहिए या उसे

उसकी मौसी के पास जो पड़ोस में ही रहती है, छोड़ जाना चाहिए। केदारा की सम्मति थी कि बीमार बच्चे को साथ ले जाना ठीक नहीं, परन्तु उसकी स्त्री जोर दे रही थी कि बीमार बच्चे को छोड़कर जाना अनुचित है, इसलिए उसे साथ ले जाना चाहिए। बहुत देर तक दोनों व्यक्ति अपनी-अपनी सम्मति पर जमे रहे और अपने पक्ष के समर्थन में युक्तियां देते रहे। जब कोई सन्तोषजनक फैसला न हो सका तो केदारा जोर-जोर से चिल्लाने लगा, और फलतः उसकी घरवाली आंसू बहा-बहा कर रोने लगी। घरवाली के इस अंतिम हथियार से केदारा हार गया। उस ने हथियार डालते हुए कहा—

"अच्छा बाबा, ले चलो अपने साथ ही। तुम मानोगी थोड़े ही। बेचारी बच्ची को सफर में परेशान करके छोड़ोगी। जरा सी बात में क्लेश मचा कर रख दिया और नहीं तो, तुम्हारा तो कपार ही ऐसा बना है।"

इस प्रकार अपने [illegible] को झेंप को घरवाली के कपार की निन्दा द्वारा उतार कर केदारा मैदान से निकल गया। जाता हुआ कह गया कि "मैं अभी बैलगाड़ी लेकर आता हूं। तुम कपड़े लत्ते बाध कर तैयार रहो।"

केदारा की घरवाली ने कपड़ा लत्ता, चना-चबेना, और छोटा सा मोरिया-बंधना बाधकर मुंगेर जाने की तैयारी कर ली। मुंगेर उनके गाव से लगभग तीन मील दूर था। दिन चढ़े केदारा की बैलगाड़ी गाव से चली तो दोपहर से पहले ही मुंगेर पहुंची गई। शहर के गुंजान आबादी के एक हिस्से में केदारा का चचेरा भाई रहता था। उसकी लड़की की शादी थी। केदारा के भाई का घर छोटा सा था। एक बड़ी हवेली की निचली मंजिल में एक कोठरी, छोटा सा बरामदा, और बरामदे के एक हिस्से में बनी हुई एक छोटी सी रसोई—बस, केदारा के भाई के घर में इतनी ही जगह थी। गरीब भारतवासियों को इतने

ही मकान का नाम 'घर' रखना पड़ता है, और ब्याह शादी जैसे उत्सव भी उसी में कर लेने पड़ते हैं। उन दिनों केदारा के भाई का घर अगस्त मुनि का पेट सा बना हुआ था। जितने सम्बन्धी आते जा रहे थे, वह सब उसी में समा रहे थे। केदारा ने मुंगेर पहुंच कर, अपनी बैलगाड़ी सड़क के किनारे खड़ी कर दी, बैलों की रस्सी जुए से बांध दी और स्वयं परिवार सहित अगस्त के पेट में समा गया।

विवाह की रस्म उसी रात को होने वाली थी। दूल्हा मुंगेर का ही रहने वाला था, इस कारण बरात के ठहराने आदि का प्रबन्ध नहीं करना पड़ा। मण्डप उस मुहल्ले की धर्मशाला में बनाया गया था।

सुबह से ही घर के बाहर से आये हुए कुनबे के सब लोग काम में लग गये। मर्द, विवाह की तैयारी में व्यस्त हो गये और स्त्रियाँ रसोई के काम में लग गईं। ऐसे अवसरों पर रसोई का काम भी कुछ कम नहीं होता। गरीब से गरीब घर में भी एक भण्डारा सा लग जाता है। घर में कढ़ाई चढ़ी हो तो समझ लो कि यहाँ या तो कोई त्यौहार है या ब्याह शादी। साधारण हिन्दुस्तानी गृहस्थ की आधी बचत, विशेष अवसरों पर गर्म हुई भट्टी के अर्पण हो जाती है। केदारा के भाई के घर पर भी आज भट्टी गरम हो रही थी।

दोपहर तक काम की धूमधाम रही। उसके बाद मेहमानों का भोजन आरम्भ हुआ। खूब शोर-शार और गड़बड़ के साथ, अतिथियों का भोजन समाप्त हुआ तो घरवाले खाना खाने लगे। उस समय केदारा के भाई का वह छोटा सा घर उस गागर का रूप धारण कर रहा था, जिसमें सागर बन्द हो। उस छोटे से कमरे और छोटे से बरामदे में सब मिलाकर चौंतीस प्राणी विद्यमान थे। बूढ़े, जवान और बच्चे सभी आयु के व्यक्तियों का स्वर उस कोलाहल में सम्मिलित था, जिससे एक उत्सववाला घर गूंजना चाहिए।

केदारा अपने हमजोलियों के साथ बरामदे में बैठा हुक्का पी

रहा था। उसकी घरवाली बच्चे के साथ कोठरी में लेटी हुई उसे सुलाने की चेष्टा कर रही थी। इतने में उसे भूमि हिलती हुई सी प्रतीत होने लगी। उसने आंख खोल इधर उधर देखा तो कोठरी की और चीजें भी डोलती हुई दिखाई दीं। कोठरी के कोने में कुछ छड़े एक दूसरे के ऊपर रखे हुए थे, वह लुढ़क गये। खूंटी पर छाज टंगी हुई थी, वह नीचे गिर गई। वह बेचारी घबरा कर उठी कि बाहर झांक कर इस उथल-पुथल का कारण मालूम करे। बच्ची सो गई थी, उसे वहीं छोड़ कर वह दरवाजे तक गई ही थी कि दूसरा धक्का आया जो पहले धक्के से भी जोर का था। उस धक्के के साथ ही एक बहुत प्रचण्ड और भयानक शब्द आकाश में गूंजने लगा। मकान ऐसे झूमने लगे जैसे आंधी में दृक्ष झूलती है। एक क्षण भर के लिए केदारा की बहू भी उसी तरह झूमने लगी। उसने दरवाजे से बाहर देखने की चेष्टा की, पर कुछ दिखाई न दिया। गिरते हुए मकानों से उड़ती हुई गर्द ने सारे आकाश को व्याप्त कर लिया था। दोपहर की धूप के सम्पर्क से वह लाल लाल गर्द,—आग सी होकर अंतरिक्ष में फैल गई थी। केदारा की घरवाली इतना ही देख सकी, क्योंकि उसी समय ऊपर से एक भारी गर्डर उसके सिर पर आ गिरा और वह बेहोश होकर नीचे गिर गई।

वह बिहार का प्रसिद्ध भूकम्प था। उस भूकम्प के भयानक परिणामों को देखकर बहुत से लोग पूछते थे कि यदि कोई ईश्वर नाम की ताकत है, तो उसने बिहार के भूकम्प जैसा भयंकर कांड क्यों होने दिया? इस प्रश्न का उत्तर वही दे सकते हैं जिन्होंने भूकम्प से नष्ट-भ्रष्ट बिहार को देखा हो। ईश्वर ने वह काण्ड मनुष्य का मान-मर्दन करने के लिए किया था। जिसे मनुष्य सैदियों में नहीं बना सकता उसे भूकम्प ने क्षणों में तबाह कर दया। जिन नदियों में जहाज चल रहे थे, वह ऐसे सूख गईं कि कुछ समय के लिए यह मानना भी

कठिन हो गया कि वहां कभी पानी था भी, और नदियों से दूर शहरों और गांवों में, घरों के अन्दर और बाजारों में भूतल से फव्वारे छूट पड़े और नदियां बहने लगी। सैकड़ों मील के खेत, जिनमें लहलहाती खेती खड़ी थी गजों गहरे पानी के नीचे आगये। अभ्रंलिह अट्टालिकाएं जमीन में धंस गईं और गढ़ों की मिट्टी उछल उछल कर खण्डरात के ढेरों पर जा पड़ी। मनुष्यों और पशुओं का जो संहार हुआ, उसकी तो गणना कठिन है। जिसे मनुष्य अमर समझ कर बनाता और उसके बल पर अपने को शक्तिशाली मानता है, उस माया को ईश्वर का एक छोटा सा धक्का क्षण भर में नष्ट कर सकता है। वह खण्ड प्रलय अभिमानी मनुष्य के लिए एक चेतावनी थी। मालूम नहीं मनुष्य ने उस पर ध्यान दिया या नहीं।

उस अभूतपूर्व भूकम्प से बिहार प्रांत की जो हानि हुई, उसका वर्णन करना इतिहास लेखक का काम है, हम तो यहाँ इतना ही बतलाकर आगे चलते हैं कि केदारा और उसकी बहू दोनों मुंगेर के उस चौमंजिले मकान के नीचे दब कर मर गये, मानों कजा ही उन्हें गांव से शहर खींचकर लाई थी। उनकी दो वर्ष की बच्ची कृष्णा का क्या हुआ यह तब तक नहीं बताया जा सकता, जब तक हवेली का सारा मलवा उठा कर उस कोठरी तक न पहुंचा जाय, जिसमें वह सोयी पड़ी थी। इस कार्य के लिए बहुत मदद चाहिए।

[२]

जब अगले दिन प्रातःकाल समाचारपत्रों में, बिहार के रोमांचकारी समाचार छपे, तब देश भर में कुहराम मच गया। भारतवासियों ने ऐसा अनुभव किया मानो उनके शरीर पर चाकू चल गया हो। ऐसे लोगों को छोड़कर, जिन्हें अपने सुख-चैन के सिवाय और किसी चीज की चिन्ता नहीं, शेष सब जानकार लोगों के हृदयों में, बिहार के भूकम्प-पीड़ित लोगों के प्रति सहानुभूति की एक हूक सी उठ खड़ी हुई, जिससे

प्रेरित होकर वह लोग यह सोचने लगे कि हम बिहार के निवासियों की क्या सहायता कर सकते हैं ?

भूकम्प के समाचारों से देश भर में जो तड़पन पैदा हुई, वह इस बात की निशानी थी कि देश का सामूहिक शरीर चेतन है, मरा नहीं है। शरीर के एक भाग में कांटा चुभे और सारा शरीर बेचैन हो जाये तो समझ लो कि उसमें चेतना की उग्र धारा बह रही है। बिहार की खबरों ने भी देश में वैसी ही बेचैनी उत्पन्न कर दी थी।

भूकम्प के दो दिन पीछे की बात है। अन्य बड़े बड़े नगरों की भांति बनारस में भी एक विराट् सार्वजनिक सभा हुई। उस सभा के सभापति एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता थे। सभा में अनेक प्रस्ताव स्वीकार किये गये। उनमें से मुख्य प्रस्ताव का आशय यह था कि बिहार के भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए स्वयंसेवक भेजे जायं, धन एकत्र किया जाय और इस योजना को पूरा करने के लिये एक सहायक-समिति बनाई जाये। सभा में जब बिहार से आये हुए विस्तृत समाचार सुनाये गये तो श्रोताओं के दिल द्रवित हो गये और उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। जन और धन की सहायता मांगने पर, जनता ने दिल खोल कर दान दिया। एक लाख के लगभग चन्दे का वायदा उसी समय हो गया। लगभग दो दर्जन व्यक्तियों ने सेवा-कार्य के लिये अपने नाम लिखाये।

स्वयंसेवक सम्बन्धी अपील की जो प्रतिक्रियायें हुईं, वह स्वयंसेवक बनने वालों की मनोवृत्तियों के अनुसार तरह-तरह की थीं। मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिये वह बहुत मनोरंजक थी। एक खद्दरधारी बुजुर्ग हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। सभापति ने पूछा, "कहिये महाशय जी, क्या बात है ?" महाशय जी ने उत्तर दिया—"प्रधानजी ! मेरा नाम बिहार जाने वाले स्वयंसेवकों में लिख लो ?" एक चौदह साल का लड़का भीड़ को चीरता हुआ सभापति के पास पहुंच कर कहने

लगा—"मैं भी बिहार जाऊंगा।" सभापति ने उसे मेज पर खड़ा करते हुए श्रोताओं को सूचना दी कि यह वीर बालक भी सेवा के लिए बिहार जाना चाहता है। इस पर सभा तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठी। उसी समय एक युवती महिला खद्दर के कपड़े पहने और हाथ में खद्दर का झोला लटकाये सभापति की कुर्सी के पास जाकर खड़ी हो गई और कुछ बोलने की इच्छा प्रगट की। सभापति ने आज्ञा दे दी। महिला ने बड़े जोरदार शब्दों में भूकम्प की भीषणता का वर्णन किया, और सभा को सूचना दी कि वह आज ही बिहार की सेवा के लिए रवाना होने को तैयार है। इस घोषणा का सभा ने "महात्मा गांधी की जय" के नारों से स्वागत किया। उन नारों की प्रतिध्वनि अभी शान्त न होने पाई थी कि सभा के एक कोने से, एक युवक-कण्ठ की जोरदार गर्जना सुनाई दी, "सभापति महोदय! मैं आज बल्कि अभी बिहार के लिए प्रस्थान करने को तैयार हूँ। वहा जाने में देर का कोई काम नहीं। मैं आज रात की गाड़ी से पटना के लिए चल दूंगा। मुझे अभी निर्देश मिलना चाहिये कि मैं किस महानुभाव से मिल कर अपने कार्यक्रम का निश्चय करूं, और जो कोई स्वयंसेवक आज ही मेरे साथ जाने को तैयार हों वह मुझे सभा के अन्त में मिल लें।"

इस वीरतापूर्ण घोषणा ने सारी सभा का ध्यान उस युवक की ओर आकृष्ट कर दिया। सब उधर ही देखने लगे। देखा कि एक लम्बे कद का खूब हृष्ट-पुष्ट जवान कुर्सी पर खड़ा है। उसके सिर के लम्बे-लम्बे बाल कन्धों को छू रहे हैं। कपड़े सब मोटे खद्दर के हैं। हाथ में तकली है।

सभापति ने नौजवान से पूछा "आप का नाम क्या है?" नौजवान ने उत्तर दिया—"मेरा नाम रामनाथ तिवारी है।" सभापति ने फिर कहा—"आप सभा की समाप्ति पर मुझ से मिलियेगा। यदि संभव हुआ तो आज ही आपके जाने का प्रबन्ध कर दिया जायगा।"

नौजवान ने ऊंचे स्वर से घोषणा की, "जनाब-ए-सदर, मैं तो आज पटना के लिए अवश्य ही रवाना हो जाऊंगा। इस में अगर-मगर की कोई गुंजायश नहीं है। देश का काम तुरन्त होना चाहिए, ढील ढाल से काम न चलेगा।"

इस पर आकाश 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की गर्जना से गूंज उठा। बहुत से लोगों ने "रामनाथ तिवारी की जय" का नारा भी लगाया।

[३]

सभा की समाप्ति पर बिहार के भूकम्प की अपेक्षा भी रामनाथ तिवारी की चर्चा अधिक थी। यह जनता की मनोवृत्ति की एक विशेषता है कि सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यक्ति उसके मन पर अधिक गहरा असर रखते हैं। वह सिद्धान्तों को व्यक्तियों के रूप में देखती है, व्यक्तियों को सिद्धान्तों के रूप में नहीं। सभा से उठते हुए सब लोग एक दूसरे से पूछ रहे थे कि "यह रामनाथ तिवारी कौन है?" श्रोताओं पर उसकी बुलन्द आवाज, मजबूत शारीरिक गठन, अपने को आगे लाने का साहसपूर्ण ढंग और अधीर सेवाभाव का बहुत तीव्र असर हुआ था।

यहां रामनाथ तिवारी का संक्षिप्त-सा परिचय दे देना आवश्यक है। तिवारी परिवार का मूलस्थान मिर्जापुर था। वहां से उसके उत्साही वंशज युक्त-प्रांत के अनेक शहरों में फैल गये थे। रामनाथ के पिता देवकुमार तिवारी बनारस के जिले में तहसीलदार का काम करते थे। नौकरी से रिटायर होकर बनारस से लगभग २५ मील की दूरी पर एक गांव में कुछ जमींदारी खरीद कर वहीं बस गये। उनके तीन लड़के थे और दो लड़कियां। रामनाथ उनका मंझला लड़का था। रामनाथ का बड़ा भाई चन्द्रनाथ मध्यम प्रकृति का दुनियादार आदमी था। ज्यों-ज्यों पिता बूढ़े होते गये, चन्द्रनाथ उनके जमींदारी-सम्बन्धी कार्य को सम्भालता गया। वह अपने पिता के अनुरूप था। सरकारी नौकर न होता हुआ भी वैसी मनोवृत्ति से चलता था। अफ़सरों से मिल कर

रहता था, किसानों पर खूब सख्तियां करता था और अड़ोस-पड़ोस के जमींदारों से थोड़ी बहुत मुकद्दमेबाजी जारी रखता था।

रामनाथ का छोटा भाई स्कूल में पढ़ता था। वह पढ़ाई में बहुत होशियार और होनहार लड़का समझा जाता था। रामनाथ को उसके पिता ने इस संकल्प से स्कूल में बिठाया था कि उसे बहुत-सा पढ़ा लिखा कर सरकारी नौकरी में डालेंगे। उनका विचार था कि एक सरकारी पैंशनर के वशंज के लिये सबसे बड़ी बात यही हो सकती है कि वह ऊंचे दरजे की सरकारी नौकरी तक पहुंच जाये। यदि तहसीलदार का बेटा तहसीलदार बन गया तो पुत्र, यदि डिप्टी कलेक्टर बन गया तो सुपुत्र और अगर थानेदार ही बन सका तो कुपुत्र समझा जाये। सरकारी नौकरों की यही मनोवृत्ति है। देवकुमार तिवारी भी इसी मनोवृत्ति का एक नमूना था। वह रामनाथ को सुपुत्र बनाना चाहता था।

परन्तु किसी कवि ने ठीक कहा है— "हमरे मन कछु और है, विधना के कछु और।" विधना ने प्रारम्भ से ही देवकुमार के मनसूबों को तोड़ना आरम्भ कर दिया। रामनाथ की प्रवृत्तिया सरकारी नौकरी—और शायद हर प्रकार की नौकरी—के विरुद्ध थीं। वह बचपन से ही विद्रोही समझा जाने लगा था। मां उसे बहुत प्यार करती थी, जैसे प्रायः प्रत्येक मां अपने शरारती बच्चे से करती है। रामनाथ मा को बहुत तंग करता था, आसानी से किसी आज्ञा का पालन नहीं करता था, जैसे हर एक लाडला बच्चा किया करता है। शरारती लाडला बच्चा मां के या बाप के हृदय की निर्बलता को पहचान जाता है और उससे पूरा लाभ उठाता है। रामनाथ भी घर में अपनी मां के मोहसे पूरा लाभ उठाता था, जिस हठ पर अड़ जाता था उसे करा कर छोड़ता था।

उसे स्कूल भेजकर पिता ने सन्तोष का सांस लेते हुए कहा था कि कम से कम दिन भर तो घर में चैन रहा करेगा, परन्तु देवकुमार

की यह आशा भी पूरी नहीं हुई। कई महीनों तक रामनाथ की यह दिन-चर्या रही कि घर से स्कूल के लिये जाकर गांव के लड़कों के साथ खेतों में आवारा-गर्दी करता और दो चार घण्टे के पश्चात् घर आकर ऊधम मचाने लगता।

जैसे तैसे दस साल में रामनाथ ने आठ श्रेणियां पास कीं। दो वर्ष अधिक लगने का यह कारण नहीं था कि उसमें पढ़ने की बुद्धि नहीं थी प्रत्युत यह था कि ठीक परीक्षा के दिनों में उसका यह विचार हो गया कि पढ़ने की अपेक्षा खेलना अधिक अच्छा है। एक साल तो वह परीक्षा देने गया ही नहीं और दूसरे साल आधे परचे करके मामा के यहाँ भाग गया जो वहाँ से दस कोस पर रहते थे। सोलह वर्ष की आयु में रामनाथ को बनारस के एक हाईस्कूल में प्रविष्ट कराया गया। रहने का प्रबन्ध स्कूल के बोर्डिंग हाउस में किया गया था। बनारस पहुंच कर रामनाथ की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को खूब खुलकर खेलने का अवसर मिला। जवानी की उम्र, बोर्डिंग का स्वच्छन्द वायुमण्डल, बनारस का वातावरण और उग्र स्वभाव—"एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्" इनमें से एक एक ही नौजवान को उच्छृंखल बनाने के लिये पर्याप्त होता है फिर यहाँ तो चारों एकत्र हो गये थे। मानों करेले पर नीम का छौंक लग गया हो। रामनाथ कुछ महीनों में ही स्कूल के उद्दण्ड और उपद्रवी लड़कों का अगुआ समझा जाने लगा।

रामनाथ प्रायः स्कूल का काम करके नहीं ले जाता था। पढ़ाई का काम करने के समय वह या तो खेल के मैदान में दिखाई देता अथवा ताश की बाजी लगा रहा होता था। यदि अध्यापक ने कुछ सख्त सुस्त कहा तो अगले दिन अध्यापक की कुर्सी में या तो पिनें लगी हुई दिखाई देती थीं अथवा अध्यापक के आने से पहले ब्लैक-बोर्ड पर गालियों की भेंट धरी हुई मिलती थी। इस पर जो सजा दी जाती, उसे रामनाथ चुपचाप सह लेता और फिर अधिक उत्साह से अपनी

आवारा-गर्दी की प्रक्रिया जारी कर देता ।

बबूल बोकर आम के फल कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं? रामनाथ भी नवीं कक्षा की वार्षिक परीक्षा में फेल होगया। पिता का दृढ़ संकल्प था कि रामनाथ को कलेक्टर बनाया जाये। अगले साल उसे सहायता देने के लिये एक ट्यूशन लगायी गयी। बेचारे मास्टर की भी बड़ी मुसीबत थी। वह देवकुमार का पुराना परिचित था। उसे पढ़ाने के लिये रामनाथ के पीछे पीछे फिरना पड़ता था, प्रत्येक सप्ताह रामनाथ स्कूल के साथ ही साथ ट्यूशन की भी कई बार नागा कर देता था। परन्तु ट्यूटर साहब भी बहुत ही परिश्रमी और अड़ियल आदमी थे। रामनाथ को परीक्षा के लिये तैयार करके ही छोड़ा। परीक्षा के दिनों में प्रतिदिन रामनाथ को वह परीक्षा के हाल तक छोड़ कर आते थे ताकि कहीं गोता न मार जाये।

यह किस्सा चार साल तक जारी रहा, इन चार सालों में रामनाथ ने नवीं और दसवीं कक्षाओं की परीक्षा पास की। रामनाथ के इतिहास का पूरा वर्णन करने के लिये इतना बतला देना और आवश्यक है कि इन चार सालों में उसे हैडमास्टर की ओर से जो दण्ड मिले उनकी संख्या लगभग एक दर्जन थी। उनमें से कुछ दण्ड लड़कों की हड़ताल कराने के अपराध में मिले, कुछ दण्ड इस कारण मिले कि स्कूल में अन्य लड़कों को पीट दिया था, और दो बार इसलिए दण्डित होना पड़ा कि पढ़ाने वाले मास्टरों को पीटने की धमकी दी।

इस तरह हवा के झोंकों और पानी की लहरों से लड़ती झगड़ती रामनाथ की किश्ती किसी तरह स्कूल नदी से पार हुई।

उस समय रामनाथ की अवस्था २० वर्ष की थी। उसके पिता की इच्छा थी कि रामनाथ को बी० ए०, एल० एल० बी० परीक्षा पास करा कर डिप्टी कलेक्टरी के योग्य बनाये। यह उसकी महत्वाकांक्षा की

चरम सीमा थी। इधर रामनाथ ने सिद्धांतरूप से यह घोषणा कर दी थी कि अधिक पढ़ने लिखने में उसका कोई विश्वास नहीं हैं। वह इस परिणाम पर पहुंच चुका था कि ऊंची शिक्षा प्राप्त करने से मनुष्य का दिमाग गुलाम हो जाता है। पिता ने बहुत यत्न किया कि बेटे को ग्रेजुएट बनाने का श्रेय प्राप्त करे पर बेटा सब श्रेय स्वयं ही लेना चाहता था। उसका दावा था कि हाईस्कूल में चार साल तक रह कर उसने इतनी योग्यता प्राप्त कर ली है कि जितनी एक साधारण एम० ए० पास में नहीं होती। पिता ने कालिज में फीस भी दाखिल कर दी और दरख्वास्त भी दे दी; दोनों ही चीजें व्यर्थ गईं, क्योंकि बेटा उन दिनों प्रतिवाद के तौर पर कलकत्ते चला गया था।

जब देवकुमार को यह निश्चय हो गया कि लड़का न ग्रेजुएट बनेगा और न डिप्टी कलेक्टर, तो उसने उसके लिये कोई छोटी सरकारी नौकरी तलाश करनी आरम्भ की। बहुत दिनों की भागदौड़ के पीछे कलेक्टरी में एक नौकरी का पता चला। देवकुमार ने तहसीलदारी के समय का अपना सारा रसूख व खुशामद की सम्पूर्ण कला का प्रयोग करके रामनाथ के लिए वह नौकरी मंजूर करवा ली। हाकिम ने तो नौकरी देना मंजूर कर लिया, परन्तु रामनाथ के दरबार में मंजूरी नहीं हुई। पिता ने बहुत समझाया-बुझाया, नाराजगी दिखाई, भूखे रहने की धमकी दी परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में रामनाथ की मां मैदान में आई। उसने भूख-हड़ताल कर दी। रामनाथ अपनी मां से बहुत प्यार करता था। मां के भूखे चेहरे और आंसू भरी आंखों से वह परास्त हो गया। उसने नौकरी से पूरी घृणा प्रकट करते हुए, इस घोषणा के साथ नौकरी स्वीकार कर ली कि दुनिया में वह मालिक पैदा नहीं हुआ जो मुझसे नौकरी ले सके, फिर भी मां का दिल रखने के लिए वह जूआ अपने कन्धे पर रख लेता हूँ।

जो काम ऐसे शुभ-संकल्प से प्रारम्भ किया गया हो उसके पूर्ण

होने की सम्भावना ही क्या थी। रामनाथ की नौकरी सब मिलाकर चार दिन चली। पहले दिन उसने दफ्तर में जाकर अफसर को यह सूचना दी कि मैं आ गया हूँ, कल से काम पर लगूंगा। दूसरे दिन काम संभाला, तीसरे दिन रजिस्टर और अन्य कागज अफसर के सामने रखकर कहा—जनाब, यह रजिस्टर बिल्कुल निकम्मे और गलत तरीके पर बनाये गये हैं, फार्म भी अधूरे हैं, इन्हें बदलना चाहिये। अफसर बहुत पुराना और अनुभवी आदमी था। उसने आश्चर्य से रामनाथ के मुंह की ओर देखकर यह जानने का यत्न किया कि इसके होश तो ठिकाने हैं। उस तीखी दृष्टि से कुछ उत्तेजित होकर रामनाथ ने पूछा "आप मेरे मुंह की ओर क्या देख रहे हैं? मैंने जो बात कही उसका जवाब दीजिये।" इस पर नाराज होकर अफसर ने ऊंचे स्वर में कहा—"जाओ, इन कागजों को यहाँ से उठा ले जाओ। तुम्हें अभी समझने में बहुत दिन लगेंगे, अभी अपना काम करो।"

अफसर ने जो बात कही, वह रामनाथ की भावना और सिद्धान्तों से बिल्कुल उल्टी थी। उसे निश्चय था कि उससे अधिक अक्लमन्द आदमी भूमण्डल पर पैदा नहीं हुआ है। उसने तमतमा कर जवाब दिया "अजी साहब! आप मुंह सम्भाल कर बोलिये, मैं काम करने आया हूँ, बेइज्जत होने नहीं आया।"

इसके बाद जो कुछ हुआ वह एकदम शायद दो मिण्टों में ही हो गया। अफसर अपने अधिकार के मद में था, उसने रामनाथ की गुस्ताखी से उत्तेजित होकर मेज पर पड़ा हुआ रूल उठाते हुए कहा—"मेरे सामने से एकदम हट जाओ, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।" इस पर रामनाथ आपेसे बाहर हो गया। उसने चिल्लाकर कहा, "जिस नौकरीमें ऐसे बददिमाग लोगों से वास्ता पड़े उसे मैं लानत भेजता हूँ।" जब तक दफ्तर के और आदमी रामनाथ को रोकने के लिए आये तब तक वह साइकिल पर सवार होकर कलक्टरी से बाहर जा चुका था। इस प्रकार

रामनाथ का नौकरी का तमाशा चार दिन में समाप्त हो गया और उसके साथ ही उसके बूढ़े पिता की सुनहरी आशायें भी चकनाचूर हो गईं।

कालिज और नौकरी दोनों से आजाद होकर रामनाथ इस दुविधा में पड़ गया कि अब क्या करे ? आज की सार्वजनिक सभा ने उसकी भटकी हुई नौका को मानों दिशा दिखला दी। बिहार-भूकम्प के रोमांचकारी समाचार सुनकर उसकी अन्तरात्मा ने उससे कहा कि यह क्षेत्र तेरे योग्य है। उसने आवाज को सुना और छलांग लगा दी।

[४]

जब रामनाथ पटने की गाड़ी पर चढ़ने के लिये स्टेशन पर पहुंचा तो वहाँ कई सौ आदमियों की भीड़ को एकत्र पाया। ये सब लोग स्वयंसेवकों को पटने के लिये विदा करने आये थे। कुछ और स्वयंसेवक भी स्टेशन पर पहुंचे हुए थे। जनता की ओर से रामनाथ का और अन्य स्वयंसेवकों का विधिपूर्वक अभिनन्दन किया गया और उनके गलों में फूलों के हार पहनाये गये। रामनाथ नें स्टेशन पर पहुंचते ही स्वयंसेवकोंके जत्थे की कमान स्वयं ही संभाल ली। कहते हैं, शेर को जंगल का राजा बनाने के लिये कोई विधि-विधान दरकार नहीं है। कुछ साहस चाहिये और कुछ हिमाकत। रामनाथ को भी जत्थे की लीडरी किसी ने विधिपूर्वक अर्पण नहीं की।। उसे उसने स्वयं ही झपट कर पकड़ लिया और रेल के डिब्बे के खुले दरवाजे में खड़े होकर बुलन्द आवाज से जनता का धन्यवाद करते हुए उन्हें आश्वासन दिया कि हम सब आपके भेजे हुए स्वयंसेवक बिहार-पीड़ितों की जी-जान से सेवा करेंगे। हम ऐसा कोई काम न करेंगे जिससे आपको लज्जित होना पड़े, प्रत्युत हमारे कार्यों से बनारस के यश को चार चांद लग जायेंगे।

इस वीर घोषणा पर स्टेशन तालियों की गड़गड़ाहट और जय-कारों से गूंज उठा। उसी समय इंजिन ने सीटी दी और गाड़ी चल दी।

जत्था ब्राह्ममुहूर्त में ही पटना पहुंच गया। स्टेशन से वे लोग सीधे कांग्रेस के कार्यालय में पहुँचे। कार्यालय उस समय बन्द था। एक आदमी पहरे पर था, उसने उन्हें पड़ोस की एक धर्मशाला का रास्ता दिखाते हुए कहा कि अभी आप लोग वहां आराम कीजिये। दफ्तर खुलने पर आइयेगा।

रामनाथ के कानों में अभी बनारस के स्टेशन का जयकारा गूंज रहा था। वहां की वैसी विदाई और यहाँ का ऐसा रूखा स्वागत—रामनाथ को पहले तो यह बात बहुत ही अखरी परन्तु और कोई उपाय न देखकर वे लोग धर्मशाला में चले गये।

रास्ते में और धर्मशाला में पहुंचकर लोगों की जो दशा उन्हें दिखाई दी वह ऐसे मनुष्य की सी थी जिसे तेज बुखार के कारण डिलीरियम हो गया हो। प्रायः मकान भूकम्प मे टूटे पड़े थे। जो टूटने से बच गये थे वह भी खाली पड़े थे क्योंकि लोग फिर भूकम्प के आने के भय से घरों के अन्दर सोने की अपेक्षा सड़क के किनारे लेटना पसन्द करते थे। रात के समय हर पांच मिनट के पश्चात् हल्ला होता था, "भूडोल आया, भूडोल आया" और लोग इधर-उधर भागने और अपने इष्टदेव का नाम स्मरण करने लगते थे। फलतः बनारस के जत्थे को भी धर्मशाला के बाहर सड़क के किनारे ही प्रातःकाल की सर्दी के घण्टे काटने पड़े।

दिन चढ़ने पर रामनाथ फिर कांग्रेस के दफ्तर के दरवाजे पर जा पहुंचा। उस समय दो एक अधिकारी भी आगये थे। रामनाथ से यह जानकर उन्होंने हर्ष प्रकट किया कि बनारस से स्वयंसेवकों का जत्था आया है। रामनाथ के यह पूछने पर कि अब हमारे लिये क्या आदेश है, अधिकारी ने उत्तर दिया कि यह तो राजेन्द्र बाबू के आने पर ही कहा जा सकेगा। रामनाथ के अधीर स्वभाव को यह उत्तर अच्छा न लगा, तो भी वह 'बहुत अच्छा' कहकर शहर की दशा देखने के लिये

चला गया। घण्टे भर में लौट कर आया तो दफ्तर में चहल-पहल की मात्रा बढ़ चुकी थी। दसों खद्दरधारी महानुभाव काफी उत्तरदायित्व-पूर्ण चेहरे बनाये हुये इधर-उधर घूम रहे थे। रामनाथ के पूछने पर फिर उत्तर मिला "अभी राजेन्द्र बाबू नहीं आये। उनके आने पर ही कुछ कहा जा सकेगा।" इस बार भी रामनाथ को यह उत्तर बहुत अप्रिय मालूम हुआ। यह राजेन्द्र बाबू कैसे हैं जिनके बगैर कोई काम ही नहीं होता और मुझे भी उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ रही है। प्रतीक्षा की बात रामनाथ को बहुत ही अखरी।

जब दिन के लगभग ग्यारह बजे भी वहाँ जाने पर वही उत्तर मिला कि 'राजेन्द्र बाबू के आने पर ही 'कुछ कहा जा सकेगा' तब तो रामनाथ के मन में एक प्रकार का विद्रोह खड़ा होगया। किसी दूसरे को अपने से बड़ा मानना या दूसरे की प्रतीक्षा करना यह दोनों ही बातें रामनाथ के स्वभाव के विरुद्ध थीं। वह प्रत्यक्ष में तो इतना बुड़बुड़ाया कि राजेन्द्र बाबू कैसे हैं जो अबतक नहीं आये, परन्तु मन में यह संकल्प कर लिया कि मिलने पर इस राजेन्द्रबाबू की शान निकाल दूंगा।

इस बार रामनाथ बाहर नहीं गया और दफ्तर के दरवाजे के अन्दर ही एक चटाई पर बैठ कर राजेन्द्र बाबू के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने बैठे-बैठे अपने विद्रोही मन में राजेन्द्र बाबू की एक कल्पित तस्वीर खींची। उस तस्वीर में एक खूब मोटे-ताजे पले हुए व्यक्ति की कल्पना की गई थी। उसकी मूछें चढ़ी हुई थीं और हाथ में एक छड़ी थी। अकड़कर चलता था, और डांटकर बोलता था। ऐसे राजेन्द्रबाबू की मानसिक कल्पना करके रामनाथ मन ही मन उससे लड़ाई भी लड़ रहा था। इतने में उसने देखा कि दरवाजे में बहुत सी भीड़ एक साथ घुसी आरही है। चारों ओर शोर मच गया कि राजेन्द्र बाबू आरहे हैं। भीड़ रामनाथ के सामने से होकर दफ्तर के बड़े कमरे में चली गई। इस भीड़ के आगे मोटी काली पट्टी का कोट पहने, बड़ी बड़ी देहाती मूंछों

वाला, दुबला-पतला लम्बा आदमी चला जा रहा था। उसके सिर पर सफेद खद्दर की टोपी ऐसे ढंग से रखी हुई थी कि सिर का अगला हिस्सा बिल्कुल नंगा था। पांव में जो मोटी मोटी काली जुराबें थीं वह टांगों से बहुत अधिक फैली हुई होने के कारण जूतों पर लटक रही थीं। उस आदमीके साथ-साथ वह भीड़ भी अन्दर चलीगई और उसमें राम-नाथ के कल्पित राजेन्द्र बाबू कहीं दिखाई न दिये तो उसने एक खद्दर-धारी से पूछा, "अभी राजेन्द्र बाबू नहीं आये क्या ?" उसने उत्तर दिया "अरे, वह राजेन्द्रबाबू नहीं थे तो कौन थे ?" रामनाथ ने पूछा—"कौन से ?" उत्तर मिला—"वही जो सबसे आगे आगे जा रहे थे।"

"बस यही राजेन्द्र बाबू थे, जिनके लिए मुझे इतनी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी"—यह सोच कर रामनाथ को कुछ बुरा भी लगा और हंसी भी आई। उसने अखबारों में बिहार के लीडर बाबू राजेन्द्र-प्रसाद का नाम बहुत बार पढ़ा था परन्तु वह 'नाम बड़ा और दर्शन छोटे' के ऐसे ज्वलन्त दृष्टान्त होंगे इसकी कल्पना भी नहीं की थी। अपनी ओर देख कर और राजेन्द्र बाबू के रंग-ढंग से अपनी तुलना करके उसे प्रतीत होने लगा कि वह यदि चाहे तो आसानी से भारत का प्रख्यात लीडर बन सकता है।

वह भावना की ऐसी तरंगों में तैर रहा था जब कमरे के अन्दर से आकर एक स्वयंसेवक ने उससे पूछा "क्या आप ही बनारस से आये हैं ?" रामनाथ ने उत्तर दिया—"जी हां।" "चलिए आपको राजेन्द्रबाबू ने बुलाया है"—यह कह कर स्वयंसेवक आगे आगे चला, और रामनाथ उसके पीछे। अंदर जाकर रामनाथ ने देखा कि कार्यालय के कमरे में बहुत भीड़ लगी हुई है। फर्श पर चटाई बिछी हुई है जिस पर बहुत से काले कम्बल डालकर बैठने की जगह बनाई गयी है। बीच में राजेन्द्र बाबू बैठे हैं और चारों ओर खद्दरपोशों की भीड़ जुटी हुई है। भीड़ में ही एक कोने पर एक कुर्सी रखी हुई थी, जिस पर एक ठाठ-

बाट के एक हिन्दुस्तानी साहब बैठे हुए थे। पूछनेपर रामनाथको मालूम हुआ कि वह बिहार सरकार के मिनिस्टर सर सच्चिदानन्द सिन्हा हैं, जो राजेन्द्र बाबू से बात करने आये हैं। उस खद्दरधारी जमघट में बेचारे सर साहब बेजोड़ ही दिखाई देते थे। स्वयंसेवकों की बातें खतम हों तो राजेन्द्र बाबू सर साहब की बातें सुनें। बेचारे कुर्सी पर बैठे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दुबले-पतले दमे के मरीज, राजेन्द्र बाबू को स्वयंसेवकों के घेरे में बिल्कुल सादगी से बैठा हुआ और दसों प्रश्न करने वालों के प्रश्न सुनकर धैर्यपूर्वक उत्तर देते हुए देखकर रामनाथ का वह सारा क्रोध, जो उसने कई घण्टों की प्रतीक्षा में सचित किया था, काफूर हो गया। उसका सिर राजेन्द्र बाबू की बच्चों की सी सादगी और बूढ़ों की सी धीरता के सामने अनायास ही झुक गया।

[५]

रामनाथ के जत्थे को आदेश मिला कि वह मुंगेर जाकर वहां काम करने वाले कांग्रेस कैम्प के अध्यक्ष की सेवा में उपस्थित हो, और उनके आदेशानुसार कार्य करें। प्रांत का एक परिचित स्वयंसेवक उनके साथ मार्गदर्शक के तौर पर भेजा गया। जत्थे ने स्टीमर द्वारा गंगा को पार किया। दूसरे पार स्वयंसेवकों का एक जत्था काम कर रहा था। उनकी सहायता से बनारस के जत्थे के लोग रेल के स्टेशन पर पहुँचे। वहां कुछ घण्टों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। रात के समय गाड़ी मिली, जिसने उन्हें प्रातःकाल मुंगेर पहुँचा दिया। पटना से लेकर मुंगेर तक जहां-कहीं से भी वे गुजरे उन्हें वही खण्ड प्रलय का सा दृश्य दिखलाई दिया। रेल के स्टेशन टूटे पड़े थे। पक्की इमारतें ढेर हो गई थीं। पक्के रास्तों में जगह-जगह दो-दो फुट चौड़ी दरारें पड़ गईं थीं। बेघर और अनाथ स्त्री और बच्चे सड़कों के किनारे पड़े हुए थे। नाश के ये रोमाँचकारी दृश्य देखते और हृदय

द्रावक वृत्ताँत सुनते हुए वे लोग जब मुंगेर पहुंचे तब अनुभव किया कि उन्होंने अब तक जो कुछ सुना व देखा है वह कुछ भी नहीं है। मुंगेर के सर्वनाश के सामने पटना या उसके आस-पास के स्थानों का नाश उपहास-मात्र था। मुंगेर शहर का सर्वनाश हो गया था। जहाँ किसी दिन चार-चार पाँच-पाँच मंजिल की अट्टालिकाएं आकाश को छू रही थीं, वहाँ इस समय केवल ईंट और पत्थर के ढेर पड़े हुए थे। यह कहना भी कठिन था कि उन ढेरों के नीचे कितने प्राणी मरे पड़े हैं और कितने अभी सिसक रहे हैं।

उस आपद्ग्रस्त नगरी में कई प्रकार की सेवा दरकार थी। जो लोग जीवित थे उनके सिर छिपाने के लिए कोई जगह नहीं थी। कड़ाके की सरदी पड़ रही थी, हजारों पुरुष और बच्चों को बिना ओढ़न के खुले आकाश के नीचे रातें काटनी पड़ती थीं। घर नष्ट हो गये थे। खेतों में प्रायः पानी भर गया था, जिससे भोजन की समस्या बहुत विकट रूप में खड़ी हो गई थी। जीवन को धारण किए रहने के लिए जितनी वस्तुओं की आवश्यकता हो सकती है, प्रकृति के एक धक्के ने उन सभी से बिहार के लाखों निवासियों को वंचित कर दिया था। यह कार्य तो था जीवित प्राणियों के लिए। जो लोग मकानों के नीचे दब गये थे उनके सम्बन्ध में तो पूरी जानकारी भी प्राप्त नहीं हो सकी थी। उसके लिए खँडहरों को खोदना और उन में से जीवित, अर्धजीवित और मरे हुए मनुष्यों को निकालना सबसे आवश्यक परन्तु सबसे कठिन कार्य था। काँग्रेस शिविर के अध्यक्ष ने रामनाथ के सामने सब प्रकार के सेवा-कार्य रखते हुए पूछा कि आप इन में से कौन सा कार्य पसन्द करते हैं ? जो कार्य आप लोगों को रुचिकर हो वही आपको दे दिया जायेगा। उत्तर में रामनाथ ने कहा "जिस कार्य को आप सबसे कठिन समझें वही हम लोगों को दे दीजिये। हम लोग सेवा का कठिन कार्य करने आये हैं, शौक पूरा करने नहीं।" इस उत्तर से अध्यक्ष महोदय बहुत प्रभावित हुए, और गिरे हुए

मकानों को खोदने और मृतकों को निकालने का काम बनारस के जत्थे के सुपुर्द कर दिया।

खुदाई का काम मुख्य रूप से सरकारी प्रबन्ध में होरहा था। सेना और पुलिस के सिपाही भी स्वयंसेवकों के साथ मिल कर उस कठिन काम में लगे हुए थे। रामनाथ जिस मण्डली में सम्मिलित हुआ उस में लगभग एक सौ आदमी थे—आधे सिपाही और आधे स्वयंसेवक थे। खुदाई का काम मुख्य रूप से मजदूर लोगों से कराया जाता था। लाशों को सिपाही लोग निकालते थे और खुदाई से निकली हुई चीजों के सम्भालने का काम स्वयंसेवक करते थे।

[६]

अगले दिन रामनाथ ने खुदाई के जत्थे के साथ काम आरम्भ कर दिया। शहर से बाहर एक बड़े रईस का बंगला था। जिस समय भूकम्प आया, घर के अधिकतर लोग बंगले में ही थे। पहले धक्के में मानो चेतावनी मिली। दीवारें डोलने लगीं और घर के लोग चौकन्ने होगये। कुछ आदमी बंगले के बाहर निकल आये। वह धक्का कुछ क्षण में ही शाँत हो गया। बिहार प्राँत का पर्दा तो मशहूर ही है, जान चली जाये पर कुलीन स्त्री का चेहरा न खुलना चाहिए। चेतावनी मिलने पर भी सब स्त्रियाँ घर में ही रहीं। हाँ, राम का नाम अवश्य जपने लगीं। परन्तु राम उस समय मनुष्यों के पापों पर प्रकुपित हो रहे थे। कुछ क्षण पश्चात ही दूसरा प्रलयंकर धक्का आया और तबाही मचा गया। जमीन फट गई जिस में बंगले का अधिक भाग समा गया। कोठी का सारा मर्दाना हिस्सा उसके अन्तर्गत चलागया। मालिक लोग उसीमें थे, वे सब पृथ्वी के गर्भ में विलीन हो गये। अन्तःपुर का वह भाग, जिस में घर की स्त्रियाँ थीं, जमीन में नहीं धंसा, परन्तु उसकी दीवारें और छतें गिर गईं। कोठी के अहाते में कुछ अस्तबल, गेराज और नौकरों के रहने के आउट-हाउस थे, वे सब बच गये। यह भी विधाता की उस माया का एक

नमूना था, जिसे आस्तिक लोग "प्रभु की इच्छा" के नाम से पुकारते हैं और नास्तिक लोग "प्रकृति की मनमानी" के नाम से। नाम कोई रखो, सचाई इतनी है कि यह संसार की वह उलझी हुई गाँठ है जिसे मनुष्य की बुद्धि आज तक नहीं सुलझा सकी।

दूसरे दिन सेवा-दल एक ऐसे मोहल्ले में पहुँचा जिसमें भूकम्प से पूर्व सड़क के एक ओर तीन तीन चार-चार मंजिल की इमारतें थीं और दूसरी ओर गरीबों के एकमंजिले मकान थे। वहाँ जाकर देखा तो प्रकृति की मनमानी के कई और चमत्कार दिखाई दिये। ऊंची इमारतों की सारी पंक्ति पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी, एक भी मकान साबुत नहीं बचा था और सड़क के दूसरी ओर गरीबों के प्रायः सब मकान पूर्ववत् खड़े थे। एक हलवाई की स्त्री ने अपनी करुण कहानी सुनाई—जब भूकम्प का धक्का अनुभव हुआ, उस समय हलवाई और उसकी बड़ी लड़की दुकान में काम कर रहे थे। धक्का अनुभव करते ही वह राम-राम करते हुए दुकान से बाहर निकल कर सड़क पर खड़े हो गये। हलवाई की स्त्री अपने छोटे बच्चे के साथ अन्दर की कोठरी में सो रही थी, उसने उठकर बाहर भागना चाहा पर दरवाजे में ही चक्कर खाकर गिर पड़ी। इतने में प्रकृति ने अपनी मनमानी कर डाली। सामने की पंक्ति की चारमंजिली इमारत झोंका खाकर सड़क पर आ गिरी। सड़क पर खड़े हुए, राम राम जपते हुए अन्य बीसियों आदमियों के साथ हलवाई और उसकी लड़की मलबे के नीचे दब कर सदा के लिए सोगये। उधर हलवाई की कच्ची झोंपड़ी जैसे की तैसी खड़ी रही। जब हलवाइन को होश आया तो उस बेचारी ने देखा कि उसका और शहर का सर्वनाश हो चुका है।

उस मोहल्ले के उद्धार का काम बहुत सख्त था। ऊंची-ऊंची इमारतों में प्रायः गरीब लोग किराये पर रहते थे, एक एक मकान में दो दो सौ आदमियों का गुजारा चलता था। उद्धार करने वालों का जिधर

हाथ पड़ता था उधर लाश मिलती थी। जो लोग भूडोल के समय काम पर गये हुए थे, उन्हें छोड़ कर शेष सब घरों में काम-काज में लगे हुए थे या सोरहे थे। उन में से बहुत कम आदमी बाहर निकल सके। एक बूढ़े आदमी ने सेवा-दल वालों को खुदाई का काम आरम्भ करते देख कर कहा था, "अरे भाई! कहाँ तक गड़े मुर्दों को निकालोगे। यहाँ तो हर ईंट के नीचे एक लाश है।" इन सब कठोर सचाइयों को सुन और देख कर भी स्वयंसेवक लोग निरुत्साहित नहीं हुए, प्रत्युत अधिक उत्साह से आस्तीनें चढ़ा कर उद्धार के कार्य में लग गये।

[७]

उस दिन सेवादल का काम बहुत ही कठिन और हृदयद्रावक रहा। ईंट पत्थर और मिट्टी का वह विशाल ढेर जिधर से कुरेदा गया उधर ही लाशों के ढेर मिले। एक एक कोठरी में पांच पांच, सात सात व्यक्ति दब गये थे।

जब ऊपर की दो तहें खुद चुकीं और उन में से लाशें तथा अन्य सामान निकाला जाचुका तो एक अद्भुत घटना हुई। खोदने वालों ने अनुभव किया कि नीचे से कोई आवाज आरही है। भूकम्प को आये छः दिन हो चुके थे। चौमजिला मकान बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट होकर ईंट और मिट्टी का ढेर होचुका था। उसकी निचली सतह से मनुष्य के बच्चे की सी आवाज की भनक सुनकर खोदने वाले मजदूर एकदम घबरा गये। उन्हें प्रतीत हुआ, मानो पृथ्वी के गर्भ में से कोई भूत बोल रहा है। उन्होंने दो तीन बार बड़े ध्यान से उस शब्द को सुना, फिर डरी हुई आंखों से एक दूसरे की ओर देखा। जब उन्होंने अनुभव कर लिया कि सब के दिल में एक ही भाव है तो फावड़े और कुदाले छोड़ कर खड़े होगये और आपस में गोष्ठी करने लगे। पहले ने कहा—
"तुम ने भी सुना, कुछ आवाज है?"

दूसरे ने दबी जबान में कहा—"आवाज तो मैंने भी सुनी है, पर वह है किस की?"

तीसरा बोला—"यह भी कुछ पूछने की बात है! यहां कौन जीता हुआ बच्चा बैठा है। यह तो साफ ही भूत की आवाज है।"

यह वाक्य कहते हुए वक्ता का स्वर थरथरा गया था। सबके चेहरों की हवाइयां उड़ रही थीं। "भूत" की भावना ही साधारण व्यक्ति को बदहवास कर देती है। यहां तो स्पष्ट स्वर सुनाई दे रहा था। पहले ने डरे हुए स्वर में पूछा—"अब क्या करना चाहिए? अब तो इस मकान में हम से खुदाई नहीं होगी।"

दूसरा सहमति प्रकट करता हुआ बोला—"यह तो ठीक ही है। भूतों के घर में पांव कौन दे। खोदना तो क्या यहां तो खड़े होने में भी भय है!"

तीसरे ने व्यवस्था दी—"चलो अफसर से कहें, यहां हम लोग काम नहीं करेंगे। जान-बूझ कर भूत के मुंह में कौन जाये!"

प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया और दस बारह मजदूर मिल कर अफसर के पास पहुंचे। अफसर एक ईसाई सिविलियन था। वह मलबे में से निकले हुए सामान की सूचि बना रहा था। मजदूरों को सामने खड़ा देख कर कुछ आश्चर्यित हो कर उनकी ओर देखने लगा। जब दो-तीन मिनट तक वह कुछ न बोले तो उसने पूछा—"क्या है? तुम लोग काम क्यों नहीं करते?"

जिसे हम तीसरे नम्बर का मजदूर कहते आये हैं वह सब में समझदार समझा जाता था। उसने मुखिया बनकर कहा—"सरकार, इस मकान के नीचे "वह" है।" भूत का नाम लेते भी उसे डर लगता था। अफसर ने अधीरता से पूछा— "वह कौन?" सब मजदूर एक दूसरे का मुंह देखने लगे। 'वह' का नाम कौन ले? एक ने कहा—"हजूर वही जो टूटे हुए मकानों में बोला करता है।" अफसर का

धैर्य टूटने लगा, वह खड़ा हो गया और डांट कर बोला—"क्या उल्लू से डर गये ?"

अब तो विचारे मजदूरों को उत्तर देना ही पड़ा। तीसरे नम्बर के मजदूर ने दबी आवाज से कहा—'सरकार उल्लू नहीं, नीचे से भूत बोल रहा है।' इस पर अफ़सर को हंसी आगई। उसने वहां काम करने वाले अन्य सरकारी आदमियों और स्वयंसेवकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा—"सुनिये तो इन लोगों की बात, ये बेवकूफ़ कहते हैं कि इस मकान के मलबे के नीचे से भूत के रोने की आवाज आ रही है। उस से डर कर इन्होंने काम भी छोड़ दिया।"

अफ़सर की बात सुनकर सब लोग इकट्ठे होगये। किसी के दिल में उत्सुकता पैदा हुई तो किसी के दिल में डर उत्पन्न हुआ। प्रेरक कारण अनेक थे, परन्तु फल एक ही हुआ कि सब ने मिलकर कहा—"कहां ?" और सब लोगों सर्वसम्मति से भूत की आवाज सुनने के लिये उस ओर चल दिये, जहां खुदाई का काम हो रहा था।

खुदाई के स्थान पर पहुंच कर सब लोग बैठ गये और झुककर जमीन पर कान लगा कर सुनने का यत्न करने लगे। उन लोगों ने आश्चर्य से सुना कि एक ऐसी जगह से, जहां छोटा सा सुराख बना हुआ था, बच्चे के रोने की सी आवाज सुनाई दे रही थी। आवाज निरन्तर नहीं आती थी, थोड़ी देर रुककर फिर आने लगती थी, बीच बीच में काफी समय के लिए रुक जाती थी। कुछ देर ठहरकर फिर आने लगती थी, जिस से प्रतीत होता था कि जिसकी आवाज है उस में निरन्तर रोने की शक्ति नहीं है।

भूकम्प को आये छः दिन हो चुके थे। आज सातवां दिन था, यह तो कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि छः दिन तक उस चौमंजिली हवेलीके खंडहरोंके नीचे प्राणी जीवित रह सकता था। ऐसी दशामें यही एक कल्पना संभव हो सकती है कि कोई भूत या प्रेत रो रहा हो। सुनने

वाले आश्चर्यचकित नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखने लगे, मानो एक दूसरे से पूछ रहे हों कि अब क्या करना चाहिए ? सब सोच रहे थे और सब ही चुप थे।

उस चुप्पी को भंग करते हुए रामनाथ ने कहा—"आप लोग क्या सोच रहे हैं ? इस जगह की खुदाई फौरन होनी चहिये। मनुष्य हो या भूत, उस तक पहुंचने में अब देर न लगनी चाहिये।"

"सो तो ठीक है पर खुदाई करे कौन ? मजदूरों ने तो जवाब दे दिया है।" यह बात कई मुखों से एकबार ही निकली।

"खुदाई का काम मैं करूंगा, आप में से जो लोग भूत से न डरते हों वे आगे बढ़ें और मेरे साथ खुदाई के काम में सहयोग दें।" यह कहते हुए रामनाथ ने कुदाला उठा लिया और खोदना आरम्भ कर दिया। इस दृष्टान्त से प्रभावित होकर पहले एक, फिर दो, इसी तरह २०-२५ स्वयंसेवक खोदने के काम में लग गये।

[८]

खुदाई का काम करने वाले स्वयंसेवकों में से एक स्वयंसेवक ने रामनाथ से कहा :

"रामनाथ बाबू ! आपका क्या विचार है ?"

रामनाथ ने अपने फावड़े को रोक कर कहा--"मेरा यह विचार है कि यह किसी बच्चे का शब्द है। आप क्या समझते हैं, बलधारीसिंह जी ?" बलधारीसिंह पटना के एक नवयुवक वकील थे। दो तीन वर्ष से कांग्रेस में कार्य कर रहे थे। आपने उत्तर दिया—"हो सकता है आपका ख्याल ही ठीक हो, परन्तु क्या आप समझते हैं कि हम उस बच्चे को जीवित निकाल सकेंगे ?"

"क्यों नहीं निकाल सकेंगे ? मेरा तो ख्याल है कि हम यदि बराबर लगे रहे तो आज शाम तक इस इमारत की तह तक पहुंच जायेंगे और बच्चे को बचा लेंगे।"

"मुझे तो यह सम्भव नहीं मालूम होता। क्यों न दूसरी इमारतपर काम शुरू कर दिया जाये। कल तक संम्भव है यह आवाज आनी बन्द हो जाये और इस मलवे को मजदूरों से उठवाया जा सके।"

"यह आप क्या कह रहे हैं बा० बलधारीसिंह ! जीवित बच्चेको बचाना हमारा फर्ज है और वह आज ही पूरा हो सकता है।"

यह कहकर रामनाथने फिर फावला चलाना जारी करदिया। इस बात-चीत का इतना ही असर हुआ कि रामनाथ के हाथ की प्रगति तेज हो गई। उधर बलधारी बाबू अनमने से होकर केवल रिवाजी तौर पर फावड़ा चलाने लगे जिससे प्रतीत होता था कि उनका दिल उस काम में नहीं है; परन्तु लोक लाज के कारण हट भी नहीं सकते। शेष कार्यकर्ताओं पर रामनाथ के बढ़े हुए उत्साह का बिजली का सा असर हुआ, जिससे वह सब चौगुने वेग से काम करने लगे।

निचले तल्ले से शब्द रह-रह कर सुनाई देता था। कभी कभी देर तक बन्द रहता था। फिर जब प्रारम्भ होता था तो पाँच-पाँच, दस दस मिनट तक चलता था। जब रोने का शब्द रुक जाता तब बलधारी बाबू अपनी विजय प्रकट करने वाली दृष्टिसे रामनाथ की ओर देखने लगते थे। उनका अभिप्राय यह होता था कि "मैंने क्या कहा था!" जब आवाज फिर सुनाई देने लगती थी तब वह आंख फेर कर दूसरी ओर देखने लगते थे मानो वह सुन ही नहीं रहे। रामनाथ ने देखा सब कुछ, परन्तु बोला कुछ नहीं। वह खुदाई के काम में और अधिक वेग से लगा गया।

अन्त में स्वयंसेवकों का परिश्रम सफल हुआ। अभी पूरी तरह शाम न हुई थी कि वह इमारत की सबसे निचली छत तक पहुंच गये। उसको सावधानता से ठोक-बजाकर देखने से अनुभव हुआ कि उसके नीचे के कुछ हिस्से में पोल है। प्रतीत होता था उतनी जगह छत का कुछ भाग गिरने से बच गया है, जिससे नीचे अवकाश बना रह गया है। शब्द उसी में से आरहा था।

खुदाई का काम बन्द कर दिया गया और नीचे जाने का मार्ग तलाश किया जाने लगा। थोड़ी सी छान-बीन करने से एक कोने में सीढ़ियों के चिन्ह मिल गये। सीढ़ियों पर गिरे हुए मलवे को उठा देने से बिचले पोल में जाने का मार्ग बनानेमें कुछ कठिनाई अवश्य हुई, परन्तु सरकारी इंजीनियर की मदद से मार्ग साफ हो गया और नीचे देखना और जाना सम्भव प्रतीत होने लगा।

रास्ता खुलने पर ऊपर से देखने वालों ने नीचे जो कुछ देखा वह बिहार-भूकम्प के चमत्कारपूर्ण दृश्यों में से शायद सबसे बड़ा चमत्कार था। उन्होंने देखा कि छत से गिरते हुए गर्डर फर्श पर ऐसे ढंग से पड़े हैं कि त्रिकोण का आधार फर्श पर है और सिर छत के साथ लग गया है जिससे उस कोठरी के अन्दर एक छोटी सी तिकोनी कोठरी बन गई है। ऊपर से जो मलवा गिरा उसने उस तिकोनी कोठरी को खाली छोड़ दिया है। कोठरी की पिछली ओर खिड़की भी उस तिकोनी कोठरी में ही आ गई है। उस छः सात फीट लम्बी और इतनी ही चौड़ी कोठरी के बीचों-बीच एक स्त्री पड़ी हुई थी। ऊपर से देखने पर यह प्रतीत होता था कि या तो वह मर गई है अथवा बेहोश है। उसकी छाती पर एक छोटा सा बच्चा पड़ा हुआ था। वह रह रह कर हाथ-पाँव मारता और रोता था। चारों ओर सर्व नाश का साम्राज्य था जिसके गर्भ में जीवन का वह चिन्ह भगवान के चमत्कार के सिवाय और क्या हो सकता था।

अब यह प्रश्न उठा कि उस खतरनाक तिकोने में घुसकर माँ-बच्चे का उद्धार कौन करे। तिकोने के अन्दर घुसने में प्राण जाने का भय तो था ही। स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था कि उन गार्डरों पर तीन मंजिलों का बोझ लदा हुआ है। जरा सी ठोकर से ही वह तिकोनी कोठरी ढह सकती है। तब उसके अन्दर कौन प्रवेश करे। सब कार्यकर्ता जिनमें सरकारी और गैरसरकारी दोनों तरह के सज्जन शामिल थे, एक दूसरे का मुंह देखने लगे। सबको चुप देखकर रामनाथने आगे बढ़कर अपने आप

को पेश करते हुए कहा "मैं अन्दर जाऊंगा।" बलधारीसिंह रामनाथ के पास ही खड़ा था। उसे रामनाथ का इस प्रकार आगे बढ़ कर वीरता प्रदर्शन करना अच्छा नहीं लगा। उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो रामनाथ ने उससे बाजी मारने के लिए ही अपना नाम पेश किया हो। बलधारीसिंह ने रामनाथ का हाथ पकड़ते हुए कहा 'भाई यह क्या करते हो? ऐसी जगह घुसना सेफ नहीं है। तुम तो खतरे में पड़ोगे ही और सबको भी मुसीबत में डालोगे।' रामनाथ पर इस सावधानताभरी सलाह का कोई असर नहीं हुआ उल्टा वह और भी उग्र होकर बोला "रहने दीजिए आप अपनी सलाहको। मैं अब देर नहीं करसकता अन्यथा, शायद अन्दर जाना भी बेकार हो जायेगा—"यह कहते हुए रामनाथ सीढियों से उतरनेके लिए नीचे की ओर झुका।

दो तीन सीढी नीचे उतरकर रामनाथ ने अनुभव किया कि काम सचमुच बहुत खतरनाक है। सीढियों पर ईंटों के ढ़ेर पड़े हुए थे जो पांव रखते ही लुढ़कने लगते थे। पग पग पर गिरने की आशंका रहती थी। ईश्वर-विश्वास जैसी वस्तु ने रामनाथ के हृदय में स्थान नहीं पाया था, परन्तु संकल्प की दृढ़ता उसमें पुष्कल थी। जो मन में आजाता उसे करके छोड़ता था। जिसे धुन के नाम से पुकारा जाता है रामनाथ उसी की प्रेरणा से काम करता था। उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उन सीढ़ियों से नीचे उतरना मौत से खेलने के समान है, तो भी बच्चे की प्राण-रक्षा की धुन में वह बहुत सम्हल कर नीचे उतरता गया। दो एक जगह पांव डगमगाये परन्तु रामनाथ ने धैर्य नहीं छोड़ा। नीचे पहुंच कर उसने देखा कि बच्चे की माँ बिल्कुल अचेत हालत में भूमि पर पड़ी है और बच्चा उसकी छाती पर लेटा हुआ सिसकियां ले रहा है। अब उसके गले से रोने का शब्द अच्छी तरह नहीं निकल रहा था। वस्तुस्थिति को देखकर वह इस निश्चय पर पहुंच गया कि वह केवल बच्चे को उठा कर ऊपर ले जाने की चेष्टा कर सकता है। उसने नीचे पहुँचते ही बच्चे को गोदी में उठा लिया, उसकी अचेत पड़ी हुई माँ को एक विवश-

ताभरी करुण दृष्टि से देखा और ऊपर की ओर वापसी यात्रा आरम्भ कर दी। नीचे जाना जितना कठिन था, बच्चे को गोद में लेकर ऊपर चढ़ना उससे भी अधिक कठिन था। रामनाथ को वस्तुतः फूंक-फूंक कर हरेक पाँव रखना पड़ा। कार्य कठिन था परन्तु ईश्वर को बच्चे की रक्षा अभीष्ट थी। आकाश में अन्धकार छाने से पहले रामनाथ बच्चे को गोद में लेकर ऊपर आ पहुँचा। वह तो उस चक्रव्यूह में से निकल गया, परन्तु दो बार पाँव पड़ने से सीढ़ियों की दशा और भी अधिक बिगड़ गई। सन्ध्या-काल भी सिर पर आगया था। इस कारण उद्धार का कार्य उस समय बन्द कर देना पड़ा। रामनाथ बच्चे को कंधे से लगाकर कांग्रेस के सेवा-शिविर की ओर चल दिया।

यहाँ यह बतला देना अप्रासङ्गिक न होगा कि बलधारीसिंह को रामनाथ की सफलता अणुमात्र मात्र भी अच्छी नहीं लगी। वह हर कदम पर यही सोचता रहा कि रामनाथ का पाँव फिसलेगा और वह अपने दुःसाहस का फल पायेगा। वैसा कुछ भी नहीं हुआ। रामनाथ काम पूरा करके वापिस लौट आया, यह देखकर बलधारीसिंह को जो पीड़ा हुई, उसे डाह का परिणाम ही कह सकते हैं। बलधारीसिंह की यह विशेषता थी कि वह अन्दर के भावों को बाहर के परदे में बड़ी सफलता से छुपा सकता था। रामनाथ के ऊपर आने पर जिस व्यक्ति ने उसका सब से पहले और सब से जोरदार स्वागत किया, वह बलधारीसिंह था।

[६]

हमने किदारा की घरवाली को छत से गिरे हुए लोहे के गार्डर की चोट खाकर बेहोशी की हालत में कोठरी के फर्श पर गिरते हुए छोड़ा था। भूचाल के धक्के से जो गार्डर गिरा उसका एक कोना छत में फंसा रह गया और दूसरा फर्श पर आकर टिक गया। केदारा की घरवाली के सिर पर उसी की चोट लगी थी। गार्डर के पृथ्वी पर टिक जाने का यह असर हुआ कि छत का कुछ भाग जहां का तहां टिका

रह गया। इस तरह टूटे हुए चौमंजिले मकान की निचली सतह में दैव का बनाया हुआ एक छोटा सा सुरक्षित कमरा बन गया। पिछवाड़े की ओर एक खिड़की थी। उससे हाथ भर की दूरी पर दूसरी हवेली गिरी थी। दैव के बनाये हुए उस कमरे में दैव ने ही हवा का रास्ता भी बना दिया था।

केदारा की बहू को जब होश आया तो उसने आश्चर्य से चारों ओर देखा तो उसे प्रभु का अद्भुत चमत्कार दिखाई दिया। सर्वनाश के उस व्यापक दृश्य में केवल दो ही प्राणी सुरक्षित दिखलाई दे रहे थे, एक वह स्वयं और दूसरा उसका बच्चा। बच्चा अपनी चारपाई पर आराम से सोया पड़ा था। बचपन के जीवन की उपमा कवि लोग राजाओं और महाराजाओं के जीवनों से दिया करते हैं, वस्तुतः वह हीनोपमा ही है। बच्चों जैसी निश्चिन्तता तो शायद प्रभु को भी नहीं होगी। उस खण्ड-प्रलय के हाहाकार में गहरी नींद में सोना बच्चे का ही काम था। होश आने पर केदारा की बहू ने सबसे पहला काम यह किया कि बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया।

बच्चे को गोद में लेकर किदारा की घरवाली बाहर निकलने का मार्ग तलाश करने लगी। जब सब रास्ते बन्द पाये तो जोर-जोर से चिल्लाने लगी। जब चिल्ला कर थक गई तो बहुत-सा रोई। जब रोने धोने की भी शक्ति न रही तब सोचने लगी कि जीवित रहने का क्या उपाय किया जाये। प्राणी की सबसे प्रबल नैसर्गिक इच्छा जीवित रहने की है। उसके लिये वह अपने दिल और दिमाग की सारी शक्ति लगा देता है। जो काम साधारणतः असम्भव मालूम होते हैं, जान बचाने के लिये प्राणी उन्हें अनायास ही कर डालता है। जीवनेच्छा की प्रेरणा से केदारा की बहू ने रोना-धोना छोड़ कर उस विनाश के घर में जीवन की सामग्री जुटानी शुरू कर दी।

उसके दैवनिर्मित घोंसले में जीवन की कुछ उपयोगी चीजें बच

गई थीं। आटा, दाल, चावल आदि खाद्य पदार्थ इतनी मात्रा में पड़े हुए थे कि एक आदमी तीन-चार दिन तक गुजारा कर सके। लकड़ी भी थी और दियासलाई भी, इस तरह कुछ दिनों तक जीवित रहने का उपाय विद्यमान प्रतीत होता था। परन्तु जब उसका ध्यान पानी के घड़े की ओर गया तो वह कांप गई। घड़ा पानी से केवल आधा भरा हुआ था। पानी पीने को भी चाहिये और रसोई बनाने को भी। पानी के बिना शेष सब चीजें बेकार थीं। अस्तु जो कुछ भी था, उसी के सहारे पर केदारा की घरवाली ने अपनी जीवन-यात्रा का प्रबन्ध आरम्भ किया।

मां पर दो का बोझ था—अपना और बच्ची का। स्वयं जीवित रहना और छाती का दूध पिलाकर बच्ची को जीवित रखना, और वह भी पूरे भोजन और पानी के बिना—यह बहुत ही दुष्कर कार्य था। असाधारण मितव्यय और सावधानता बरत कर केदारा की बहू ने तीन दिन तक उस आधे घड़े पानी को चलाया। चौथे दिन घड़ा खाली होगया। अब तो मां के लिये बच्चे को दूध पिलाना कठिन होने लगा। अन्न के बिना जीया जा सकता है, पानी के बिना नहीं। इसलिए पानी को अमृत कहते हैं। पानी के बिना पांचवें दिन मां को निराहार रहना पड़ा। स्वयं तो निराहार रही परन्तु जब बच्ची ने दूध मांगा तब मन और शरीर की सारी शक्ति लगाकर उसे शांत करने की चेष्टा करने लगी। वह संतान के लिये मां का सबसे ऊंचा स्वार्थ-त्याग था। भोजन और पानी के अभाव में मां ने इच्छा शक्ति से अपने शरीर के रुधिर को दूध के रूप में परिवर्तित करके बच्चे को जीवित रखने का यत्न किया। इस आशा से कि ईश्वर का हाथ सहायता के लिये पहुंचता ही होगा वह बेचारी दो दिन तक बच्चे की प्राण-रक्षा के लिये अपनी जीवन-शक्ति समर्पण करती रही। छटे दिन तेल के जल जाने से जीवन का दिया बुझने लगा। केदारा की बहू शक्तिहीन होकर लेट गई।

बच्ची उसके पेट पर लेट कर मां के स्तनों में से दूध लेने का यत्न करने लगी। उसी दिन उस मकान की खुदाई का काम जारी हुआ था। अब तक मां ने अपना जीवन अर्पण करके बच्चे को जीवित रखा था। अब वह भी असम्भव हो गया। किदारा की बहू को रह-रह कर बेहोशी आने लगी। वह अनुभव करने लगी कि मृत्यु का हाथ उसके बहुत समीप आगया है। अब कुछ घण्टों की ही देर है।

बच्ची में अभी इतनी जीवन-शक्ति विद्यमान थी कि वह रो सके। जब बहुत यत्न करने पर भी मुंह में दूध नहीं आता था, तब वह रोने लगती थी और जब रोने पर भी मां नहीं बोलती थी और न दूध देती थी तो और अधिक जोर से रोने लगती थी। जब रोते-रोते थक जाती तब कुछ देर के लिये चुप होजाती। यह रोने की आवाज थी जिसे सुनकर मजदूरों ने समझा था कि भूत बोल रहे हैं। जिस समय रामनाथ वहां पहुंचा था उस समय मां का जीवन-प्रदीप बुझ चुका था और बच्ची का टिमटिमा रहा था। यदि रामनाथ को आधे घण्टे की भी देर हो जाती तो वह छोटा सा टिमटिमाता दीपक भी गुल हो गया होता।

[१०]

कांग्रेस के शिविर के साथ एक रक्षागृह बनाया गया था जिसमें अनाथ स्त्रियों और बच्चों को स्थान दिया जाता था। यह रक्षागृह अस्थायी था क्योंकि इसमें दो-तीन दिन से अधिक समय तक शरणार्थियों को रखने की गुंजाइश नहीं थी। पटना के केन्द्रीय कार्यालय की ओर से ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि अनाथ बच्चों को देश के अनाथालयों में और अनाथ स्त्रियों को महिला-आश्रमों में भेज दिया जाये। दूध पीते बच्चों का प्रश्न जरा विकट था। उनकी रक्षा साधारण संस्थाओं में नहीं हो सकती। उनकी पालना के लिये यह व्यवस्था कीगई थी कि जो सद्गृहस्थ एक या एक से अधिक बच्चे के पालन करने का जिम्मा लें उतने बच्चे उन्हें सौंप दिये जाते थे। मां-बाप ने उस बच्ची का

नाम कृष्णा रखा था, परन्तु रामनाथ ने अपने कन्धे पर लगाते हुए उसे बिटिया करके पुकारा, इस कारण जब तक उसका दूसरा नाम न रखा जाये तब तक हम उसे बिटिया इस नाम से ही याद करेंगे। बिटिया को एक रात मुंगेर के रक्षागृह में एक धाई के संरक्षण में रखा गया। दूसरे दिन निश्चय किया गया कि उसे पटने के केन्द्रीय कार्यालय में स्थायी प्रबन्ध के लिये भेज दिया जाये। ले जाने की यह व्यवस्था थी कि एक स्वयंसेवक और धाई बच्चे के साथ जायें। रामनाथ को स्वभावतः बिटिया में ममता पैदा होगई थी। उसने आग्रह किया कि बच्ची को पटने पहुंचाने का काम उसी के सुपुर्द किया जाये। बच्ची की प्राणरक्षा में कोई हिस्सा न होते हुए भी ऐसे शुभकार्य का श्रेय लेने की प्रबल इच्छा बा० बलधारीसिंह के मन में भी थी। उसने भी शिविर के अध्यक्ष की विशेष अनुमति लेकर रामनाथ के साथ पटना जाने की तैयारी कर ली।

६

अगले दिन रामनाथ, धाई और बलधारीसिंह बिटिया को लेकर पटने के केन्द्रीय शिविर में पहुंच गये। जब यह प्रश्न विचार के लिये उपस्थित हुआ कि इस बच्चे को रक्षा के लिये कहाँ भेजा जाये तो वह फाइल निकाली गई जिसमें बच्चों की रक्षा करने के लिये उद्यत गृहस्थों के पत्र थे। उन पत्रों में सब से अधिक महत्वपूर्ण वह पत्र था जो बैलूर की जमींदारिन चम्पादेवी की ओर से प्राप्त हुआ था। पत्र निम्नलिखित था—

श्रीमान् अध्यक्ष जी,

प्रणाम!

मुझे पता लगा है कि भूकम्प के कारण अनाथ हो जाने वाले बच्चों की पालना के लिए आप ऐसे गृहस्थों के नाम जानना चाहते हैं जो एक से अधिक बच्चों का बोझ उठा सकें। मैं यह सेवा करना चाहती हूँ। मैं और मेरी पुत्री दोनों अभी आठ-दस बच्चों की सेवा का बोझ

लेने को तैयार हैं। यदि आप हमारी इस इच्छा को पूर्ण करेंगे तो हम दोनों आप के बहुत आभारी होंगे।

भवदीया
चम्पादेवी

इस पत्र के साथ कांग्रेस के एक प्रतिष्ठित कार्यकर्ता की रिपोर्ट थी कि श्रीमती चम्पादेवी इस इलाके की बहुत प्रख्यात जमींदार हैं। वह और उनकी कन्या सरलादेवी सज्जनता और परोपकार भाव के लिये जिले भर में प्रसिद्ध हैं। इन्हें सेवा का अवसर अवश्य दिया जाये।

चम्पादेवी की इच्छा पूर्ण कीगई। निश्चय हुआ कि रामनाथ और बलधारीसिंह बच्चों को लेकर अगले दिन बैलूर चले जायें।

दूसरा परिच्छेद

बैलूर में जीवन-प्रवाह

[१]

इससे पूर्व कि रामनाथ और बलधारीसिंह बच्चे को लेकर बैलूर पहुंचें, हमें वहां की परिस्थितियों से पूरी तरह परिचित हो जाना चाहिये।

हमने गोपालकृष्णसिंह, चम्पा, सरला और मुन्ना को बम्बई में छोड़ा था। महिलाश्रम का काण्ड समाप्त होने पर गोपालकृष्ण और चम्पा ने सरला को बम्बई में छोड़ना उचित नहीं समझा। सरला ने

थोड़ा-सा आग्रह भी किया कि उसे पढ़ाई जारी रखने दी जाय, परन्तु उसके माता-पिता का जी शहरी शिक्षा की ओर से खट्टा हो चुका था। गोपालकृष्ण कुछ राजी भी हुए, पर चम्पा किसी तरह भी लड़की को अलग रखने के लिये तैयार नहीं हुई। सरला भी इतने समय के पश्चात् अपनी मां को पाकर फिर अलग होना नहीं चाहती थी। फलतः सारा परिवार तीन-चार दिन तक बम्बई की सैर करके घर वापस चला आया।

बहुत समय तक उजाड़ रह कर परिवार के बम्बई से लौटने पर बैलूर की कोठी फिर से आबाद और भरी हुई दिखाई दी। चम्पा के सुप्रबन्ध में आकर घर-बार चमक उठा। हरेक कार्य में सुव्यवस्था आगयी। गोपालकृष्ण का मुरझाया हुआ हृदय भी फिर से लहलहा उठा। घर में मनुष्य जिस सुख और शांति को तलाश करता है, वह जीवन में शायद पहिली बार उसने अनुभव की। रमा को जब समाचार मिला कि जीजी लौट आई हैं तो वह उसी दिन माधवकृष्णके साथ बैलूर पहुंच गयी। दोनों रिश्ते की बहनों का वह मिलन, सगी बहनों के मिलन से भी अधिक मार्मिक था। दोनों देर तक गले गले मिलीं और खूब रोईं।

चम्पा के घर छोड़ जाने के कारण मुन्ना का नामकरण संस्कार रुक गया था। परिवार के इकट्ठा होने पर सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि कोई शुभ-दिवस देखकर नामकरण धूमधाम से कर दिया जाय। इस तरह जहां से गृहस्थ-जीवन का सूत्र कटा था वहीं से उसे फिर जोड़ दिया गया।

शुभ-मुहूर्त में मुन्ना का नामकरण सम्पन्न हुआ। एक धनी परिवार को जिस शान से उत्सव मनाना चाहिये था, उसमें कोई कसर नहीं रही। ब्राह्मणों और गरीबों को भरपेट भोजन कराया गया और दक्षिणा दी गई। रिश्ते में लेन-देन के व्यवहार में कोई कमी नहीं छोड़ी गई। इस बार चम्पा ने अपनी भावना के अनुसार निस्संकोच भाव से

धूमधाम की योजना की, क्योंकि अब उसकी आत्मा पर कोई बोझ नहीं था। मुन्ना का नाम श्रीकृष्णसिंह रखा गया।

नामकरण का उत्सव समाप्त होने पर रमा ने एक दिन चम्पा से सरला के विवाह की चर्चा आरम्भ की। उसने कहा—"जीजी, तुम्हारा एक सकल्प तो पूरा होगया। तुम्हारा मुन्ना धूमधाम से श्रीकृष्णसिंह बन गया। अब दूसरे संकल्प को भी पूरा करो। सरला को किसी योग्य वर से ब्याहकर निश्चिन्त हो जाओ।"

चम्पा ने उत्तर दिया—"बहिन, यह तो तुमने मेरे मुंह की बात छीन ली। मै तो स्वयं तुझसे यह चर्चा करने वाली थी। मैं तो कभी की इस चिन्ता में डूब रही हूँ, पर क्या करूं; इधर सरला हां कहने में नहीं आती और उधर उसके चाचा इस बात पर अड़े हुए हैं कि जब तक सरला खुशी से विवाह के लिये तैयार न हो, तब तक मैं जबर्दस्ती उसकी शादी नहीं करना चाहता। तू ही बता मैं क्या करूं?"

रमा—"जब तुम्हें कुछ नहीं सूझता तब भला जीजी, मैं क्या बता सकती हूँ। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि सरला की शादी अब हो जानी चाहिये। जवान होजाने पर लड़की का स्थान पति के घर में ही है, पिता के घर में नहीं।"

चम्पा—"यह तो ठीक है, परन्तु वह माने भी।"

रमा—"पर जीजी, तुमने कभी यह भी सोचा है कि सरला विवाह के लिये तैयार क्यों नहीं होती? उसकी अनिच्छा का असली कारण क्या है?"

चम्पा—"असली कारण मैं क्या जानूं बहिन! वह तरह-तरह की दलीलें देती है। कभी कहती है गृहस्थी में कोई सुख नहीं, देखो गृहस्थी बन कर तुम्हें ही कौन-सा सुख मिला, सारा जीवन रोने में ही व्यतीत हुआ। जब मैं इस दलील का उत्तर दे देती हूँ तो कहने लगती है कि मैं अपने जीवन को गृहस्थ की अपेक्षा अच्छे कार्य में लगाना चाहती हूं। मैं पढ़-लिखकर वकील बनूंगी और तुम्हारी जैसी दुःखिया

स्त्रियों के लिये कानूनी लड़ाई लड़ूंगी। वह इसी तरह की बहुत-सी युक्तियां देकर मेरा मुंह बन्द करने का यत्न करती है। यदि मैं फिर भी समझाने की चेष्टा करूं, तो रोने लगती है और कहती है कि मैं तुम्हें भारी हो रही हूँ, मुझे सब लोग घर से निकालना चाहते हैं। बस इस आखिरी युक्ति के सामने मैं हार जाती हूँ। मैं तो हार चुकी हूं, क्योंकि मुझ से सरला के आंसू नहीं देखे जाते। अब तू ही उसे समझा बुझा कर देख, शायद मान जाय।"

रमा—"तुम्हारे पीछे मैं भी समझा-बुझा कर देख चुकी हूँ। उसने मुझे भी बातचीत के अन्त में आंसुओं के अस्त्र से परास्त कर दिया था। उसके दिल में विवाह से ऐसा डर-सा बैठा हुआ है कि उसकी चर्चा होते ही घबरा जाती है। क्या इस मामले में उसके पिता कोई यत्न नहीं कर सकते? एक बार उनसे फिर कहकर तो देखो।"

चम्पा ने उदास भाव से उत्तर दिया—"मैंने कई बार कह कर देखा है, आजकल उनकी अपनी तबियत इतनी कमजोर हो गई है कि कोई चिन्ता की बात करने से व्याकुल हो जाते हैं। ऐसी बात का उनके दिल पर बहुत बुरा असर होता है। मालूम होता है मेरे पीछे उनकी देखभाल अच्छी तरह नहीं हुई, जिससे शरीर भी बहुत निर्बल हो गया है। बात-बात में हाथों पर सिर रखकर बैठ जाते हैं और खाना पीना तक छोड़ देते हैं। यों तो कहते हैं कि मैं अपने जीवन में पहली बार शांति का अनुभव कर रहा हूँ, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनका हृदय और शरीर दोनों बहुत थक गये हैं। उनसे अपनी चिन्ता की बात कहते डर लगता है।"

इसी तरह देर तक बातचीत चलती रही। अन्त में रमा ने यह काम अपने जिम्मे लिया कि वह सरला से विवाह के बारे में पूछ-ताछ करेगी।

रमा ने पूछ ताछ की, पर उसका भी कोई फल न निकला। किताबी दलीलों के सामने तो रमा खूब मजबूती से डटी रही, अपने

स्वभाव के अनुसार सरला को दो चार कड़ी बातें भी सुनादी; परन्तु अन्त में जब सरला हिचकियों के साथ रोने लगी तब रमा भी परास्त होगयी।

[२]

हिन्दू समाज के प्रचलित नियमों के अनुसार सरला के विवाह-विषय को लेकर बिरादरी में और अड़ोस-पड़ोस में तरह-तरह की चर्चा होती ही रहती थी। ऐसी चर्चाओं की यह विशेषता है कि प्रारम्भ में वह हलके से गदले रूपमें उत्पन्न होती हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यों उनका मैल बढ़ता जाता है। एक समय आ जाता है जब वह कीचड़ के रूप में परिणत हो जाती हैं। पिशुन लोग हरेक असाधारण घटना का बुरे से बुरा कारण बतलाने में आनन्द लेते हैं, और भोली जनता उन्हें मानकर सन्तुष्ट होजाती है। इस तरह एक छोटी सी बात बतंगड़ के रूप में परिणत हो जाती है। सरला के अब तक विवाह न करने की घटना को लेकर पिशुन लोगों की कलुषित कल्पना और आम लोगों की सहज विश्वास की प्रवृत्ति ने मिलकर एक पूरा महाभारत रच दिया था।

एक दिन दोपहर के समय कैलाश बाबू की बैठक में ताश चल रही थी। कैलाश बाबू उस देहाती हल्के के डाक्टर थे। आठवीं जमात पास की, कुछ दिनों तक एक प्राइमरी स्कूल में टीचरी करने का यत्न किया, परन्तु उसमें कुछ सफलता नहीं पासके। अन्त में पटने के एक डाक्टर के यहां कम्पाउण्डर का काम सीखना आरम्भ किया। डाक्टर बेचारा सीधा-सादा आदमी था। रोगियों का इलाज करने में लगा रहता था। उसकी दूकान पर बड़े कम्पाउण्डर का पूरा अधिकार था। कैलाश बाबू ने दो साल तक दूकान पर शागिर्दी की। इतने समय में बड़े कम्पाउण्डर की सहायता से उसने दवाइयों के नाम पढ़ना, बहुत सी दवाइयां बनाना और स्टैथोस्कोप को कान में लगाकर सिर हिलाना आदि अनेक कार्य, जिससे मनुष्य डाक्टर समझा जा सके, सीख लिए। साथ ही बड़े कम्पाउण्डर की साझेदारी में डाक्टर की दूकान से चुराई

हुई शीशियां भी घर में इकट्ठी कर लीं। इस प्रकार देहाती डाक्टर की पूरी योग्यता प्राप्त करके कैलाश बाबू एक दिन अपनी जन्मभूमि बैलूर में वापिस आगया, और यह मशहूर कर दिया कि मैं कलकत्ते से डाक्टरी पास करके आया हूँ। अब गांव के किसी आदमी को इलाज के लिये पटने जाने की आवश्यकता न रहेगी। कैलाश बाबू के इलाज से कितने लोग मरे और कितने जिये इसका हिसाब किसी ने नहीं रखा। यहाँ तक कि कैलाश बाबू को भी इसका पता नहीं था। इससे कोई प्रयोजन भी नहीं, हमारे लिये तो केवल इतना बतला देना पर्याप्त है कि उन सैकड़ों मृतों और जीवितों ने अड़ोस-पड़ोस में कैलाश बाबू की डाक्टरी का सिक्का जमा दिया और अब वह कैलाश बाबू न कहला कर डाक्टर कैलाश बाबू कहलाने लगे।

ताश के पत्तों को फांटते हुए कैलाश बाबू ने कहा—'भाई, कल रात हम सब कुछ अपनी आंखों से देख आये।'

दिनेश, कल्याण और राखाल—ताश के तीनों साथियों ने एक स्वर से पूछा—'कहाँ और क्या देख आये कैलाश बाबू?'

कैलाश बाबू ने पत्ते बांटते हुए कहना शुरू किया—'जो अफवाहें बहुत दिन से सुनते थे, उनका असली रूप कल अचानक ही देखने को मिल गया। रात १० बजे के लगभग जमींदार के दरबान ने मेरा दरवाजा खटखटाया। मैं सोया पड़ा था, जागकर दरवाजे पर आया तो दरबान ने कहा—'सरकार की तबीयत बहुत खराब है। आपको बुलाया है।' यह पहली बार थी कि बा० गोपालकृष्णसिंह के घर पर मुझे बुलाया गया। अब तक तो हमेशा पटने के बड़े डाक्टर या वैद्य ही इलाज के लिये आते थे, अन्त में जमींदार को भी मेरा सिक्का मानना पड़ा। मैंने ऊपर से तो बहुत-सी बहानेबाजी की, पर दिल से मैं प्रसन्न हुआ कि और कुछ नहीं तो जमींदार के घराने के लोगों को देखने का मौका ही मिलेगा। मैं दरबान के साथ बंगले पर चला गया।'

इतना कहकर कैलाश बाबू चुप होगया। पत्ते बांटना जारी रहा। दिनेश, कैलाश का अन्तरंग साथी था। वह गांव के दूकानदार का लड़का था। वह कैलाश को चुप देखकर बोला—'चुप क्यों हो गये? सारी बात सुनाओ।'

कैलाश ने बड़ी गम्भीर मुद्रा धारण करते हुए कहा—'मैं सोच रहा हूं कि किसी के घर की बात सब में कहूँ या नहीं?'

इस पर कल्याण ने तेज होकर प्रश्न किया—'क्या हम लोग भी अब 'सब' में हो गये। तुम हमसे भी बात छिपाओगे?'

कैलाश फिर भी चुप रहा, तब दिनेश बोला—'अगर यही बात है तो रहने दो यार, मत बताओ। मैं कहे देता हूं कि तुम सब कुछ सुनाने के लिये उतावले बैठे हो, नहीं बताओगे तो तुम्हारे पेट में दर्द हो जायेगा। हमारी क्या हानि है।'

इस पर सब हंस पड़े। कैलाश बोला—'भाई बात यह है कि किसी के घर की निजी बात प्राइवेट ही रखनी चाहिये, तुम लोग वायदा करो कि मेरी कही बातें गांव में न फैलाते फिरोगे। बीमार के घर की बातें बाहर फैलाने वाले डाक्टर की प्रैक्टिस बर्बाद हो जाती है। वायदा करो तो बताऊं।'

तीनों दोस्तों ने वायदा किया।

पत्ते बंट चुके थे, खेल शुरू हुआ, साथ ही कैलाश ने वह वक्तव्य जो बहुत देर से तैयार कर रखा था, धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया।

'तुम लोगों का आग्रह है तो सुनो। मैंने वहाँ दो चीजें देखीं, एक तो यह कि पं० गोपालकृष्णसिंह बहुत सख्त बीमार हैं। घर वालों की ओर से अभी इस बात को गुप्त रखा जा रहा है जिससे जमींदारी का कोई झगड़ा खड़ा न हो। उन्हें दिल की धड़कन की बीमारी है, मालूम नहीं कब चल बसें। दूसरी चीज यह है कि उनकी लड़की के बारे में

जो बातें कही-सुनी जाती हैं, उनमें से कुछ सच्ची हैं और कुछ झूठीं। यह सच है कि लड़की बहुत सुन्दर है मानो चांद का टुकड़ा हो; यह भी ठीक है कि उसके चेहरे पर उदासी टपक रही है पर यह झूठ है कि उसे बम्बई की हवा लग गई है। पाउडर या लालरंग पोतने की बात बिल्कुल बे-बुनियाद मालूम होती है। मुझे तो उस लड़की पर बहुत दया आई। पिता के पीछे इतनी बड़ी कुंवारी लड़की की क्या हालत होगी, उसके दिन कैसे कटेंगे—मैं रात भर यही सोचता रहा।'

कैलाश चुप हो गया, मानो फिर चिन्ता में डूब गया हो। दिनेश ने पूछा कि 'तुमने कोई उपाय सोचा?' कैलाश ने उत्तर दिया—'उपाय? हाँ, उपाय तो सोचा है, पं० गोपालकृष्ण को चाहिये कि अपनी लड़की का विवाह कर दे।'

कल्याण—'हमने तो सुना है कि लड़की शादी करना ही नहीं चाहती।'

कैलाश—'सुना तो ऐसा ही है, परन्तु यह भी तो सुना है कि बम्बई में उसकी शादी होते होते रह गई थी।'

दिनेश—'कुछ यह भी पता लगा कि शादी होते-होते क्यों रह गई?'

कैलाश—"निश्चय से तो कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु सुना है कि लड़की रात के समय भगा ली गई थी; इससे उसकी बदनामी फैल गई और जो सगाई हो चुकी थी, वह टूट गई।"

दिनेश—"तब तो लड़की की शादी होनी बहुत मुश्किल है, बदनाम लड़की से शादी कौन करेगा।"

कैलाश 'यह तो ठीक है, पर समाज के ऐसे बेहूदा विचारका कुछ उपाय भी तो होना चाहिए। एक बार की जरा सी भूल का ऐसा कठोर दण्ड देना तो बहुत ही बुरा है।"

दिनेश हाथ के पत्ते मेज पर उल्टे रखकर कैलाश के मुंह की ओर देखने लगा। कैलाश अपने आप को अबतक कट्टर सनातनधर्मी

प्रसिद्ध किया करता था, सुधारकों का मजाक उड़ाने में वह सबसे आगे रहता था। आज उसके मुंह से समाज के अत्याचार की बात सुन कर दिनेश अचम्भे में आगया। कैलाश इस बात को भाँप गया। उसने दिनेश से पूछा—"क्यों क्या बात है ?" दिनेश ने उत्तर दिया—"मैं तो तुमसे यही पूछने वाला था कि आज यह नई बात क्या है ? तुम गाँव के पुरातन पन्थी, सुधारकों की सी बातें कैसे करने लगे ?"

कैलाश ने उत्तर दिया—"क्या कहूं। मुझे उस बिचारी की दशा पर बहुत दया आई।"

अब सभी खिलाड़ी हाथ के पत्तों को उल्टे रख कर बातचीत में शामिल हो गए। कल्याण ने कहा—"अच्छा तो यह बात है, मालूम होता है कि दया से पिघल कर तुम्हारा अपना दिल मोम हो गया है। इसी से तुम सुधारक बन गए हो ! अब तो शायद उस बेचारी के उद्धार का बीड़ा भी तुम्हीं उठाओगे।"

कैलाश—"हाँ, यदि मैं इस विषय में कुछ कर सकूं तो मुझे प्रसन्नता होगी।"

दिनेश—(मुस्करा कर) "ओह, तो आप यहाँ तक पहुंच गए हैं। प्रथम दर्शन में ही सुधारक बन गये।"

कैलाश—"चुप रहो दिनेश, इस विषय में मजाक मत करो। मेरे लिए यह विषय बहुत गम्भीर बन गया है।"

दिनेश—"तो अब क्या करोगे ?"

कैलाश—"अब ? अब सोचता हूँ कि शायद आज फिर मुझे मरीज को देखने जाना पड़े। उसके पीछे सोचूंगा कि क्या करूं ?"

दिनेश—"तो क्या तुम समझते हो कि अब जमींदार के डाक्टर तुम्हीं बन जाओगे।"

कैलाश—"यह तो मैं नहीं कह सकता, पर हाँ, जिस बीमार को कल देख आया हूँ, उसकी हालत देखने के लिए तो शिष्टाचार के तौर पर

भी जाना ही चाहिये। वह हमारे गाँव के जमीदार हैं। बिन बुलाये कुशल समाचार पूछने के लिए, वहाँ जाने में क्या हर्ज है ?"

[३]

ताश पार्टी के सामने की गई घोषणा के अनुसार, उस दिन सायं-काल के समय कैलाश कुशल-समाचार पूछने के बहाने से जमीदार की कोठी पर जा पहुंचा। कैलाश गोपालकृष्णसिंह का सजातीय है और डाक्टर भी है, इस कारण उसे कोठी में प्रवेश करने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। एक बार चिकित्सा के लिए बुलाए जाने पर कोठी के दरवाजे पर इतना रसूख हो गया था कि जब वह दूसरे रोज सायंकाल कोठी के द्वार पर पहुंचा तो उसे अन्दर जाने से किसी ने नहीं रोका। वह आसानी से वहाँ जा पहुँचा, जहां गोपालकृष्ण चारपाई पर लेटे हुए थे और उनके पास उनके छोटे भाई माधवकृष्ण बैठे बातें कर रहे थे। कैलाश के आने पर माधवकृष्ण चुप हो गये। गोपालकृष्ण ने माधवकृष्ण को कैलाश का परिचय देते हुए कहा—"यह डाक्टर कैलाशचन्द्र हैं, मुझे कल ही इनका परिचय मिला है। कल रात जब मेरी तबियत अधिक खराब हुई, तब इन्हें बुलाया गया था। यह हमारे सजातीय हैं। सुनते हैं कि देहात में इनके इलाज की अच्छी ख्याति है। यह अपने ही आदमी हैं। इनके सामने बात करने में कोई हर्ज नहीं।"

इशारा पाकर माधवकृष्ण ने बातचीत के टूटे हुए सिलसिले को जारी करते हुए कहा—हम सबकी यह राय है कि अब बिटिया की शादी हो जानी चाहिये। मेरा तो विचार है कि आपकी सेहत पर बिटिया की शादी की चिन्ता भी बुरा असर डाल रही है।

गोपालकृष्ण—क्या करूं माधव, इस मामले में मैं बहुत परेशान हूं। मैं और उसकी भाभी शादी के बारे में समझा-समझा कर थक गये हैं। वह किसी तरह मानती ही नहीं। तुम्हीं समझा कर देखो।

माधवकृष्ण—मैं भी तो बहुत बार समझा चुका हूं परन्तु कुछ भी नतीजा नहीं निकला। आप और भाभी से अधिक मैं क्या समझा सकता हूं।

गोपालकृष्ण— तब क्या किया जाय ?

माधवकृष्ण—मेरा तो विचार है कि पहले कोई अच्छा लड़का तलाश कर लिया जाय तब शायद बिटिया भी राजी हो जाय। अभी तक तो हम भी आसमानी बातें ही कर रहे हैं। सूत न कपास जुलाहे से लट्ठमलट्ठा।

गोपालकृष्ण—यह भी तो एक मुश्किल है। अपनी जाति में योग्य और कमाऊ लड़कों का अकाल सा है। लड़की पढ़ी लिखी है। उसे कोरे जमीन के टुकड़ों से कैसे ब्याह दिया जाये ? जिसके पास जमींदारी है वह या तो निरक्षर भट्टाचार्य हैं या प्राइमरी पास हैं। पढ़े-लिखे लड़के मिलते हैं वह प्रायः निर्धन हैं। ऐसी हालत में योग्य वर कहां से तलाश किया जाय ?

यह बातचीत न जाने अभी कितनी देर तक चलती यदि उसी समय पटना से डाक्टर साहब न आ पहुंचते। जमींदार के परिवार में जब कोई बीमार होता था तो प्रायः पटना से कोई बड़ा डाक्टर या वैद्य बुलाया जाता था। इस बार जबसे गोपालकृष्ण को दिल की धड़कन के दौरे शुरू हुए हैं, तब से बराबर पटने का डाक्टर ही इलाज कर रहा है। कल रात अकस्मात् दिल की धड़कन का जबर्दस्त दौरा आ जाने से कैलाश को बुलाया गया था। आज सुबह ही आदमी पटने भेज दिया गया था। डाक्टर साहब के आने पर बातचीत का सिलसिला बन्द होगया। डाक्टर साहब ने बीमार की रोग कहानी सुनकर उन सब उपायों से उनकी परीक्षा की जो बहुत बड़ी फीस लेने के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। मुँह में थर्मामीटर लगाया, छातीपर स्टेथोस्कोप घुमाया और बांह पर रबड़ का पट्टा बांधकर खून का दबाव मालूम किया। इन सब उपायों से दर्शकों को यह विश्वास दिला कर कि रोगी की

परीक्षा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई, डाक्टर ने बड़ी गम्भीरता से कहा—

"वही हार्ट-डिजीज की पुरानी बीमारी जोर पकड़ रही है। आपको लगकर इसका इलाज कराना होगा। आराम से लेटे रहिये, हिलिये-जुलिये नहीं, कोई फिक्र की बात न सुनिये और न कीजिये, हल्का खाना खाइये और मेरे साथ आदमी भेजिये जो दवा लेता आये। इस समय मैं इंजेक्शन लगा देता हूं इससे आपको आराम मिल जायेगा।"

डाक्टर ने इंजेक्शन लगा दिया और शहर से आने तथा इंजेक्शन की फीस जेब में डाली और जिस घोड़ागाड़ी में शहर से आये थे उसी में वापिस चले गये। दवा लेने के लिये एक आदमी उनके साथ भेजा गया।

[४]

कैलाश ने दोनों भाइयों की जो बातचीत सुनी उसने उसके चित्त में एक नई विचार-धारा उत्पन्न कर दी। उसकी आयु लगभग २५ साल की थी। वह शरीर से हृष्ट-पुष्ट था। उसका रूप सुन्दर न हो परन्तु उसे बदसूरत भी नहीं कह सकते। रंग सावले से कुछ अधिक साफ था, जिसे बिहार प्रान्त की दृष्टि से अच्छा ही कहना चाहिये। होटों में थोड़ी परन्तु स्पष्ट अशिष्टता की झलक थी। आँखें छोटी और कुछ अन्दर को धुसी हुई थीं। होठों और आंखों को कैलाश के अन्दर का फोटो कह सकते थे। कोठी पर उसने जो बातचीत सुनी उसका उसके मन पर यह असर हुआ कि पहली रात सरला को देखकर जो भावना उसके हृदय में बीज-रूप प्रकट हुई थी वह अंकुरित सी प्रतीत होने लगी।

कैलाश अपने घर पहुंचकर शेखचिल्ली की सी विचार-परम्परा में लीन हो गया। वह कल्पना की दृष्टि से देखने लगा कि सरला के वर की हैसियत से उसका नाम गोपालकृष्ण के सामने रखा गया है और स्वीकार कर लिया गया है। फिर विवाह की तय्यारियां होने लगी हैं। तैयारियों का ध्यान आने पर मन में यह बात उठी कि खाली जेब

से तैयारी कैसे होगी, परन्तु कल्पना ही तो ठहरी। उसमें तर्क-वितर्क की गुंजायश कहाँ? कल्पना ने कहा—पैसा हो या न हो, तैयारी हो जायगी, और किसी दूसरी तरह नहीं तो स्वयं सरला के पिता इधर की भी तैयारी करवा देंगे। जब तैयारी पूरी होगई तो कल्पना के विमान पर चढ़कर विवाह का हो जाना, विवाह में बहुत-सा धन और कीमती सामान दहेज के तौर पर प्राप्त होना और नये घर की गृहिणी सरला के साथ धूमधाम से आबाद होना आदि मंजिलों को पार कर जाना क्या कठिन था। इस प्रकार कल्पना की सहायता से वह सातवें आसमान की सैर कर रहा था कि इतने में दिनेश ने दरवाजा खट-खटाकर उसके सुखद स्वप्न को भङ्ग कर दिया।

दिनेश ने अन्दर आकर देखा कि कैलाश घर से बाहर जाने के कपड़ों में तैयार, खाट पर चुपचाप बैठा है। दिनेश ने पूछा—

'क्या कहीं जाने की तैयारी है?'

कैलाश ने उत्तर दिया—'नहीं तो, मैं तो थोड़ी देर हुई बाहर से आया हूँ।' कैलाश ने यह उत्तर ऐसे दिया, जैसे सो कर उठा हो।

दिनेश ने आश्चर्यित होकर पूछा—'बैठे-बैठे सो रहे थे?'

'सो तो नहीं रहा था, हाँ, सोच अवश्य रहा था'—कैलाश ने उत्तर दिया।

दिनेश ने कैलाश के पास चारपाई पर बैठते हुए कहा—'तुम सोचने कब से लगे कैलाश, यह तो नई बात है।'

कैलाश ने बहुत गम्भीर चेहरा बना कर नाटकीय ढंग पर उत्तर दिया—'कल से।'

दिनेश ने कैलाश के कन्धे पर हाथ मार कर कहा—'अच्छा, यह बात है। आप बाबू गोपालकृष्णसिंह की लड़की का उद्धार करने के उपाय सोच रहे हैं। इतना ऊंचा मत उड़ो यार, गिर कर चोट लग जायेगी।'

कैलाश—'तुम इस मामले में मजाक मत करो दिनेश। मेरे लिये यह जीने-मरने का सवाल होगया है। कल रात जो विचार मन में उठा था, वह आज दृढ़ हो गया है।'

दिनेश ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—'नई क्या बात हुई है आज जिसने तुम्हें एकदम मजनू बना दिया है?'

कैलाश गम्भीरतापूर्वक बोला—'हंसी छोड़ो, और संजीदगी से मेरी बात सुनो। मैंने अपने मन में निश्चय किया है, उसके पूरा करने में तुम्हें शामिल होना पड़ेगा।'

दिनेश—'देखो भाई, अगर कोई संकट का काम है, तब तो मैं अभी से तुम्हारी दोस्ती से स्तीफा देता हूँ; हाँ यदि कोई ऐसा काम हो जिससे आंच न आये तो बन्दा हाजिर है।'

कैलाश ने उत्तर दिया—'संकट कुछ भी नहीं, बहुत आसान काम है।'

दिनेश बोला—'तब तो कर दूंगा, जल्दी बताओ।'

कैलाश—'बस इतना ही काम है कि मेरी ओर से संदेश लेकर बाबू माधवकृष्ण, जो बा० गोपालकृष्ण के छोटे भाई हैं, उनसे मिलो और जो कुछ मैं बतलाता हूँ, वह उन तक पहुंचा दो।'

इसके पश्चात् दोनों मित्र चिरकाल तक परामर्श करते रहे। जब दोनों की बातचीत समाप्त हुई, तब संध्याकाल निशाकाल में परिवर्तित हो चुका था।

[५]

डाक्टर ने गोपालकृष्ण की दशा देख कर सलाह दी थी कि रोगी को पूरा आराम दिया जाये। उसने माधवकृष्ण को समझाया कि केवल चारपाई पर लिटा रखना ही पर्याप्त नहीं है, चिन्ता की कोई बात भी रोगी के कानों में नहीं पड़नी चाहिये। चम्पा भी उस समय वहीं आगई थी। उसने पूछा—'डाक्टर साहब, आप यह भी

बतला दीजिये कि यदि ये स्वयं हम लोगों से कोई चिन्ता-जनक बात करें तो हम क्या उत्तर दें ?' डाक्टर बड़ा अनुभवी घाघ था। वह ऐसे अभिप्राय खूब समझता था। उसने उत्तर दिया—'अव्वल तो ये स्वयं बहुत समझदार हैं, ऐसी बात करेंगे ही क्यों और यदि कभी करें भी तो आप लोगों को चाहिये कि उस बात-चीत को टालने का यत्न करें और इन्हें मेरी सलाह याद दिलावें। क्यों गोपालकृष्ण बाबू ठीक है न ?' गोपालकृष्ण ने उत्तर दिया—'ठीक है, परन्तु डाक्टर साहब मुझे सरला—

डाक्टर ने बात काटते हुए कहा—'किन्तु-परन्तु कुछ नहीं, आराम से पड़े रहोगे तो नीरोग होकर सब कुछ कर लोगे। इस समय तो किन्तु शब्द को देश-निकाला दे दो।'

डाक्टर यह आदेश देकर चला गया। उसके जाने के पश्चात् माधवकृष्ण ने कहा—'भाई साहब, अब आप आराम कीजिये, हम लोग जाते हैं।'

'मैं आराम तो करूंगा, किन्तु····'

माधवकृष्ण ने बात काट दी। उसने कहा—'भाई साहब, जिस किन्तु की डाक्टर साहब सख्त मनाही कर गये हैं उसे आप इस समय बिल्कुल भूल जाइये, चुप-चाप सो जाइये। आप राजी हो जायेंगे तो सब किंतु-परन्तु खुद ही हल हो जायेंगे।'

गोपालकृष्ण चुप हो गये, उन्हें शांत देखकर माधव और चम्पा भी वहाँ से हट गये। केवल एक सेवक बैठा रह गया, जो पंखे से हवा कर रहा था।

अन्दर जाकर माधवकृष्ण ने चम्पा से कहा—'भाभी, मेरा तो विचार है कि बिटिया के विवाह की चिन्ता ने ही भाई साहब को बीमार कर दिया है। उनके दिल पर से यह बोझ किस तरह उतारना चाहिये।'

'मैं भी ऐसा ही समझती हूँ, पर क्या करूं ? सरला किसी तरह मानती ही नहीं ।'

'मानती इसलिये नहीं कि तुम और भैयाजी उसे बहुत नर्मी से समझाते हो। वह तुम्हारी लड़की है, उसे अगर सख्ती से आज्ञा दो तो वह कैसे नहीं मानेगी ? तुम लोगों का समझाने का तरीका ही गलत है ।'

'मुझ अकेली के बस की क्या बात है लाला ! मेरा कहा तो वह सुनती ही नहीं। जब उनसे कहती हूँ तो वह सोच में तो पड़ जाते हैं पर बिटिया से कुछ नहीं कह सकते। कहने लगते हैं कि मुझसे सरला के आंसू नहीं देखे जाते। विवाह की बात करने से वह रोने लगती है। तुम्हीं बताओ मैं क्या करूं ?'

'अगर तुम लोगों से यह काम नहीं होता तो लाओ तुम्हारी ओर से मैं ही समझा कर देखूं ।'

'मैं त पहले ही कह रही हूँ तुम समझाकर देख लो, शायद तुम्हें सफलता मिल जाये ।'

'एक बात समझ लो कि अगर मैंने बिटिया को कोई सख्त बात कही और वह रोने लगे तो तुम घबरा मत जाना, और मुझे दोष मत देना। सोने को गहना बनाने के लिये चोट तो देनी ही पड़ती है।'

'मैं बुरा क्यों मानने लगी, तुम तो उसे मुझ से अधिक प्यार करते हो, जो कुछ भी करोगे ठीक ही करोगे ।'

सरला उस समय सोने के कमरे में जा चुकी थी। महरी को भेजकर उसे बुलवाया गया तो अपनी भाभी और चचा के गम्भीर चेहरे को देखकर वह चकरा गई। उसने समझा कि शायद पिताजी की दशा अधिक खराब हो गयी है जिससे यह लोग घबराये हुए हैं। उसने पास आकर पूछा—'क्यों चाचाजी बाबूजी का क्या हाल है ?'

माधवकृष्ण ने इस प्रश्न के उत्तर में सरला को बैठने का इशारा करते हुए कहा—'तेरे बाबूजी का हाल तो वैसा ही है। कोई

विशेष फर्क नहीं हुआ। हो भी कैसे? जिस कारण से उनकी सेहत खराब होती जा रही है, उसे तो तू दूर नहीं करती।'

सरला को चचा के इन वचनों से धक्का-सा लगा। उसकी किसी भूल से उसके पिता बीमार हैं, यह विचार स्वप्न में भी उसके मन में नहीं था। वह आश्चर्यित होकर बोली—

'मैंने ऐसी कौन सी भूल की, जिससे बाबूजी बीमार हो गये। मुझे तो याद नहीं कि मुझ से ऐसा कौन सा दोष हुआ?'

माधवकृष्ण ने कुछ कड़ी आवाज में उत्तर दिया—'क्या तू इतनी भोली है कि तुझे भाईजी के बीमार होने का कारण मालूम नहीं? वह तेरी ही चिन्ता में घुले जा रहे हैं।'

'मेरी चिन्ता में, यह आपने क्या कहा चाचा जी। मेरे सम्बन्ध में उन्हें किस बात की चिन्ता है?' सरला ने दुःखित स्वर में चचा से पूछा।

उत्तर में माधवकृष्ण ने कहा—यह उत्तर उसने बहुत सावधानता से पहले ही तैयार कर लिया था—'उन्हें तेरे विवाह की चिन्ता है। वह कई बार कह चुके हैं कि मुझे सरला के विवाह की चिन्ता खाये जा रही है। तेरे माता-पिता कई वर्षों से तेरा विवाह करना चाहते हैं और एक तू है कि मानती ही नहीं। यह बात क्या भाईजी को दुःखित करने के लिए काफी नहीं?

हम देख चुके हैं कि सरला बहुत ही सुशील लड़की थी। उसके माता-पिता और चचा-चाची सभी उससे बहुत प्रेम करते थे। परिवार पर खरी और खोटी कैसी भी पड़े, सरला उसमें चुपचाप साझीदार बनी रहती थी, इस कारण सारे परिवार भर की वह लाड़ली थी। माधवकृष्ण और रमा तो उसे गोपालकृष्ण और चम्पा से भी अधिक प्यार करते थे। उस समय माधवकृष्ण ने जो वाक्य कहे उनमें रुखाई के अतिरिक्त कुछ कठोरता भी थी। सरला के हृदय पर भी

वैसी ही स्तब्धता छा गई। वह कातरभाव से चचा के मुंह की ओर देखने लगी।

सामान्य दशा होती तो शायद माधवकृष्ण उन कातर आंखों से बिल्कुल पिघल जाता, परन्तु आज तो वह सरला के हठ को परास्त करने के लिये तुला बैठा था। उसने अपने नर्म होते हुये हृदय को दृढ करते हुए कहा,—'मेरी ओर देख क्या रही है बिटिया, साफ उत्तर क्यों नहीं देती कि तू विवाह के लिये राजी होकर भैयाजी की चिन्ता को दूर करेगी या अपने हठ पर जमी रहेगी?'

सरला के लिये यह नया आघात सर्वथा असह्य था। कन्या के कोमल हृदय में पुरुष के कठोर स्वर के सहने की शक्ति नहीं रहती। सरला कोई उत्तर न देकर रो पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी। चम्पा के लिये यह सीमा से अधिक यातना थी। अब तक भी वह केवल इसलिये चुप रही कि वचनबद्ध थी, परन्तु अब चुप रहना असम्भव हो गया। उसने माधवकृष्ण से कहा—'जाने भी दो, इस बात को। बिचारी लड़की को परेशान कर डाला। कहीं लड़कियों से ऐसी सख्ती से बोलना चाहिये!'

माधवकृष्ण बेचारा बिल्कुल झूठा सा हो गया। सरला के आंसुओं ने पहले ही उसके बनावटी कठोर भाव को बहा दिया था, चम्पा की झाड़ ने तो उसे सर्वथा परास्त कर दिया। वह अपनी झेंप को मिटाने के लिये बोला—'बस भाभी तुम्हारे इस मोह ने बिटिया का दिमाग खराब कर दिया है। अच्छा तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।' और बाहर चला गया। समस्या जहाँ थी वहीं रही। बादल आये और गरज कर चले गये, भूमि वैसी की वैसी सूखी बनी रही।

[६]

बीमारियाँ तो सभी बुरी हैं, परन्तु दिल की बीमारी सबमें भयानक है, क्योंकि जहां और बीमारियां प्राणों को शरीर से बाहर धके-

लने का यत्न करती है वहां दिल की बीमारी जब पूरे जोर से आती है तो प्राणों को शरीर से बाहर निकाल कर दरवाजा ही बन्द कर देती है। दिल की गति का बन्द होना प्रत्येक रोग का अन्तिम परिणाम है। दिल के रोग के रोगी के निकट सम्बन्धियों को सदा उस घड़ी के लिये तैयार रहना पड़ता है, जिसे 'अन्तिम' नाम से पुकारा जाता है। उस रात बेलूर की कोठी के निवासियों के लिये वह 'अन्तिम' घड़ी आगई। लगभग आधी रात के समय गोपालकृष्णसिंह को दिल की धड़कन का बहुत जोर का दौरा उठा। अब तक जितने दौरे उठे थे, यह उन सबसे अधिक बलवान था। पटने के बड़े डाक्टर ने ऐसे समय पर देने के लिये जितनी दवायें दी थीं, उन सबका प्रयोग किया गया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तब एक आदमी घोड़े पर पटना भेजा गया कि शीघ्र से शीघ्र डाक्टर को लेकर आये। तत्काल के इलाज के लिये गाव के डाक्टर कैलाश बाबू को बुलाया गया।

जब कैलाश रोगी के पास पहुंचा तो वहां सारे परिवार को एकत्र पाया। सबके चेहरों पर चिन्ता का राज्य था। चम्पा, सरला और रमा रोगी की खाट से कुछ दूर खड़ी रोगी के सांस की ध्वनि को ध्यान से सुन रही थीं और उससे रोग की दशा का अनुमान लगा रही थीं। माधवकृष्ण सिरहाने की ओर कुर्सी पर बैठा कभी नब्ज टटोलता था और कभी माथे पर हाथ रखता था। कैलाश के पहुंचने पर माधवकृष्ण ने उसकी ओर देख कर कहा—"कैलाशबाबू, कुछ कर सकते हो तो करो। भैया की हालत बहुत खराब है।"

कैलाश का डाक्टरी ज्ञान तो शून्य के बराबर ही था, परन्तु पूरी तरह बना हुआ आदमी था। अत्यन्त गम्भीर चेहरा बनाते हुए, उसने उत्तर दिया—'बाबू! रोगी को ठीक करना तो भगवान के हाथ की बात है, परन्तु मनुष्य से जो कुछ हो सकता है, वह मैं अवश्य करूंगा।' यह कह कर कैलाश ने वे प्रक्रियायें की जो एक बड़े डाक्टर

को करनी चाहिए। इस समय वह हृदय से चाहता था कि किसी तरह गोपालकृष्णसिंह को दौरे के चक्कर से निकाल कर परिवार के हृदय में अपने लिये सद्भावना पैदा करे। इस लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये उसने अपने सब कुल-देवताओं का स्मरण करके ऐसी दवा निकाली जो कम से कम कुछ समय के लिये रोगी को विश्राम दे सके। जिस डाक्टर के यहां उसने कम्पाउण्डरी की थी, वह उस दवा को तत्काल आराम देने के लिये दिया करते थे। कैलाश को यह मालूम नहीं था कि उस दवा का अन्तिम परिणाम क्या होता है। उसने एक गोली बोतल से निकाल कर थोड़े से पानी में घोली और गोपालकृष्ण के मुंह में डाल दी। थोड़ी ही देर में उस दवा का आश्चयजनक प्रभाव दिखाई दिया। गोपालकृष्ण का साँस कुछ संभल गया, नब्ज भी ठीक सी होती प्रतीत होने लगी। रोगी ने आंख खोल कर क्षीण स्वर से पानी मागा। उस समय कैलाश ने एक विजयी सेनापित की तरह गर्वपूर्ण आंखे उठा कर उस ओर देखा जिधर परिवार की स्त्रियां खड़ी हुई थीं। उसकी आंखें सरला के चेहरे पर पड़ीं तो उसे वहां प्रसन्नता और कृतज्ञता का भाव दृष्टि-गोचर हुआ। फिर उसकी नजर चम्पा, रमा तथा परिवार के अन्य सदस्यों के चेहरों पर भी गई। सब जगह उसे कृतज्ञता का भाव ही झलकता दिखाई दिया। वह उस समय मानो स्वर्ग में घूम रहा था।

रोगी की यह अर्धचेतन दशा लगभग पन्द्रह मिनट तक रही और उसके पश्चात एकदम अत्यन्त विषम होगई। जैसे अन्तिम क्षणिक चमक के पश्चात दिया बुझने लगता है, उसी प्रकार गोपाल-कृष्ण की चेतना भी उस पन्द्रह मिनिट की स्फूर्ति के बाद एकदम लुप्त होने लगी। सांस रुकने लगा, हिचकियां आईं और पंछी उड़ गया। गोपालकृष्ण की जीवन-लीला समाप्त हो गई।

गोपालकृष्ण ने अपने जीवनमें बहुत से कार्य किये, जो नहीं करने चाहिये थे उनमें से कुछ को तो भूल का नाम दिया जा सकता है, परन्तु कुछ

ऐसे भी थे जो समाज और व्यक्तियों के प्रति अपराध थे। उसे अपराधों का फल भी हाथों-हाथ मिलता रहा। जिस सुख और प्रमोद के लिये उसने अनेक विवाह किये और चम्पा जैसी पतिव्रता नारी और सरला जैसी सरल लड़की के जीवन को नरकमय बनाया, वह सुख और प्रमोद उसे क्षणभर के लिये भी न मिला। उसने विषय सुख की ओर जितने कदम बढ़ाये वह उसे दुःख की दलदल में ही ले जाते रहे। यों, गोपालकृष्ण सोलहों आने बुरा आदमी नहीं था। वह निर्बल इच्छा-शक्ति वाला सुखार्थी मनुष्य था, जो अपने समाज की अन्ध-परम्पराओं के सांचे में ढलता गया। वह जमींदार श्रेणी के उस समय के हिन्दू समाज की अराजकता पर चमकीली आचार-हीना पाश्चात्य सभ्यता का जो विषैला प्रभाव हो रहा था, उसका एक ज्वलन्त उदाहरण था।

[७]

जिस घटनाचक्र के वर्णन के साथ हमने उपन्यास के इस भाग को आरम्भ किया है, वह गोपालकृष्णसिंह की मृत्यु के दो वर्ष पीछे का है। चम्पा का सुहाग बिहार के भूकम्प से दो वर्ष पूर्व लुट चुका था।

पहले तो चम्पा भाग्य की भयानक चोट खाकर एकदम स्तब्ध हो गई। विवाह के पीछे उस बेचारी ने जो सुख की घड़ियां व्यतीत कीं, वह शायद अंगुलियों के पोरवों पर गिनी जा सकती हैं। उसका अधिकतर समय यातना, घोर तपस्या और आशा में ही व्यतीत हुआ। जीवन के इस तीसरे चरण में कुछ थोड़ा सा सन्तोष प्राप्त हुआ था, पर वह भी पत्ते पर पड़े हुए प्रातःकालीन तुषारकण की तरह क्षणिक ही सिद्ध हुआ जिस समय वह पति, पुत्री और पुत्र तीनों का केन्द्र बनकर कुछ शान्ति का अनुभव करने लगी थी, उसी समय आंधी का झोंका आया और उसके सिर पर से मानो छत को उड़ा ले गया। वह संसार की धूप और वर्षा को सहने के लिए खुले आकाश के नीचे खड़ी रह गई।

चम्पा जिस विकट परिस्थिति का सामना करने के लिये अकेली रह गई, पाठक उसकी कल्पना आसानी से कर सकते हैं, क्योंकि वह उसके पूरे विवाहित जीवन से परिचित हैं। उसकी पारिवारिक दशा बहुत ही चिन्ताजनक थी। सरला अविवाहित थी। अब तक कम से कम यह भरोसा बना हुआ था कि लड़की के सिर पर पिता की छत्रछाया है, उसे किसका डर है। विवाह योग्य आयु की अविवाहित कन्या का घर में रहना हिंदू परिवारों में बहुत ही अनिष्ट समझा जाता है। विवाह की बात कई बार उठी, पर सरला की अनिच्छा के कारण आगे न चल सकी। गोपालकृष्णसिंह निर्बल इच्छा-शक्ति का व्यक्ति था। वह जब देखता कि सरला विवाह के लिये राजी नहीं होती तो चुप हो जाता। चम्पाकी इच्छा-शक्ति निर्बल नहीं थी, परन्तु वह लड़की के आंसुओं से परास्त हो जाती थी। सरला की अनिच्छा का कारण हम जानते ही हैं। उसके हृदय पर मां के दुःखी विवाहित जीवन ने बहुत गहरा आघात पहुंचाया था। उसके मन में यह धारणा सी बन गई थी कि विवाह करके सारे जीवन को दुख के अटूट बंधन में डालने की अपेक्षा उसे स्त्री-जाति की सेवा में लगाना अधिक अच्छा है। सोचते-सोचते उसकी मनोवृत्ति विवाहित जीवन से घृणा करने लगी थी। इस प्रकार सरला के आग्रह, गोपाल-कृष्णसिंह की इच्छा-शक्ति की निर्बलता और चम्पा के सन्तान-मोह ने मिलकर यह परिस्थिति पैदा करदी कि सरला के भावी जीवन की समस्या को हल करने का बोझ अकेली चम्पा पर आ पड़ा।

मुन्ना (श्रीकृष्णसिंह) की समस्या और भी अधिक कठिन थी। अभी उसकी आयु बहुत छोटी थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा का लम्बा और कठिन कार्य सामने पड़ा था। यह एक अद्भुत सचाई है कि यद्यपि पिता का अधिक प्रेम अपनी कन्या के प्रति होता है, तो भी वह अकेला कन्या को नहीं पाल सकता। इसी प्रकार माता के प्रेम का अधिक झुकाव पुत्र की ओर समझा जाता है, तो भी अकेली माता पुत्र की शिक्षा-दीक्षा

को सफलता से पूरा नहीं कर सकती। प्रसिद्ध है कि कन्या मां के बिना और लड़का पिता के बिना भटक जाते हैं। इस मौलिक कठिनाई के अतिरिक्त एक और बहुत बड़ी उलझन भी चम्पा के सामने आने वाली थी। हम देख चुके हैं कि गोपालकृष्ण के बड़े भाई राधाकृष्ण और उनकी पटरानी देवकी ने यह घोषणा मुन्ना के जन्म के समय ही कर दी थी कि वह उसे गोपालकृष्ण का पुत्र नहीं मानते। उस घोषणा के आधार पर बैलूर की कोठी और उसके साथ लगती हुई जायदाद के उत्तराधिकार का झगड़ा भी खड़ा किया जा सकता था। इन विशेष पारिवारिक कठिनाइयों के साथ-साथ बिखरी हुई जमींदारी के प्रबन्ध की देखभाल करना स्वयं बहुत कठिन कार्य था। हृद्रोग से अचानक मृत्यु हो जानेके कारण गोपालकृष्णसिंह कोई वसीयतनामा भी नहीं लिख सके थे।

कुछ दिन तक तो चम्पा बिल्कुल किंकर्तव्यविमूढ़ रही। उसके दिन-रात आंसू बहाते ही कटते थे; उसे प्रतीत हो रहा था कि मानो मनों का बोझ सिर पर लाद कर वह नदी की मँझधार में छोड़ दी गई है। आपत्तियों की लहरें उसे चारों ओर थपेड़े मार रही थीं और वह अकेली गहरे पानी में गोते खा रही थी। जब आगे की ओर आँख उठा कर देखती थी तो कोई किनारा भी दिखाई नहीं देता था। उस जीवन की अथाह नदी में मानो वह अकेली ही गोते खाने और डूबने के लिये रह गई थी। उसे अपने सूनेपन की वेदना तो थी ही, जब उसकी दृष्टि सरला और मुन्ना पर पड़ती थी तब तो उसके मुंह से अनायास ही चीख निकल जाती थी। उसका हृदय विह्वल होकर सोचने लगता था कि इन दो प्राणियों का क्या होगा?

लगभग दो मास तक चम्पा की यही दशा रही। कुछ दिन तो दैव के असह्य आघात से ही तिलमिलाई रही, उसके पश्चात् रिश्तेदार और परिचितों ने आकर भारतवर्ष के प्रचलित रिवाज के अनुसार सूखते हुए घाव को कुरेदकर हरा करना जारी रखा। जब उसका यह सिलसिला

भी हल्का हुआ तो चम्पा यह समाचार सुनकर व्याकुल रहने लगी कि सुरजानपुर के लोगों ने यह चर्चा उठा दी है कि गोपालकृष्णसिंह के कोई पुत्र नहीं था। जिस बालक को उनका औरस पुत्र कहा जाता है वह वस्तुतः नाई का बच्चा है।

इसी तरह चिन्ता के नये-नये थपेड़ों से चम्पा व्याकुल होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही थी कि एक नई घटना ने उसे मानो झटका देकर नींद से जगा दिया। एक दिन प्रातःकाल रमा ने आकर उसकी मोह-निद्रा को भंग करते हुए कहा, 'जीजी, क्या तुम सो रही हो, सरला आज सात दिन से बुखार में पड़ी है, रोज तुम्हें खबर देती हूँ, पर देखती हूँ कि तुम कुछ ध्यान ही नहीं देती। आज सुबह से वह बेहोशी की हालत में है। क्या उसके मरने पर ही होश में आओगी?'

चम्पा के दिमाग पर मानों जोर का झटका लगा, बोली,—"क्या कहा तैंने? क्या सरला भी मर जायेगी?"

रमा ने उत्तर दिया—'हाँ, जरूर मर जायेगी, यदि तुमने उसकी ओर ध्यान न दिया तो।"

चम्पा घबराये हुए स्वर में बोली—"कहाँ है बिटिया? मैं उसे अवश्य बचाऊंगी, अब मैं उसे नहीं मरने दूंगी। वह उसे मुझ पर छोड़ गये हैं। उसे बचाना मेरा धर्म है।" यह कहती हुई चम्पा उठ खड़ी हुई और तीव्र गति से सरला के कमरे में जा पहुंची। वह इतनी तेजी से गई कि रमा कई कदम पीछे रह गई।

जब चम्पा सरला के पास पहुंची, सरला होश में थी। बुखार से उसका चेहरा तमतमा रहा था, परन्तु वह सर्वथा सचेत थी। बेहोशी का हल्का सा जो दौरा सुबह आया था, वह जा चुका था। अपनी "भाभी" को अपनी ओर कई दिनों के पश्चात् इस तेजी से आता हुआ देख कर पहले तो सरला कुछ घबरायी, परन्तु जब चम्पा ने पास आकर माथे पर हाथ रख कर कहा—"मेरी बिटिया" तो सरला को एक अपूर्व सुख का अनुभव हुआ। उसकी आंखों से संतोष के आंसू बह निकले।

चम्पा की आंखें सरला के मुंह पर पड़ीं, तो वह स्तब्ध सी रह गई। एक सप्ताह के ज्वर ने सरला को बहुत ही निर्बल कर दिया था। इस बीच में चम्पा मानो संसार की सुध भुलाये बैठी रही, वह सुनती हुई भी नहीं सुनती थी और देखती हुई भी नहीं देखती थी। रमा ने कई बार कहा कि सरला बीमार है, पर चम्पा ने कभी उसके वाक्य का अर्थ नहीं समझा। वह शोक और निराशा के प्रवाह में इस जोर से बह रही थी कि और किसी बात की होश ही नहीं रही। आज जब कानों के रास्ते से हृदय को यह संदेश मिला कि तेरी सरला का जीवन भी संकट में है तो मानो उसके धक्के ने चम्पा को प्रवाह से बाहर पहुंचा दिया। उसने होश में आकर देखा कि सरला सचमुच बहुत बीमार है और यह भी अनुभव किया कि यदि उसकी ओर ध्यान न दिया गया तो उसका बचना कठिन है।

इस प्रकार सरला के रोग ने चम्पा को फिर संसार में लाकर खड़ा कर दिया। एक आदमी गांव के डाक्टर को बुलाने के लिये रवाना किया गया। चम्पा ने चारों ओर दृष्टि डाली तो दो मास के पीछे पहली बार उसने अनुभव किया कि जिस कमरे में सरला की चारपाई पड़ी है, वह साफ नहीं हुआ है और जिस बिस्तर पर सरला लेटी हुई है वह भी मैले हैं। उसने यह भी अनुभव किया कि सरला के बाल अस्तव्यस्त बिखरे हुए हैं, और नियमपूर्वक मंजन न करने से दांत मैले हो रहे हैं। हम देख चुके हैं कि चम्पा स्वभाव से बहुत कार्यकुशल और सुलझी हुई गृहिणी थी। वह एकदम बिगड़ी हुई अवस्था को सुधारने में लग गई। घर की बन्द पड़ी हुई घड़ी में मानों चाबी लग गई; जहाँ मुर्दनी छाई हुई थी वहाँ जीवन की हलचल दिखाई देने लगी। चम्पा नींद से उठे हुए चतुर कप्तान की तरह अपने बन्दरगाह पर सुस्त पड़े हुए घर रूपी जहाज को चलाने योग्य बनाने में संलग्न हो गई।

सरला को स्वस्थ होने में लगभग दो सप्ताह लगे। उसे आरंभ

में तो मौसमी बुखार आया था, परन्तु ठीक इलाज और परिचर्या न होने से निमोनिया के रूप में परिणत हो गया। यदि समय पर रमा चम्पा की मोहनिद्रा को न तोड़ देती तो शायद दो चार दिन में सरला का रोग असाध्य हो जाता। समय पर ठीक चिकित्सा हो जाने से सरला धीरे-धीरे संकट में से निकल गई। तीसरे सप्ताह उसका ज्वर उतर गया और पथ्य मिलने लगा।

सरला की शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ चम्पा की मानसिक स्वस्थता भी वापिस आती गई। अब वह अपने घर-बार की पूरी देख-भाल करने लगी। जमींदारी का प्रबन्ध जो गोपालकृष्णसिंह की बीमारी और मृत्यु के पश्चात दो महीने तक देखभाल न होने से बहुत बिगड़ गया था, उसे चम्पा कारिन्दों की मदद से संभालने का यत्न करने लगी। इस तरह बैलूर की कोठी और जायदाद फिर से चेतनायुक्त हो उठी।

[८]

अब चम्पा को जमींदारी संभाले लगभग दो वर्ष हो गये हैं। इन दो वर्षों में बेलूर की जमींदारी का काया-पलट हो गया है। चम्पा ने जमींदारी का प्रबन्ध यह समझ कर नहीं किया कि यह जमींदारी मेरी है, मैं इसका उपभोग करूं, प्रत्युत इस भावना से किया कि यह मेरे पतिदेव की धरोहर है, जो बड़े होने पर मुझे मुन्ना को सौंपनी है। प्रायः देखा जाता है कि जब कोई रियासत या जमींदारी किसी समझदार विधवा के हाथ में आती है तो प्रबन्ध की सुन्दरता और मितव्ययता में वह पुरुषों को मात दे देती है। इसका कारण यही है कि जहां पुरुष उत्तराधिकार में प्राप्त हुई सम्पत्ति को अपनी उपभोग्य वस्तु समझ कर उसके लिए वहीं तक कष्ट उठाता है, जहां तक उसके सुख में बाधा न पड़े वहां विधवा स्त्री सम्पत्ति का प्रबन्ध अपना परम धर्म समझ कर करती है, क्योंकि उसकी दृष्टि वर्तमान पर नहीं अपितु भूत और भविष्य पर रहती

है। वह हर मामले पर सोचती हुई अपनी अन्तरात्मा से यह प्रश्न पूछती है, 'इस मामले में वे क्या करते ?' और 'ऐसा करने से मेरे बच्चे का भविष्य में भला होगा या नहीं।' अपने मृत पति की इच्छा और पुत्र की मंगल-कामना, बस यह दो ही उसके प्रेरक कारण बन जाते हैं। प्रायः विधवा स्त्री के प्रबन्ध में कर्तव्य की भावना प्रधान हो जाती है और सुख की भावना शून्य। चम्पा ने भी कर्तव्य की कठोर भावना को लेकर जमींदारी का प्रबन्ध हाथ में लिया और उसे इतनी सुन्दरता और तत्परता से किया कि सारे इलाके में उसकी चर्चा होगई। बड़े और पुराने जमींदार चम्पा के सफल प्रबन्ध की धाक मानने लगे।

प्रबन्ध के काम में सरला अपनी माता की प्रधान सचिव थी। लिखने-पढ़ने का और बाहर के आदमियों से बातचीत करने का काम वही करती थी। उसने ऊंची शिक्षा प्राप्त की थी और बाहर का संसार भी देखा था, इस कारण बेलूर की कोठी और रियासत की सुरुचिपूर्ण सुव्यवस्था का एक नमूना बनाने में बहुत सुगमता हुई। मां बेटी ने मिलकर दो वर्षों में अपनी जमींदारी का सुप्रबन्ध का एक जीता-जागता नमूना बना दिया। पुराने मुनीम मुन्शी भोलानाथ ने मालकिन का पूरी तरह साथ दिया। वह नौकरों की उस श्रेणी का एक बढ़िया नमूना था, जो वर्तमान सभ्यता के प्रभाव से नष्ट होती जाती है। उस श्रेणी के लोग जीवन में एक ही मालिक बनाते थे और उसी की सेवा को परम धर्म मान कर जीवन खपा देते थे। वर्तमान समय ने नौकरी को एक सौदा बना दिया है। मालिक का दृष्टिकोण हो गया है कि कम-से-कम तनख्वाह देनी पड़े, और अधिक-से-अधिक काम लिया जाये। उधर नौकर का यह धर्म बन गया है कि कम-से-कम काम करके अधिक-से-अधिक वेतन निकाला जाये! शोषण और हड़ताल यह दोनों एक दूसरे के जवाबी जहर हैं जिन्होंने वातावरण को विषैला बना दिया है। मुन्शी भोलानाथ उस विष के प्रभाव में नहीं आया था। उसने मालिक की

मृत्यु के बाद मालनकिन को मालिक से भी बढ़कर माना और जमींदारी को संभालने में ईमानदारी से उसका पूरा साथ दिया।

मुन्ना का शिक्षणक्रम घर पर ही चल रहा था। एक अध्यापक रखा गया था जो मुन्ना को पढ़ाने के साथ-साथ गांव के अन्य बच्चों को पढ़ाता था। सरला भी मुन्ना के शिक्षण में प्रतिदिन कुछ समय व्यतीत करती थी।

कुछ समाचार-पत्र गोपालकृष्णसिंह के समय से ही आते थे। गोपालकृष्णसिंह एक आराम से चलने वाला सुखार्थी सांसारिक प्राणी था। समाचार-पत्रों में उसकी इतनी ही अभिरुचि थी कि समाचार पढ़ लिये, चित्र देख लिये और फिर अखबार रद्दी में डाल दिया। सरला के लिए इतना पर्याप्त नहीं हुआ। उसके युवक और भावुक हृदय पर प्रत्येक अच्छी बुरी चीज अपना असर पैदा करती थी। उसने आने वाले समाचार-पत्रों की संख्या बढ़ा दी और साप्ताहिक 'टाइम्स आफ इन्डिया' की जगह कलकत्ते से 'अमृत बाजार पत्रिका' और पटना से राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक पत्र मंगवाने आरम्भ किये। गांव में डाक प्रति दिन नहीं आती थी, इस कारण दैनिक डाक लेने और शहर के अन्य कार्य करने के लिए एक हरकारा प्रतिदिन शहर जाता था।

रात को सब कामों से निबटकर सरला समाचार-पत्र लेकर बैठती थी। चम्पा को भी समाचार सुनने का काफी शौक था। सरला पढ़कर सुनाती और चम्पा के अतिरिक्त अन्य मिलने-जुलने वाली स्त्रियां भी सुनती थीं।

सरला के संस्कारी हृदय पर राष्ट्रीय आन्दोलन के समाचार गहरा प्रभाव उत्पन्न कर रहे थे। जब वह देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन के समाचार पढ़ती थी, तब उसके शरीर में रुधिर की गति तेज हो जाती थी। जब किसी जलूस पर पुलिस के लाठी-प्रहार का समाचार पढ़ती तो अनुभव करती कि मानों उसी के सिर पर लाठी लगी है। जब पढ़ती कि बम्बई में ५० महिलायें सत्याग्रह करके गिरफ्तार हुई हैं, तब ठण्डा

सांस लेकर सोचती कि क्या ही अच्छा होता यदि मैं भी उन ५० में होती। कभी-कभी वह इन हृदयंगत भावनाओं को शब्दों द्वारा प्रकट भी करती थी। उसके हृदय में विवाह न करने कारण के जो थोड़ा-सा रिक्त स्थान था, उसमें उत्कट देशभक्ति स्थान करती जा रही थी।

कभी-कभी वह अपनी मां से कह उठती 'भाभी तुम आज्ञा दो तो मैं भी पटने जाकर स्वयं-सेविकाओं में अपना नाम लिखा दूं?'

चम्पा को स्वयं देशभक्ति की बातें बहुत अच्छी लगती थीं, वह आम तौर पर महात्मा गांधी, कस्तूरबा गांधी, राजेन्द्र बाबू आदि की प्रशंसा करती और उनके विरोधियों को अपनी सीधी-सादी भाषा में शाप देती रहती थी, परन्तु जब सरला ने उपर्युक्त प्रश्न सीधी भाषा में कर दिया तो चम्पा घबरा गई, कुछ देर सोचती रही फिर बोली—
'और तू पकड़ी गई तो मैं क्या करुंगी?'

सरला ने कहा—पकड़ी तो जाऊंगी ही। मेरे पकड़े जाने पर तुम वही करना जो और स्वयं-सेविकाओं के पकड़े जाने पर उनकी मातायें करती होंगी।

चम्पा ने इसका उत्तर दिया—

'और मांएं क्या करती हैं, यह मैं क्या जानूं? मैं तो इतना ही जानती हूँ कि तू मेरे हाथ पांव है। मैं तेरे बिना कुछ नहीं कर सकती।'

सरला ने बातचीत की गम्भीरता को कुछ हल्का करने की चेष्टा करते हुए कहा—'भाभी, भला मेरे बिना तुम्हारे कौन से काम रुक सकते हैं? सब काम करने वाले नौकर तुम्हारे पास हैं। मैं भी कुछ महीनों के लिये स्वराज्य-मन्दिर की सैर कर आऊं तो क्या हर्ज है। तुम्हारे सब काम इसी तरह चलते रहेंगे।'

सरला की बात से चम्पा और भी उद्विग्न होगई, जैसे उसका कोई घाव छिल गया हो। दुःखित होकर बोली, 'ठीक है बाबा, यह सब काम मेरे ही हैं, मेरी ही जरूरतें इतनी बढ़ी-चढ़ी हैं कि मुझे सारी जमींदारी

चाहिए, नौकर-चाकर चाहिए, वे पहले ही मुझे सब बोझ उठाने के लिये अकेला छोड़ कर चले गये, अब तू भी चली जा। इससे तो अच्छा होता कि मैं जब घर छोड़कर उत्तराखण्ड की ओर गई थी, तो वहां से वापस न आती। वहीं कहीं बर्फ में गल जाती या गङ्गाजी में बह जाती। मुझे वह दुःख के दिन देखने नसीब न होते और अब भी......'

इस समय चम्पा का गला भर आया था और आँसू बहने की तैयारी कर रहे थे। अभी न जाने उसका यह प्रवाह कितनी दूर तक चलता, यदि उसे सरला एकदम न रोक देती। उसे यह ख्याल न था कि जेल जाने की चर्चा-मात्र से उसकी माता को इतना दुःख होगा। ज्यों ही उसने अनुभव किया कि उसकी बातने भाभी के दिल को ठेस पहुँचाई, त्यों ही वह सम्हल गई। उसने अपना हाथ मां के मुंह पर रखते हुए कहा—'बस चुप करो भाभी, आगे कुछ मत बोलो। मैं कभी जेल वेल नहीं जाऊंगी। तुम्हें दुःखा करके तो मैं स्वर्ग में भी नहीं जाना चाहती।'

चम्पाने अपने हाथ से सरला के हाथ को ऊपर से हटाते हुए कहा—"तो तू ऐसी व्यर्थ बातें मेरे सामने मत किया कर। मैं न जाने घायल दिल को किस तरह सम्हाल कर तेरे सहारे से चल रही हूँ। जब तू भी बहकी बातें करने लगती है तब मुझ से सहन नहीं होता। तू मुझ से प्रतिज्ञा कर कि तू कभी जेल जाने की बात नहीं करेगी।"

सरला ने उत्तर दिया, "अच्छा, नहीं करूंगी, पर तुम भी कभी मुझे अपने से अलग करने की बात मत करना।"

"अच्छा मैं भी नहीं करूंगी।"

चम्पा के इस उत्तर से वह प्रसंग समाप्त हो गया और साथ ही सरला द्वारा जेल जाने की और चम्पा द्वारा सरला के विवाह की चर्चा पर भी प्रतिबन्ध लग गया। यह तो पाठक समझ ही गये होंगे कि यह प्रतिबन्ध केवल जिह्वा पर लगा था, मन पर नहीं। मन में तो दोनों ही

प्रतिबन्ध के विरुद्ध सोचती रहती थीं। सरला सोचती रहती थी कि मैं भी देश के लिये एक बार जेल हो आऊं तो अच्छा हो और चम्पा विचारती रहती थी कि किसी योग्य वर से सरला का विवाह हो जाय तो मैं उऋण हो जाऊं।

बिहार के भूकम्प के समाचारों से जैसे सारे देशवासियों के हृदय विचलित हो उठे थे, उसी प्रकार बैलूर-निवासियों के भी। धक्का तो गाव में भी पहुँचा था, परन्तु भाग्यवश अधिक हानि नहीं पहुँची। पक्की और दुमंजिली इमारतें अधिक न होने से भूकम्प ने गांव को उतना तबाह नहीं किया था, जितना शहरों को। जब भूकम्प के दूसरे दिन शहरों के सर्वनाश के समाचार अखबारों मे पढ़े तो सरला और चम्पा दोनों के ही हृदय द्रवित हो गये। बहुत देर तक उन समाचारों पर चर्चा होती रही जिसमें अधिकतर इस प्रश्न पर विचार हुआ कि भूकम्प-पीड़ितों की सहायता किस प्रकार की जा सकती है।

तीन दिन इसी तरह विचार में व्यतीत होगये। कोई निश्चय न हो सका, तीसरे दिन अखबार में कांग्रेस की ओर से यह सूचना निकली कि भूकम्प के कारण बहुत से दूध-पीते बच्चे अनाथ हो गये हैं। यदि उन्हें कोई सद्गृहस्थ अपने पास रख कर पालन-पोषण करने की जिम्मेदारी लेने को तैयार हो तो काँग्रेस कमेटी को सूचित करें। सरला का दिल सेवा के लिये उतावला होरहा था। इस सूचना से उसे सहारा मिला। उसने चम्पा के सामने प्रस्ताव रखा—

"भाभी, यदि हम कुछ बच्चों को अपने पास रखकर पालन पोषण करें तो कैसा हो? मेरा तो जी चाहता है कि कांग्रेस कमेटी को लिख कर कुछ बच्चों को यहीं मंगवा लिया जाय या हम पटना जाकर स्वयं ले आयें।"

प्रस्ताव चम्पा को भी पसन्द आया। सेवा के लिये उसका हृदय भी उत्सुक था। बात तय हो गई। सरला ने झटपट रिलीफ कमेटी के

नाम चिट्ठी लिख दी जो एक विशेष हरकारे द्वारा पटना भेज दीगई। वहां उस चिट्ठी का क्या असर हुआ यह हम पहले बतला आये हैं। रिलीफ कमेटी की ओर से रामनाथ और बलधारीसिंह को आज्ञा हुई कि वह मुंगेर से लाये गये बच्चों को लेकर शीघ्र ही बैलूर जायें और उसे वहाँ की जमींदारन चम्पादेवी के सुपुर्द कर आयें।

तीसरा परिच्छेद
जमींदारी का बंटवारा

[१]

प्रातःकाल पौ फटने से पहले ही रामनाथ एक तांगा किराये पर ठहरा कर रिलीफ कैम्प के दरवाजे पर पहुंच गया। थोड़ी देर में दाई बच्चे को लेकर आगई। कैम्प के अध्यक्ष की ओर से बैलूर की जमींदारन श्रीमती चम्पादेवी के नाम का पत्र रामनाथ ने पहिले दिन ही ले लिया था। बच्चे के साथ दाई के आने पर तांगा चलने को तैयार ही था कि सामने से बलधारीसिंहजी आते दिखाई दिये। रामनाथ को यह अनिष्ट-दर्शन बहुत ही खटका। उसने उधर से आंखें फेर कर चल देने की चेष्टा की, परन्तु बलधारीसिंह इस तरह चकमे में आने वाला नहीं था। वह तांगे के पायदान पर पैर रखता हुआ बोला—"रामनाथ भाई, वन्दे मातरम्। मैं भी आपके साथ चलूंगा। मुझे भी आज्ञा हुई है। जरा सरक जाइये, तो मैं भी बैठ जाऊं।" रामनाथ स्वयं बहुत साहसी था, तो भी उसे बलधारीसिंह से ऐसे दुस्साहस की आशा नहीं थी। परन्तु वह आसानी से हारने वाला नहीं था। अपनी जगह से सरके बिना ही बोला—

"अच्छा, आप भी तशरीफ ले आये। तो आपको भी बैलूर जाने की आज्ञा मिली है? लाइये देखूं आपका आज्ञापत्र।"

बलधारीसिंह ने खिसियाने से होकर उत्तर दिया— "मुझे कोई पत्र नहीं मिला, केवल मौखिक आज्ञा हुई है। मैं समझता हूँ कि मौखिक आज्ञा काफी है।"

रामनाथ बोला—"परन्तु मैं मौखिक आज्ञा को काफी नहीं समझता। इस पर भी अगर आपकी बैलूर जाने की इच्छा बहुत प्रबल हो तो दूसरा तांगा किराये पर करके आजाइये।"

यह कह कर रामनाथ ने तांगे वाले को चलने का आदेश दिया। तांगा चल पड़ा और बलधारीसिंह बहुत उदास चेहरा लिये खड़ा रह गया। तांगा कुछ कदम ही गया होगा कि रामनाथ ने उसे ठहर जाने की आज्ञा दी और पीछे मुड़कर बलधारीसिंह को निम्नलिखित शब्दों में निमन्त्रण दिया:—

"खैर, बा० बलधारीसिंहजी आप इसी तांगे में आजाइये, कोई बात नहीं।"

बलधारीसिंह को यह निमन्त्रण सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ, तो भी सुअवसर जानकर उसने निमन्त्रण से लाभ उठाना ही उचित समझा और आगे बढ़कर तांगे में जा बैठा।

रास्ते में रामनाथ बलधारीसिंह से बहुत प्रेमपूर्वक बातें करता गया। बलधारीसिंह, जो रामनाथ के पहले रूखेपन के व्यवहार से भुन्नास सा हो गया था, देर तक नहीं खुला, और रामनाथ की बातों का उत्तर 'हां हूँ' में ही देता रहा; परन्तु कुछ देर पीछे उसका संकोच जाता रहा और वह पुराने मित्रों की तरह बातचीत में शामिल हो गया।

पटना से कोई दो मील की दूरी तक पक्का रास्ता था। उसके आगे तांगे को कच्चे खोले पर चलना पड़ता था। वहां एक छोटा सा पड़ाव बना हुआ था। पड़ाव से लगभग दो फर्लांग की दूरी पर एक छोटा-सा गांव था। उस पड़ाव पर पहुंच कर रामनाथ ने तांगे को रोक दिया और नीचे उतर पड़ाव के दूकानदार से बातचीत करके गांव के बारे में बहुत-सी जानकारी प्राप्त की। सफर के शुरू में ही इस तरह

समय का दुर्व्यय करना बलधारीसिंह को अखरा, परन्तु वह अब रामनाथ के अक्खड़ स्वभाव से परिचित हो चुका था। कुछ बोलने की हिम्मत न करके चुपचाप खड़ा रहा। दूकानदार से बातें करके रामनाथ बलधारीसिंह के पास आया और बड़ी अपनावट से उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोला—"भाई बलधारीसिंह एक भूल हो गई। चलते हुए हम बच्चे के लिये दूध लाना भूल गये। कच्चे रास्ते पर यदि देर लग गई तो बच्चे को बहुत कष्ट होगा। यहां से कोई दो फर्लांग पर गांव है, वहां गाय का दूध आसानी से मिल जायेगा। तुम वहां जाकर कम से कम आध सेर ताजा दूध लिवा लाओ।"

बलधारीसिंह ने रामनाथ का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और गाय का दूध लेने के लिये गाँव की ओर चल दिया। दूध लेने के लिए वह दूकानदार से एक गिलास लेता गया। रामनाथ तब तक दूकान के पास खड़ा उसे देखता रहा, जब तक बलधारीसिंह पेड़ों की ओट नहीं हो गया। जब वह लगभग १॥ फर्लांग चल कर गांव के पास पेड़ों से ओझल गया तो रामनाथ तांगे पर जा बैठा और तांगे वाले को चलने का हुक्म दिया। तांगे वाले ने पूछा—"दूसरे बाबू तो अभी नहीं आये।" रामनाथ ने उत्तर दिया—"उनकी इस गांव में ससुराल है, वह आज यहीं रहेंगे, तुम चलो।" तांगे वाले को पूरी तरह ससुराल वाली बात समझ में तो नहीं आई, परन्तु एक तो तांगा रामनाथ ने ठहराया था और दूसरे इस समय रामनाथ बड़ी गम्भीरता से आज्ञा दे रहा था, बिचारा तांगेवाला लाचार होकर आगे चल पड़ा। तांगा तो चल पड़ा, परन्तु कच्चा रास्ता होने से घोड़ा तेज नहीं जारहा था और रामनाथ शीघ्र से शीघ्र उस जगह से दूर चला जाना चाहता था। उसने तांगे वाले के हाथ से चाबुक लेते हुए कहा—"तुम्हें घोड़ा चलाना भी नहीं आता, मुर्दों की तरह चलाते हो।" यह कह कर चाबुक का एक भरपूर हाथ घोड़े की पीठ पर जमाया, जिससे घोड़ा कच्ची सड़क की परवाह न करके सरपट भागने की चेष्टा करने लगा। तांगे के हिचकोलों से बच्चा

रोने लगा और दायी चिल्लाने लगी, पर रामनाथ ने तब तक हंटर हाथ से न छोड़ा, जब तक पड़ाव वाले गाव और तागे के बीच में इतना अन्तर न हो गया कि वहा से दी हुई आवाज सुनाई देसके या वहा का आदमी भागकर तागे के पास पहुँच सके। लगभग आध मील निकल जाने पर दूर रास्ते पर दृष्टि डाल कर रामनाथ ने देखा कि एक आदमी तागे की ओर मुंह करके हाथ हिला रहा है, मानो मन में सन्तुष्ट होकर रामनाथ ने चाबुक तागे वाले के हाथ में देते हुए कहा—'बस, अब रास्ते पर पड़ गये, मजे मजे में चले चलो।'

बेचारा बलधारीसिंह जब गाव से दूध लेकर निकला तो देखा कि तागा चल दिया। बेलूर का रास्ता उससे सर्वथा उल्टी ओर था, जहा बलधारीसिंह खड़ा था। तागे को जाते देखकर उसने पहले आवाज दी, फिर भागा और अन्त में थक कर अंग्रेजी में रामनाथ को गालियां देने लगा। उसने यह तीन उपाय पूरी शक्ति लगा कर किये, परन्तु दुःख है कि उनमें से एक भी सफल नहीं हुआ। उसकी आवाज उसके पाव और उसकी अंग्रेजी गालिया, तीनों ही न तो रामनाथ के दिल को छू सकीं और न तागे को। बेचारे बलधारीसिंह को उस आध सेर दूध पर ही सन्तोष करना पड़ा। कुछ देर तक तो वह इस प्रतीक्षा में रहा कि शायद पटने की ओर जाती हुई कोई सवारी मिल जाये, परन्तु जैसे सवारी का नियम है कि वह जरूरत होने पर नहीं मिलती और जरूरत न होने पर धड़ाधड़ चली आती है, उस दिन भी बलधारीसिंह को कोई खाली सवारी न मिली और उसे पैदल ही पटने तक वापिस जाना पड़ा।

[२]

पटना के रिलीफ कैम्प की ओर से चम्पादेवी को यह सूचना भेजी जा चुकी थी कि उनकी बेलूर में अपने खर्च पर बच्चों के लिए रक्षा-केन्द्र खोलने की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई है और तदनुसार शीघ्र ही कुछ अनाथ बच्चों को स्वयंसेवकों के साथ भेजा जायगा। बेलूर के जमींदार-परिवार के लिए यह बहुत शुभ समाचार था।

चम्पा और सरला अपने दैनिक दर्रे के रूखे जीवन से बहुत ऊब-सी रही थीं। जब किसी विधवा को लाचार होकर केवल कर्त्तव्यवश अपने मृत पति का बोझ ढोना पड़ता है, तब उसके हृदय से सन्तोष की वह शान्ति सर्वथा काफूर हो जाती है, जो इच्छापूर्वक कर्तव्य पालन से मिलती है। वह कठिन से कठिन काम करके भी जब बैठती है, तो उसकी आंखों से बरबस आंसुओं की धारा बह निकलती है। वह सोचती है कि यह काम जो मैंने किया मेरे करने का नहीं था, वह न रहे तो मुझे करना पड़ा। सफलता के समय विधवा के हृदय पर शून्यता का अंधकार छा जाता है, जिससे घर के और बाहर के प्रबन्ध का दर्रा उसे असह्य बोझ प्रतीत होने लगता है। सरला की मानसिक दशा अपनी भाभी से भी अधिक शोचनीय हो रही थी। अब उसके लिये केवल एक ही कर्त्तव्य रह गया था कि अपनी माता के कष्टों को हलका करने का यत्न करे। वह माता के हरेक काम में हाथ बटाती थी, जमींदारी का हिसाब रखती थी, मुनीमों और मुंशियों से बातचीत करती थी, अतिथियों की सेवा-शुश्रूषा का ध्यान रखती और सबसे बढ़ कर माता के साथ मिलकर रोती और रोते-रोते आँसुओं में से ही उसे ढाढस देने का यत्न करती। यही उसके जीवन की दिनचर्या थी, और यही अन्तिम लक्ष्य भी प्रतीत होता था। एक उभरती हुई आयु की नवयुवती की यह दिनचर्या उसकी अन्तरात्मा को सन्तुष्ट कर सकती है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर हृदय वाले ही दे सकते हैं। इस प्रकार मा और बेटी दोनों ही जीवन में एक अशान्तिपूर्ण खोखलेपन का अनुभव कर रही थीं। इसी शून्यता में, जब उन्हें यह अनुभव होने लगा कि उन्हें अनाथ बच्चों की पालना करने का और इस कार्य द्वारा देश-सेवा का अवसर मिलेगा, तब हृदय से शून्यता विदा होने लगी और उसकी जगह सन्तोष की भावना प्रवेश करने लगी।

सरला के उत्साह का कोई ठिकाना नहीं था। कोठी का जितना मर्दाना हिस्सा था, उसमें मुन्शी के बैठने की एक कोठरी को छोड़कर

शेष सारे को खाली करके बच्चों को रखने के लिये तैयार किया गया। गोपालकृष्णसिंह की मृत्यु के पीछे कोठी के बाहरी हिस्से की उपेक्षा होने लगी थी। प्रायः बैठक और उसके साथ के कमरे बन्द ही रहा करते थे। चम्पा और सरला को उनमें घुसने की हिम्मत नहीं होती थी। अन्दर देखते ही उनका दिल भर आता था। दुःख के प्रारम्भिक दिनों में बैठक रोदनगृह का काम देती थी। जब कुछ समय गुजर जाने पर दुःख की बाढ़ उतरने लगी तो सरला ने यही उचित समझा कि मकान के उस हिस्से को बन्द कर दिया जाये। दो साल के पश्चात् जब बैठक को खोला गया तो उसकी बहुत बुरी हालत दिखाई दी। फर्श पर और दीवारों पर गर्द अटी हुई थी, कोने मकड़ी के जालों से भरे पड़े थे और कार्निशों से पक्षियों के घोंसले लटक रहे थे। सरला ने बैठक और पास के कमरों और बरामदे का कायापलट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। पहले कूड़े कबाड़ को निकाल कर बाहर किया गया, फिर सारे मकान में सफेदी कराई गई, जोड़ियों पर रोगन हुआ और अन्त में सारे फर्शों को धो-पोंछ कर शीशे की तरह चमका दिया गया।

जिस दिन यह सब तैयारी पूरी हुई, उससे अगले दिन प्रातःकाल सरला ने अपनी माता को बैठक में ले जाकर सब कुछ दिखाया और उसके हाथ से धूप-बत्ती जलवाई।

यह समारोह अभी चल ही रहा था कि सदर दरवाजे से आकर चौकीदार ने खबर दी 'एक बच्चे को लेकर पटने से एक बाबू आये हैं। उन्होंने यह चिट्ठी दी है'—यह कह कर चौकीदार ने चिट्ठी सरला के हाथ में दी। पटने से बच्चा लेकर आदमी आगया है, इस समाचार ने उसे हर्ष से इतना अधिक उत्तेजित कर दिया कि पत्र को लेते समय उसके हाथ कांप रहे थे। सरला ने पत्र पढ़कर चम्पा को सुनाया। पत्र निम्न लिखित था:—

श्री चम्पादेवी जी,

वन्दे।

श्रीरामनाथ तिवारी के साथ एक अनाथ बच्ची आपके रक्षागृह में पलने के लिये भेजी जारही है। एक दायी भी साथ है। यदि आप इस दायी को अपने रक्षागृह में स्थिर रूपसे रखना चाहें तो तनखा ठहरा कर रखलें। यदि आप किसी दूसरी दायी का प्रबन्ध करना चाहें तो इसे वापिस भेज दीजिये। रक्षा-गृह में एक दायी तो आपको रखनी ही होगी। तिवारीजी बच्ची को आपके हाथों में सौंप कर वापिस आजायेंगे। यदि आपको रक्षा गृह की व्यवस्था ठीक करने के लिए तिवारी जी की आवश्यकता हो तो आप उन्हें २-३ दिन तक वहाँ रख लीजिए, अन्य चार-पांच बच्चे भी अगले सप्ताह आपके यहां भेजे जायेंगे।

भवदीय

प्रभुदास, रक्षा शिविर, पटना

[३]

थोड़ी देर में आगे रामनाथ और उसके पीछे गोद में बच्चे को लिये दायी बैठक में प्रविष्ट हुए। चम्पा और सरला ने उनका बड़े आदर भाव से स्वागत किया। बच्चे के आने से मां और बेटी काफी उत्तेजित हो गई थीं। उस समय रामनाथ को देखने से प्रतीत हो रहा था कि वह भी कुछ कम उत्तेजित नहीं था, परन्तु उसकी उत्तेजना का कारण भिन्न था। उसने पटना में ही सुन लिया था कि चम्पादेवी एक अत्यन्त प्रतिष्ठित कुल की महिला हैं, जो पति के स्वर्गवासी हो जाने के कारण जायदाद का प्रबन्ध स्वयं करती हैं। साथ ही उसने यह भी सुना था कि उसकी सरला नाम की एक कन्या है, जो बहुत पढ़ी लिखी है, अत्यन्त रूपवती है, विवाह योग्य आयु की है। परन्तु न जाने क्यों अब तक उसका विवाह नहीं हुआ। इन सब समाचारों ने रामनाथ की उत्सुकता को बहुत बढ़ा दिया था। तांगे से उतरने पर उसने अपने खद्दर के कुर्ते और धोती पर पड़ी हुई गर्द को अच्छी तरह झाड़ा, सिर पर खद्दर की जो गांधी टोपी थी, उसे साफ करके और नोक निकाल कर फिर सिर पर कुछ थोड़ा सा टेढ़ा कोण बनाते हुए रख लिया। और

अन्त में आँखों पर से चश्मा उतारा, उसे रूमाल से अच्छी तरह पोंछ कर नाटकीय अदा से उसे नाक पर लगा लिया। इस तरह अपनी समझ में महिलाओं से मिलने योग्य हुलिया बना कर पं० रामनाथजी तिवारी वैलूर की कोठी के अन्दर प्रविष्ट हुए।

नमस्कार और शिष्टाचार की पद्धति पूरी हो जाने पर सब लोग बैठक में बैठ गये। रामनाथ कुर्सी पर बैठा, शेष सब पलंगों पर। बात-चीत का सूत्र सरला ने अपने हाथ में लिया। वैसे वह इशारे से अथवा धीमे स्वर में बात करके, अपनी माता की अनुमति प्राप्त करती जा रही थी। सरला ने रामनाथ को बैठने का इशारा करते हुए पूछा—

"आपको मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"

रामनाथ ने कुछ मुस्कराहट के साथ ऊंचे स्वर में उत्तर दिया:—

"कष्ट ? भला हम लोगों को देश-सेवा के काम में कष्ट क्या हो सकता है ? हम तो स्वराज्य के सिपाही हैं। देश के लिये जान भी चली जाये तो परवाह नहीं। और फिर यदि कुछ थकान हुई भी थी तो वह आप लोगों के दर्शनों से बिल्कुल जाती रही। यहां आकर तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी देवस्थान में आगये। (नाक से लम्बा सांस खेंचते हुए) क्या मीठी मीठी सुगन्ध आ रही है !"

सचमुच उस समय धूप के धुंएं की भीनी-भीनी गन्ध वहां व्याप्त हो रही थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त स्तुतिसूचक शब्द चम्पा और सरला के कानों को प्यारे लगे। वह तो स्वाभाविक ही था। साथ ही सरला को कुछ झेंप भी हुई। प्रसंग को बदलने के लिए उसने कहा--"तो अब हमें सबसे पहले बच्चे की व्यवस्था कर देनी चाहिए।"

रामनाथ—वह यह (धाया की ओर इशारा करके) कर ही लेंगी। आप इन्हें स्थान बतला दीजिये। (कुछ रुक कर) ओह ! मैं इनका नाम-परिचय कराना तो भूल गया। इनका नाम मिस तारो है, बेचारी बहुत अच्छी हैं, (हंस कर) और देखिये, यह बाहर से जितनी

काली हैं, अन्दर से उतनी ही सफेद हैं। (मिस तारों से) माफ कीजियेगा, मेरी बात का बुरा न मानियेगा। हंसने की मेरी आदत है, (सरला से) तो बस, इन्हें स्थान बतला दीजिये और बकरी के ताजा दूध का प्रबन्ध करा दीजिये।

'बहुत अच्छा' कह कर सरला प्रबन्ध करने के लिये उठी, तो रामनाथ बोला—"आप ही जा रही हैं, यह काम किसी नौकर के सुपुर्द कर दिया होता, हम लोग अभी और बातें कर लेते।"

सरला ने उत्तर दिया, "आप भाभी से बातें कीजिये, यह प्रबन्ध तो मैं स्वयं ही करूंगी।"

सरला प्रबन्ध करने में लग गई और रामनाथ चम्पा से बातें करने लगा।

थोड़ी देर में व्यवस्था ठीक करके सरला वापिस आगई। इतने में नौकर ने एक छोटी मेज लाकर रामनाथ के सामने रख दी और सूचना दी कि जलपान का सामान आ रहा है। रामनाथ ने नौकर द्वारा दिये हुए जल से हाथ धोकर उन्हें तौलिये से पोंछते हुए कहा, "भाई, आखिर तुम्हें जलपान की बात याद तो आगई। ब्राह्मण से जो बात सबसे पहले पूछनी चाहिये, वह तुमने इतनी देर बाद पूछी; "खैर, देर आयद दुरुस्त आयद" पर आगे के लिए याद रखो कि हम जैसे ब्राह्मणों के आते ही जलपान, दुग्ध-पान आदि की बात पूछा करो, (हंस कर) और देखिये, चम्पादेवी जी (कुछ रुक कर) नहीं यह ठीक नहीं, आपको सरलादेवी जी भाभी के नाम से पुकारती हैं, मुझे भी वैसा पुकारना चाहिये। तो देखिये भाभी जी, बुरा न मानियेगा, हमारी तरफ का रिवाज ऐसा ही है जैसा मैंने कहा, और सरलादेवीजी, आप भी इस बात का ध्यान रखिये। यह भी ध्यान रखिये कि हमारी तरफ घर वालों को भी मेहमान के साथ खाना पड़ता है, आपको भी मेरे साथ जलपान करना पड़ेगा।

सरला ने मुस्कराते हुए कहा—"आप मेहमान तो नहीं हैं, यह तो आप ही का घर है, हम लोग तो जलपान कर चुके हैं।"

"तब तो बहुत ही अच्छा है। आज से यह घर मेरा होगया। अब घर के मालिक की आज्ञा है कि आप लोग जलपान में मेरा साथ देने की कृपा करें।" रामनाथ ने उत्तर दिया।

इस पर सब लोग हंस पड़े। रामनाथ ने मिठाई की तश्तरी चम्पा और सरला के सामने पेश की, उन्होंने उसमें से थोड़ी-सी मिठाई की टुकड़ी उठा ली।

[४]

अगले दिन शाम के समय कोठी के आगन में रक्षागृह का उद्घाटनोत्सव मनाया गया। चम्पा ने आस-पास के देहात के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को निमंत्रित किया था। एक विशेष आदमी सरजानपुर भेजा गया था, उसने वहाँ पहुँच कर पहले माधवकृष्ण और रमा को चम्पा का संदेश दिया। चम्पा ने उन्हें जल्से का सब प्रबन्ध करने के लिये बुलवा भेजा था। हम देख आये हैं कि रमा के अपने जीवन में एक विशेष सूनापन था, उसके कोई संतान नहीं थी। बेचारी जब तक सरजानपुर में रहती, अड़ौसपड़ौस के बच्चों को समेट कर अपना दिल बहलाया करती थी। यह तो उसके सौभाग्य की बात थी कि माधवकृष्ण बहुत ही सज्जन आदमी था, उसका रमा से गहरा प्रेम था। रिश्तेदारों और मित्रों ने अनेक बार प्रेरणा की थी कि तुम दूसरी शादी क्यों नहीं कर लेते? जमींदार का तो बच्चा होना ही चाहिए। वह सदा यही उत्तर देता कि यदि बच्चा किस्मतमें नहीं है, तो दूसरा विवाह करने पर भी कहां से आजायेगा? जब दूसरी शादी से बच्चा होने की गारन्टी नहीं है तो पाप क्यों कमाऊं? परस्पर प्रेम रहते हुए भी बच्चेके बिना घरमें सुनसान तो रहता ही था। रमा की वह घड़ियां बहुत हर्ष की होती थीं, जब वह वेलूर जाकर अपनी जीजी और सरला से मिलती थी। इस बार तो प्रसन्नता के अवसर पर बुलाया गया था, वह संदेश सुनते ही उछल पड़ी। माधवकृष्ण उस समय बैठक में बैठा कारोबार की बातें कर रहा था। कृष्णगोपालसिंह की तबियत कई महिनों से खराब चली आती थी। इस कारण सरजानपुर

की सारी जमींदारी की देखभाल माधवकृष्ण को ही करनी पड़ती थी। रमा ने नौकर को भेज कर माधवकृष्ण को अन्दर बुलवाया और आध घण्टे के अन्दर ही अन्दर सब तैयारी करके बैलूर की ओर रथ द्वारा प्रयाण कर दिया।

बैलूर का संदेशवाहक रमा को संदेश देकर बड़ी हवेली में गया, जहां उसे हवेली की बड़ी मालकिन देवकी के सामने पेश किया गया। इन पिछले कई वर्षों में उसके आकार-प्रकार में काफी भेद आगया है। वह पहिले से काफी अधिक भारी हो गई है। कमर और पैरों में दर्द रहने के कारण कुछ झुक कर चलती है। इन दो बातों को छोड़ कर बाकी सब तरह से देवकी रानी पूर्ववत् है।

हर महीने बोझ में कुछ न कुछ वृद्धि हो जाती है, परन्तु शिकायत यही है कि तबियत बहुत खराब रहती है। शायद ही कोई दिन ऐसा होता हो, जब वैद्यजी से अपच की गोलियाँ न मंगाई जाती हों, परन्तु रसोईघर में तहकीकात करने से मालूम होता था कि घर में सबसे अधिक खुराक उसी की है। अब भी वह इस अटल विचार पर दृढ़ थी कि रामू के पिता बहुत सीधे बल्कि बुद्धू हैं। हर आदमी उन्हें ठग लेता है। इस विश्वास की एक दिन में कई बार घोषणा कर देती थी कि यदि मेरे जैसे सूझ वाली औरत इस घर में न होती तो अब तक सरजानपुर की जमींदारी लुट गई होती। अभिप्राय यह है कि बड़ी हवेली की मालकिन के केवल बाह्यरूप में थोड़ा सा परिवर्तन आया था, अन्दर से वह वैसी ही 'अजर' और 'अमर' थी।

बैलूर के हरकारे ने देवकी के दरबार में उपस्थित होकर चम्पा का निमंत्रण पेश किया, तो देवकीने जो पहले वाक्य कहे, वह यह थे :—

'अच्छा तो अब चम्पादेवीजी ने यह नया रोजगार शुरू किया है, रोजगार तो बुरा नहीं, आमदनी भी होगी शोहरत भी। वह सोचती होगी कि इन कामों से उसकी और उस ढींग सी बड़ी लड़की सरला की बदनामी धुल जायगी।'

यह उस लम्बे भाषण का शुरू का हिस्सा था, जिस में कलहनी स्त्रियों की टकसाली भाषा में परिवार से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की अपने दृष्टिकोण से विस्तृत आलोचना कीगई थी। उस भाषण के समय देवकी की प्रधान-सविच श्यामा और घर के कई नौकर-चाकर भी इकट्ठे हो गये थे। जब भाषण करते करते देवकी थक कर चुप होगई, तो बैलूर के संदेशवाहक ने विनयपूर्वक पूछा—

"तो सरकार, मैं क्या जवाब दे दूं ?"

मालकिन के बोलने से पहले ही प्रधान-सचिव श्यामा ने उत्तर दिया, "ओ तू तो निरा बुद्धू है, अभी तक यह नहीं समझा कि मालकिन का उत्तर क्या है ? तू जाकर कह देना कि यहाँ किसी को तमाशा देखने का शौक नहीं है। डुगडुगी बजाकर बन्दर नचाने वाले यहीं बहुत आ जाते हैं।"

बैलूर का संदेश राधाकृष्णसिंह तक नहीं पहुँचाया जासका। उनकी तबीयत खराब थी, इस लिए उनके पास देवकी की आज्ञा के बिना कोई नहीं जा सकता था और देवकी ने बैलूर का बुलावा इस योग्य नहीं समझा कि उसे अपने पति तक पहुँचने दे।

दूसरे दिन शिशु-रक्षागृह का उद्घाटन बड़े समारोह के साथ किया गया। समारोह के सभापति का पद पं० रामनाथ तिवारी ने सुशोभित किया। संचालकों की ओर से यजमान का काम माधवकृष्ण के जिम्मे रहा। आस-पास के ग्रामों से प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति शामिल हुए थे। चम्पा के उत्साह की कोई सीमा नहीं थी। वह आज अपने जीवन को सफल मान रही थी। सरला जी-जान से कार्य में व्यस्त थी। घर का सब प्रबन्ध रमा ने सम्हाल रखा था। मेहमानों की कोई गिनती नहीं थी, चौबीस घण्टों तक लगभग अखण्ड भोजन-भण्डार चलता रहा।

सभा में रामनाथ ने एक बहुत जोरदार और भावपूर्ण व्याख्यान दिया। प्रारम्भ में आपने बनारस से पटना तक की यात्रा की कहानी खूब रंगदार शब्दों में चित्रित की, फिर मुंगेर की खुदाई का लम्बा-चौड़ा

वर्णन सुना कर श्रोताओं को विश्वास दिला दिया कि 'यदि मैं उस समय वहां न होता तो यह बच्ची ईंट और चूने के ढेर के नीचे आकर मर गई होती।' जिस समय रामनाथ ने खंडहर के अन्दर उतरने की घटना ऊंचे स्वर से सुनाई, उस समय लोग 'धन्य धन्य' कह रहे थे, और चम्पा की आंखों से आंसू बह रहे थे। वह उस सारी कहानी को बहुत ही भक्तिपूर्ण हृदय से सुन रही थी। उस कहानी में इतनी दत्त-चित्त थी कि न उसे 'धन्य धन्य' कहने की सुध थो और न आँसू बहाने की फुरसत। वह पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल रूप से सब बातें सुन रही थी।

व्याख्यान के अन्त में रामनाथ ने चम्पादेवी और उनकी पुत्री की भरपेट प्रशंसा की और समाप्त करते हुए कहा—

"आज बात ही बात में श्रीमती सरलादेवीजी ने कह दिया था कि यह घर तो आपका है। मैंने उनकी इस दक्षिणा को स्वीकार कर लिया है। आज से यह मेरा घर बन गया। इस रक्षागृह की सफलता मेरे जीवन का खास लक्ष्य होगा। मैं यहां बराबर आता रहूंगा, रक्षागृह और उसमें पलने वाले बच्चों की देखभाल करता रहूंगा और मेरी यह भी कोशिश होगी कि मैं यथाशक्ति आप लोगों की कुछ सेवा कर सकूं।"

व्याख्यान के अन्त में उपस्थित जनता के जयकारों से आकाश गूंज उठा। सभा की समाप्ति पर बहुत से लोग रामनाथ से परिचय प्राप्त करने और उसका धन्यवाद देने के लिए आये। उन सभी से रामनाथ खूब हंस कर और हाथ मिला कर ऐसी बेतकल्लुफी से मिला कि चारों ओर रामनाथ तिवारी के नाम की धूम होगई। वह देहात में तिवारीजी के नाम से मशहूर हो गया।

सभा के अन्त में जो लोग रामनाथ से मिलने आये, उन में से एक डाक्टर कैलाश भी था।

[५]

गत दो वर्षों में कैलाश का जमींदार-परिवार के साथ एकतरफा सा सम्बन्ध बना रहा है। वह बीच-बीच में कोठी पर आता रहा है,

परन्तु आता रहा है बिन बुलाये मेहमान की तरह। यह कहने में भी अत्युक्ति नहीं होगी कि दिन में किसी न किसी समय कोठी के इर्द-गिर्द मंडराना उसने अपना नियम सा बना लिया था। जब कभी कोई बहाना मिल जाता, तब कोठी के अन्दर घुसने का साहस भी कर लेता। कोठी के अन्दर पहुँच जाने पर उसकी चेष्टा यह रहती थी कि किसी तरह हवेली के अन्दर घुसने का मौका मिले या किसी निमित्त से सरला से भेंट हो जाये। कोठी के लोग इतना ही जानते थे कि डा० कैलाश गांव का डाक्टर है, और बाबू की आखिरी बीमारी में इलाज के लिये भी आया था। इस कारण अरदली मुनीम आदि लोग उसे सामान्य आदर की दृष्टि से देखते थे। चम्पा का उस की ओर वैसा ही भाव था जैसा गांव के अन्य व्यक्तियों की ओर। कोई काम होने पर बात कर लेती थी अन्यथा उदासीनता की दृष्टि से देखती थी। जब किसी के दुख की बात सुनती थी तो यथा-शक्ति सहायता पहुंचा देती थी अन्यथा बाहर की दुनिया से अलग थलग रहती थी। सरला अपनी आयु और प्रबन्ध की आवश्यकता के कारण संसार के सम्पर्क में रहती थी। वह हरेक चीज को समझती और हरेक तरह के स्पन्दन को अनुभव करती थी। उसे कैलाश का कोठी पर आना अच्छा नहीं लगता था। उसकी अन्तरात्मा कैलाश की आँखों में उसके अन्दर की भावनाओं को पढ़ लेती थी, और उससे दूर रहने की चेष्टा करती थी। वह कैलाश के प्रति अपने भाव को घोर उपेक्षा द्वारा प्रगट कर देती थी। यदि वह शब्द या व्यवहार द्वारा घृणा प्रकाशित नहीं करती थी तो उसका कारण सरला की स्वभाव-सिद्ध शालीनता थी। उधर कैलाश भी अपनी स्वभाव-सिद्ध ढिठाई से उस घोर उपेक्षा की उपेक्षा करता हुआ अपने मार्ग पर चला जाता था।

कैलाश ने इस अवसर को गनीमत समझा। वह सभा के अन्त में रामनाथ से आकर ऐसे मिला, मानो वह गांव का कोई प्रतिष्ठित

व्यक्ति और जमींदार-परिवार का अनन्य व्यक्ति हो। कैलाश जान-बूझ कर रामनाथ से उस समय मिलने के लिये आगे बढ़ा, जब और सब दर्शनार्थी दर्शन की प्रक्रिया समाप्त करके जाचुके थे। उसने जान-बूझ कर एकान्त का समय चुना था। उसने ताड़ लिया था कि रामनाथ जमींदार-परिवार के साथ बहुत कुछ घुल-मिल गया है। यह सोच कर कि इस नवागन्तुक की मार्फत हवेली के अन्दर जाने का और परिचय बढ़ाने का सुअवसर मिल सकता है, कैलाश ने रामनाथ से गहरा बन्धुभाव बढ़ाने का मनसूबा बांधा, और उसी के अनुसार एकान्त होने पर आगे बढ़कर रामनाथ को नमस्कार किया।

रामनाथ ने नमस्कार का हाथ जोड़ कर उत्तर देते हुए कहा—

'नमस्कार, आइये ! आपका परिचय ?' कैलाश ने उत्तर दिया—

'मुझे कैलाश के नाम से पुकारते हैं। मैं इसी गाँव बैलूर में रहता हूँ, और एक तरह से इस इलाके का डाक्टर हूँ। मुझे आप स्वर्गीय बा० गोपालकृष्णसिंह का आत्मीय समझिये।'

'तब तो आप मेरे भी आत्मीय ठहरे, क्योंकि इस घर के मालिकों ने इस घर का चाज मुझे दे दिया है।' यह कह कर रामनाथ जोर से ठहाका मार कर हंस पड़ा। रामनाथ के वाक्य और उस से भी बढ़कर उस प्रसन्नता-सूचक हंसी से कैलाश के दिल पर ठोकर सी लगी। वह स्वयं ही मन में समझने लगा था कि वह जमींदार-परिवार का विशेष व्यक्ति है। उसके अन्दर से प्रश्न उठा कि यह नई कैसी बला है कि एक ही दिन में घर की वाली वारिस बन बैठी। क्षणभर में ही अपने को संभाल कर कैलाश बोला—

'मुझे आप से मिलकर बहुत खुशी हुई, तिवारीजी महाराज। आपके यहाँ पधारने से गाँव के निवासी कृत-कृत्य हो गये।'

'क्यों न हों ! मैं आप लोगों का बड़ा सेवक जो बन कर आया हूँ। मेरे आने से आप लोगों को प्रसन्न होना ही चाहिये।' हंसते हुए रामनाथ ने कहा।

"आप कब तक यहां ठहरेंगे ?" कैलाश ने पूछा।

रामनाथ ने कैलाश के कन्धे पर जोर की थपकी देते हुए उत्तर दिया—

'अभी से पूछने लगे भाई! अभी तो आया ही हूँ। जरा सुस्ताने दो। रक्षागृह की व्यवस्था ठीक ठाक कर दूं। अब तो यह मेरा घर बन गया है। आज इसका कब्जा लूंगा—फिर हिफाजत का पूरा प्रबन्ध करूंगा, तब कहीं जाने का नाम लूंगा।'

बेचारा कैलाश इस उत्तर से एक दम मुर्झा गया। उसका क्या बिगड़ा—यह वही जाने। और कुछ बोलने की हिम्मत न हुई। नमस्कार करके विदा हो गया।

रात को रामनाथ का भोजन हवेली में रसोईघर के पास वाले दालान में हुआ। उसने दो ही दिन में घर के अन्दर जगह बना ली थी। चम्पा पास ही एक चौकी पर बैठी व्यवस्था कर रही थी। बात-चीत के प्रसंग में रामनाथ बोला....

'यह डा० कैलाशचन्द्र साहब कौन हैं ? आप लोगोंके अंतरंग होने का दावा कर रहे थे।'

चम्पा ने उत्तर दिया—

'यह हमारी जात का एक लड़का है, इसी गांव में डाक्टरी करता है। कभी-कभी यहाँ आया करता है। जब सरला के पिता अधिक बीमार हो गये थे, तब शहर के डाक्टर के आने में देर होने पर कभी कभी इसे बुला लिया करते थे।'

सरला रसोई में बैठी थी। कैलाश का नाम सुनकर बाहिर आकर पास खड़ी हो गई। मां की बात समाप्त होने पर बोली—'तिवारी जी, वह अच्छा आदमी नहीं है। बिना किसी काम के यहाँ चक्कर काटा करता है। कई बार तो बहाना बनाकर हवेली के अन्दर

घुसने की भी चेष्टा करता देखा गया है। मैं तो इसका यहाँ आना बिल्कुल पसन्द नहीं करती।'

रामनाथ को यह बात बहुत रुचिकर प्रतीत हुई। जैसे रामनाथ से मिलकर कैलाश के मन में अनायास ही विरोध की सी भावना उत्पन्न हो गई थी, इसी प्रकार कैलाश से मिलकर रामनाथ का हृदय भी प्रतिकूलता का अनुभव करने लगा था। कैलाश और रामनाथ के इस समय के मनोभाव को 'प्रथमदर्शन में प्रेम' के सर्वथा समान 'प्रथमदर्शन में विरोध' का भाव कह सकते हैं। रामनाथ ने उत्साहपूर्वक घोषणा की—

'यदि आपको कैलाश बाबू का यहाँ आना अच्छा नहीं लगता, तो यह क्या कठिन काम है। यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है। कल ही बुलाकर ऐसी डपटी दूंगा कि इधर का रास्ता तक भूल जायेंगे। मैं उन्हें.........'

चम्पा को रामनाथ की यह बात अच्छी नहीं लगी। अपने घर पर किसी का अपमान करना या किसी के लिए द्वार बन्द करना, चम्पा जैसी पुराने ढंग की भारतीय स्त्री को कैसे पसन्द हो सकता था। उसने रामनाथ की बात को बीच में काटते हुए कहा—

'नहीं तिवारी जी, ऐसा कोई अप्रिय काम न कीजिये, जो इस घर की मर्यादा के विपरीत हो। यदि कोई बात समझानी भी हो तो प्रेम से समझानी चाहिये। वह यहाँ देर से आता-जाता है। सरला के बाबू जब जिन्दा थे, तब भी तो आया करता था।'

रामनाथ हंस कर बोला—'माताजी, आप तो बहुत ही नरमदिल हैं। आप साक्षात् देवी हैं। और कैलाश बाबू जैसे आदमी भूत होते हैं—लातों के भूत। वे बातों से नहीं मानते। आप देखिये—सरलाजी तो उससे बहुत नाराज हैं।'

कमला बीच में बोल उठी—

'मेरी नाराजगी का यह अर्थ नहीं तिवारीजो कि आप कैलाश बाबू को कोई कठोर बात कहें या उससे दुर्व्यवहार करें। मैंने तो केवल एक बात कही। कुछ करने को तो नहीं कहा।'

तिवारीजी ने बातचीत का रुख पलटते हुए बहुत गम्भीर होकर कहा—

'यह शास्त्र का सिद्धान्त है कि दुष्टों की चर्चा करने से भी पाप होता है। कैलाश बाबू की चर्चा करने भर का यह फल हुआ है कि मेरी थाली खाली हो गई है और अभी तक उसमें कचौरी लाकर नहीं डाली गई। माताजी, कचौरी जल्दी मंगवाइये, कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण भूखा रह जाय और आप लोगों को व्यर्थ का पाप लगे।'

चम्पा ने घबरा कर सरला की ओर देखा। सरला 'अभी लाई।' कहकर रसोईघर की ओर चली गई। चम्पा ने रामनाथ से मानो क्षमा मांगते हुए कहा—

'तिवारीजी, क्षमा कीजियेगा। बातचीत के सिलसिले में भूल हो गई।'

'आप यह क्या कहती हैं, भाभीजी, आप तो मेरी मा हैं। क्षमा जैसा शब्द कहकर आप मुझे पाप न चढ़ायें। बातें करने का मर्ज तो मुझे ही है। मैंने ही आपको बातचीत में घसीट लिया।'

सरला इतने में खाना ले आई और थाली में परोस दिया। रामनाथ खाने में व्यस्त हो गया।

[६]

बेलूर में तीन दिन ठहर कर रामनाथ पटना वापिस चला गया। जाते हुए चम्पा और सरला के सम्मुख यह घोषणा करता गया कि 'मैं इस रक्षा-गृह के लिये और बच्चे लेकर शीघ्र ही आऊंगा।' उस समय यह भी देखूंगा कि आप लोगों ने मुझे अपनाने का जो आश्वासन दिया है वह सच्चा है या नहीं। आप लोगों के सेवा-भाव और प्रेम से

मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैं शीघ्र ही लौट कर आऊंगा। (सरला की ओर देख कर हंसते हुए) और 'देखिये सरला जी, मेरे आने पर कचौरी और अरबी की सब्जी बनाना न भूलियेगा। वह ब्राह्मण की दक्षिणा है।'

जब रक्षागृह के उद्घाटनोत्सव की धूम-धाम और रामनाथ का हल्ला समाप्त हो गये, तो घर में एक दम सुनसान-सा प्रतीत होने लगा। रात के भोजन के पश्चात् घर के शान्त हो जाने पर परिवार के सब लोग मिल कर बातचीत करने लगे। चम्पा और सरला के अतिरिक्त रमा और माधवकृष्ण अभी वहीं थे। मुन्ना को पढ़ने के लिए पटना के एक मिश्नरी नरसरी स्कूल में भेज दिया गया था। वह पांच छः साल का हो गया था। गाव में पढ़ाई का प्रबन्ध नहीं हो सकता था। इस कारण जमींदारों की प्रचलित पद्धति के अनुसार मुन्ना को यूरोपियन शिक्षकों द्वारा संचालित शिक्षणालय में भेजना आवश्यक समझा गया था। चारों घर के व्यक्ति जब दिन भर की हलचल से मुक्त होकर हवेली की बैठक में बैठे तो इनमें स्वभाव से गत तीन दिनो की घटनाओं पर बातचीत होने लगी। रमा ने प्रारम्भ किया, "बहुत रोकने पर भी आज तिवारीजी चले ही गये। उनके कारण तीन दिन तक बड़ी रौनक रही, बहुत ही खुश दिल और परोपकारी आदमी हैं।"

चम्पा—'पाँच सात दिन में फिर आने को कह गये हैं, बहुत ही अच्छे आदमी हैं। मुझे तो तिवारीजी को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों मेरा अपना ही बेटा हो। हम लोगों के साथ बहुत प्रेम से बर्ताव करता है।'

सरला माँ की बात सुन कर बोली—

"भाभी, तुम तो सारी दुनिया को अच्छा समझती हो, और झटपट विश्वास कर लेती हो। अभी हमने तिवारीजी को इतना कहाँ देखा है कि कोई राय बना सकें। मुझे तो उनकी कोई कोई बात बहुत अखरती है। वे खाने-पीने की बातें बहुत अधिक करते हैं, जो अच्छी नहीं लगतीं।"

माधवकृष्ण ने सरला का समर्थन करते हुए कहा, "भाभी, मुझे तो इस तिवारी में बहुत चिबल्लापन दिखाई देता है। यह बातें बहुत अधिक करता है, और बनता भी बहुत है।"

चम्पा ने उत्तर दिया—"हमें किसी के बारे में ऐसी जल्दी बुरी राय नहीं बनानी चाहिए, अभी हमने तिवारीजी को पूरी तरह देखा भी तो नहीं।"

सरला बात को बीच में ही काट कर बोली—"तो भाभी, हमें पूरी तरह देखे बिना अच्छी राय भी तो नहीं बनानी चाहिए।"

चम्पा ने उत्तर दिया—"भाई, मैं तो यह समझती हूं कि हर एक आदमी को अच्छा ही समझना चाहिए, जब तक वह बुरा सिद्ध न हो। हर एक पर शक करना अच्छा नहीं।"

माधवकृष्ण ने मानों व्यवस्था देतेहुए कहा, "भाभी, मेरी तो यह सम्मति है कि अभी उसे भला या बुरा कुछ भी न समझा जाये, सात दिन में वह फिर आने वाला है ही, तब देख लेना कि कैसा है? और असल बात तो यह है कि उसके अच्छे बुरे होने से हमें कोई मतलब नहीं। बच्चों को लायेगा तो उन्हें रक्षागृह में रख लेंगे।"

इस तरह वह पारिवारिक सभा तिवारीजी के सम्बन्ध में किसी अन्तिम निर्णय पर पहुंचे बिना ही समाप्त हो गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल माधवकृष्ण और रमा भी विदा होगये। सुरजानपुर पहुंचने पर माधवकृष्ण को सूचना मिली कि उसके नाम बड़े भाई का सन्देश आया हुआ है कि 'बेलूर से आते ही मेरे पास उपस्थित हो।' राधाकृष्णसिंह बहुत दिनों से बीमार चले आते थे। सन्देश पाकर माधवकृष्ण ने ख्याल किया कि शायद सेहत के सम्बन्ध में कोई विचार करना होगा, और वह जिस तरह बेलूर से आया था, उसी तरह भाई के पास चल दिया। राधाकृष्णसिंह जिस कमरे में रोग-शय्या पर पड़े थे, वह हवेली के अन्दर था। जब माधवकृष्ण अन्दर

पहुँचा तो पहले भाभी रानो के दर्शन हुए। देवकी बरामदे में एक पलंग पर बैठी टहलिनी से सिर पर तेल लगवा रही थी। माधवकृष्ण को देखकर मुंह फेर लिया और दीवार की ओर देखने लगी। माधव-कृष्ण ने समझा कि शायद भाभी ने देखा नहीं, इस कारण आगे बढ़कर बोला—

"भाभी, भैय्या जी ने मुझे बुलवाया था। उनकी तबियत कैसी है? क्या काम था?"

देवकी ने मुंह उसकी ओर किये बिना ही उत्तर दिया—

"काम का मुझे क्या मालूम? अन्दर हैं, जाकर पूछ लो!"

माधवकृष्ण को देवकी की इस मुद्रा से आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि उसकी क्रोध-मुद्रा प्रसिद्ध थी। वह दिन के अधिक भाग में इसी मुद्रा में दिखाई देती थी। इस समय वह उसका कारण समझने में असमर्थ रहा। बड़े जोर की लाल झाड़ी दिखा दी गई थी, इस कारण माधवकृष्ण देवकी से क्रोध का कारण पूछने का कोई साहस न कर सका और चिक उठा कर कमरे में चला गया।

राधाकृष्णसिंह की चारपाई के पास एक नौकर खड़ा था, जिसकी ड्यूटी यह थी कि कोई मक्खी बैठे तो उसे उड़ा दे, या पानी आदि की जरूरत हो तो दे दे। माधवकृष्ण ने हाथ जोड़कर नमस्ते की। राधा-कृष्ण ने निर्बल स्वर से कहा—"आओ माधव, बैठो। (नौकर की ओर इशारा करके) इसे जाने को कहो।" नौकर चला गया तो कुशल-प्रश्न का रिवाजी उत्तर देने के पश्चात् राधाकृष्णसिंह ने कहा—

"माधव भैया, मैं जो बात तुमसे कहने लगा हूँ उससे मुझे स्वयं दुःख हो रहा है। मैं जानता हूँ तुम्हें भी होगा पर लाचारी से कहना पड़ता है। वक्त आ गया है कि अब तुम्हारा और हमारा बंटवारा हो जाना चाहिए।"

माधवकृष्ण को ऐसी कोई बात सुनने की अणुमात्र भी सम्भा-वना नहीं थी। वह सदा अपने बड़े भाई का आज्ञाकारी सेवक बन कर

रहा था; यहां तक कि वह अपनी अलग सत्ता को भूल सा गया था। आज जब पितृ समान बड़े भाई ने बंटवारे का प्रस्ताव किया तो माधवकृष्ण ऐसे रह गया मानो उसे काठ मार गया हो। आश्चर्यित होकर बोला—

"बंटवारा? भैया बंटवारा कैसा? किसके साथ?" राधाकृष्णसिंह स्वयं कुछ ऐसे ही उत्तर की आशा रखता था, माधव को कभी छोटा भाई नहीं समझा; सदा बच्चा ही माना। आज जो प्रस्ताव उसने किया उसके लिए उसे घण्टों तक अपने मन को समझा बुझाकर, ठोक-पीट कर तैयार करना पड़ा था। बहुत देर तक वह इस बात पर भी विचार करता रहा कि यदि माधवकृष्ण ने कोई प्रेम से प्रेरित इन्कारी जवाब दे दिया तो क्या करूंगा। सोचा था कि जब नाराजगी हो जाती है तब बच्चों से भी तो बंटवारा कर लेना पड़ता है। यों अन्दर ही अन्दर उसका दिल डरता था कि बंटवारे की बात उठाकर भी शायद वह उसे पूरा न कर सकेगा। ऐसी ऊहापोह की दशा में ही माधव ने आकर उसे नमस्कार किया। तब चिरकाल के प्रयत्न से तैयार किये उपर्युक्त वाक्य कहे। उसने यह वाक्य ग्रामोफोन रेकार्ड की भांति कह डाले थे, परन्तु जब माधवकृष्ण ने आश्चर्यित होकर प्रश्न किया कि भैया बंटवारा कैसा? किसके साथ? तो राधाकृष्ण के मन में स्वयं यह प्रश्न घूमने लगा कि बंटवारा कैसा? वह संशयात्मक होकर विचार-सागर में गोते खाने लगा और चुप हो गया।

बड़े भाई को चुप देखकर माधवकृष्ण ने अपने प्रश्न को दोहराते हुए कहा—

"भैया तुमने बतलाया नहीं यह बंटवारे की बात क्यों पैदा हुई। मैंने तो कभी अपने को तुमसे अलग समझा ही नहीं, अपने में अपना बंटवारा कैसा?"

राधाकृष्णसिंह फिर भी चुप रहा, उसे सूझ नहीं रहा था कि क्या उत्तर दे। वह एक विकट उलझन में था, उसे इस उलझन में से निकालने के लिए गृहस्वामिनी श्रीमती देवकी रानी ने प्रवेश करते हुए कहा—

"उत्तर क्यों नहीं देते हो। कह दो कि अब इस ढोंगबाजी से काम नहीं चलता। छोटे भैया बनकर बहुत बरसों तक जायदाद को खा चुके हो, अब नहीं खाना मिलेगा। हमसे अब तुम्हारा सम्बन्ध नहीं रह सकता। जाओ और बैलूर वालों के यहां बस जाओ। उन्हें तुम्हारी जरूरत भी है। भाग-भाग कर वहां जाते हो, दुश्मनों से मिलो और हमारी जायदाद पर हाथ साफ करो, यह दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।"

देवकी की इस गोलाबारी ने यों तो माधवकृष्ण को एकदम ही विचलित कर दिया परन्तु एक लाभ भी हुआ। उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। उसे मालूम हो गया कि उसका दोष क्या है। वह और रमा चम्पा के निमन्त्रण पर बैलूर चले गये थे, यही उनका गुरुतर अपराध था। उसकी सजा थी बंटवारा। माधव ने देवकी की अत्यन्त कड़वी बात का उत्तर शांतिपूर्वक देने का यत्न करते हुए कहा—

'भाभी, तुम्हारी बात से मैं यह समझा हूं कि हम तुम्हारे शत्रुओं से मिलते जुलते हैं इस कारण हमें अलग होने का दण्ड दिया जा रहा है, परन्तु बैलूर वाले हमारे शत्रु नहीं हैं, वह तो आत्मीय ही हैं।'

देवकी ने और अधिक गर्म होते हुए कहा "वह तुम्हारे आत्मीय हैं इसलिए अब तुम हमारे आत्मीय नहीं रह सकते। घर में आग भी लगाओ और घर वाले भी बनो, यह दो बातें इकट्ठी नहीं चल सकतीं। बस, ज्यादा बहस करने की जरूरत ही नहीं है। यही निश्चय समझो कि बंटवारा होगा।"

इसके आगे वस्तुतः बहस की कोई गुंजाइश नहीं थी तो भी डूबते

ने तिनके का सहारा लेते हुए राधाकृष्णसिंह की ओर देखकर कहा—"क्यों भय्या, क्या तुम्हारा भी यही अंतिम निश्चय है ?"

राधाकृष्णसिंह जो इस बातचीत को दुःखित हृदय से चुपचाप सुन रहा था, बोला 'माधव, तूने सुन ही लिया ! मैं और कुछ नहीं कहना चाहता।"

माधव उठ खड़ा हुआ और क्रोध से कांपते हुए स्वर से बोला—"भाभी ! जैसी तुम्हारी इच्छा वैसा ही करो। मुझे इस बात का अधिक दुःख है कि तुमने यह झगड़ा भैय्या की बीमारी में उठाया। खैर, तुम्हारी मर्जी। जैसा चाहो करो। मुझे इसमें न कुछ कहना है न करना।" यह कह कर माधवकृष्ण कमरे से बाहर आने लगा परन्तु दरवाजे तक पहुंच कर फिर लौट आया और बड़े भाई की चारपाई के पास आकर बोला—"भैय्या बंटवारा हो या न हो इससे मेरा कोई वास्ता नहीं, तुम्हारी बीमारी में सेवा करने का मेरा अधिकार बना रहना चाहिये। आशा है भाभी को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

राधाकृष्ण के होंठ उत्तर के लिये हिलना चाहते थे कि देवकी गरज उठी "बस रहने दो इन बनावटी बातों को। अब इस घर में तुम नहीं आ सकोगे। जाकर उन्हीं की सेवा करो जिनके बगैर रात नहीं बीतती।"

माधवकृष्ण ने इस उत्तर से भी निराश न होकर प्रश्नसूचक दृष्टि से राधाकृष्णसिंह की ओर देखा, मानो पूछ रहा हो आप क्या कहते हैं ? राधाकृष्णसिंह ने कोई उत्तर न देकर करवट बदल ली, उसकी आँखो से आँसू बह रहे थे।

[७]

बेलूर से पटना वापिस पहुँच कर रामनाथ ने रिलीफ कैम्प के अध्यक्ष को अपनी यात्रा का और बेलूर में रक्षा-गृह की स्थापना का खूब मनोरंजक वर्णन सुनाया। इस वर्णन का सारांश यह था कि बेलूर का रास्ता बहुत खराब है। कच्चे रास्ते में घोड़ा-गाड़ी पर जाना बहुत बड़े साहस का काम था, जो मैंने बड़ी सफलता से सम्पादित किया। रक्षा-गृह

की स्थापना का समाचार सुनाते हुए रामनाथ ने यह भी बताया कि जनता पर उसके भाषण का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यहां तक कि सभा-मण्डप देर तक 'तिवारीजी की जय' के नारों से गूंजता रहा।

इन सब समाचारों का अध्यक्ष महोदय पर बहुत प्रभाव पड़ा। बिचारे दुबले-पतले आस्तिक व्यक्ति थे, बोल उठे 'यह ईश्वर की कृपा है कि सब कार्य निर्विघ्न और सफलतापूर्वक हो गया।'

इस पर रामनाथ ने उच्च स्वर से हंसते हुए कहा —'वाह साहब, यह आपने क्या कहा, किया सब कुछ मैंने और कृपा ईश्वर की। इसीलिए तो मुझे ईश्वर से चिढ़ है कि वह किसी दूसरे की इज्जत नहीं देख सकता। काम हम करें, यश उसको मिले। यह कहां का न्याय है।'

अध्यक्ष महोदय महात्मा गांधी के पक्के शिष्य, पूर्ण आस्तिक और अहिंसा की मूर्ति थे। रामनाथ की बात सुनकर चौंक उठे। उन्होंने एक बार रामनाथ के कपड़ों को ध्यान से देखा कि शुद्ध खद्दर के हैं या नहीं। देखा कि वह शुद्ध खद्दर के ही थे। फिर उसके मुंह की ओर देखा कि वह मजाक कर रहा है या दिल की बात कह रहा है। कई क्षण तक देख कर भी वह इस प्रश्न का उत्तर न पा सके तो बोले "तिवारीजी यह आप क्या कह रहे हैं। एक सत्याग्रही को ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये।"

रामनाथ ने तुरन्त उत्तर दिया 'माफ कीजिएगा महाशयजी, आप जैसों ने ही तो ईश्वर को दुराग्रही बना रखा है। अगर वह सच्चा सत्याग्रही होता तो वह फौरन बोल उठता कि मेरी इस में कोई कृपा नहीं है। यह तिवारी के परिश्रम का फल है।' वाक्य पूरा करके रामनाथ ताली बजा कर हंस पड़ा। अध्यक्ष महोदय इस उत्तर से अप्रतिभ होकर चुप हो गए।

अध्यक्ष महोदय से निबट कर रामनाथ रिलीफ कैंप से बाहर जा रहा था कि दरवाजे पर बलधारीसिंह से भेंट होगई। बलधारी रामनाथ से बहुत नाराज था। यह आश्चर्य की बात है कि सीधे हारने

की अपेक्षा मनुष्य बेवकूफ बन कर अधिक लुब्ध हो जाता है। बलधारीसिंह भी दिल ही दिल में रामनाथ से बहुत क्रुद्ध रहा था और मनसूबे बांध रहा था कि जब रामनाथ मिलेगा, तो खूब आड़े हाथों लूंगा। अब रामनाथ सामने आया तो बलधारीसिंह का मनसूबा मनसूबा ही रह गया, क्योंकि रामनाथ की प्रतिभा बलधारीसिंह के मनसूबे से अधिक तेज निकली। बलधारीसिंह को देखते ही रामनाथ ने उसके कन्धे पर हाथ मारते हुए उच्च स्वर से कहा—

'वाह यार ! तुमने तो हमें खूब हीं चकमा दिया। उस दिन गांव से लेकर सारा दूध गटागट चढ़ा गए और फिर लौट कर दर्शन भी न दिये। बच्चा बेचारा रास्ते भर रोता रहा।'

रामनाथ की आवाज से खिच कर बहुत से लोग वहां इकट्ठे हो गये और पूछने लगे कि क्या हुआ ? बेचारा बलधारीसिंह रामनाथ के उस अचानक आक्रमण से ऐसा बौखला गया कि एकदम कुछ जवाब न दे सका। रामनाथ ने जोर से हंसते हुए अपने पहले आरोप की व्याख्या जारी रखी। अजी, आप क्या पूछते हैं इन वकीलों का हाल ? कांग्रेस में आगये तो क्या हुआ। हैं तो वकील ही। हमें उस दिन खूब ही उल्लू बनाया, इत्यादि। रामनाथ की उस लम्बी व्याख्या के मध्य में बलधारीसिंह ने कई बार यत्न किया कि लोगों के सामने अपना पक्ष पेश करे, परन्तु उस नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता था। मैदान रामनाथ के हाथ रहा। बलधारीसिंह अप्रतिभ सा होकर बुड़बुड़ाता हुआ वहां से चला गया।

कैंप से लौट कर रामनाथ अपने डेरे पर आया और निवृत्त होने में लग गया। भोजन आदि से निबट कर आराम करने के लिये लौटा ही था कि रिलीफ कैम्प के अध्यक्ष की चिट्ठी लेकर एक स्वयंसेवक पहुँच गया। रामनाथ ने चिट्ठी खोल कर पढ़ी। उस में रामनाथ को आदेश दिया गया था कि वह यथासम्भव शीघ्र मुंगेर पहुँच कर, वहां के

काम में सहायता दे। रामनाथ ने उस पत्र को दो-तीन बार पढ़ा, फिर उसे लिफाफे में बंद करके वास्कट की जेब में डाल लिया और स्वयंसेवक से कहा कि अध्यक्ष महोदय को उत्तर दे देना कि मैं शीघ्र ही उनसे मिलने आऊंगा। स्वयंसेवक चला गया और रामनाथ लेट कर विचार करने लगा। स्वाभाविक बात तो यह थी कि वह अध्यक्ष की आज्ञा पाते ही मुंगेर के लिए रवाना हो जाता, परन्तु रामनाथ के दिल ने वैसा स्वीकार नहीं किया। बेलूर से चलते हुए ही उसने संकल्प कर लिया था कि वह दो-एक दिन में फिर वहीं लौटेगा। पटना पहुँच कर वह संकल्प कुछ अधिक दृढ़ हो गया। उसका दिल बेलूर जाने को क्यों चाहता है, इस प्रश्न का समाधान रामनाथ ने मन ही मन में कई तरह से कर लिया था। जिस बच्चे को रक्षागृह में छोड़ा है, उसकी देखभाल भी तो करनी चाहिये। रक्षागृह में कुछ अन्य बच्चों का पहुंचना भी आवश्यक है। इस प्रकार की कई युक्तियों से उसने अपने मन को समझा लिया था कि देश के कल्याण के लिये मेरा इस समय बेलूर वापिस जाना और उसके आस-पास रहना आवश्यक है। मूल कारण केवल इतना ही था कि उसका दिल बेलूर जाने के पक्ष में था। दार्शनिक लोग कहते हैं कि मनुष्य युक्तियों की सहायता से सत्यासत्य का निर्णय करता है, परन्तु असल बात इस से बिल्कुल उल्टी है। मनुष्य प्रायः हृदय की प्रेरणा से निर्णय करता है और उस निर्णय के समर्थन में मस्तक को लगा कर युक्तियां घड़ता है। रामनाथ भी साधारण मनुष्य था, उसका जी चाहता था कि बेलूर वापिस जाऊं। इस इच्छा की पुष्टि के लिए उसने कई सुन्दर-सुन्दर युक्तियां तलाश कर लीं। वे सभी युक्तियां सार्वजनिक हित के आधार पर बनायी गई थीं।

रामनाथ को बेलूर की ओर खींचने वाली मुख्य रूप से कौन सी चीज थी, यह अभी वह स्वयं ही स्पष्ट रूप से नहीं जानता था। वहां का सहानुभूतिपूर्ण वातावरण, चम्पा का माता के सदृश व्यवहार और

सरला की सरल मूर्ति—इन में से क्या मुख्य था और क्या गौण, यह अभी रामनाथ नहीं समझ रहा था। वह इतना तो अनुभव कर रहा था कि बैलूर के सम्पूर्ण चित्र की पृष्ठभूमि में उसे सरला की मूर्ति दिखाई दे रही थी, परन्तु केवल वही चीज अकेली उसे बैलूर की ओर खेंचती हो, ऐसा नहीं था। वहां की प्रायः सभी चीजों ने उसे आकृष्ट किया था। उसे यह बात भी याद आ रही थी कि कैलाश बाबू के सामने आने पर सरला घबरा गई थी और चाहती थी कि किसी तरह कैलाश का कोठी में आना बन्द किया जाये। उस समय रामनाथ ने मन ही मन में यह सकल्प कर लिया था कि वह कैलाश को वहां से निकाल कर छोड़ेगा। वह अनुभव करता था कि इस बात से सरला प्रसन्न होगी।

बहुत देर तक रामनाथ के मन में कर्तव्य और भावुकता का सङ्घर्ष होता रहा। कर्तव्य कहता था कि अध्यक्ष की आज्ञा के अनुसार मुंगेर जाकर सेवा के कार्य में लगना चाहिए और भावुकता कहती थी कि बैलूर जाना चाहिए। अन्त में, भावुकता की जीत हुई। रामनाथ इस परिणाम पर पहुंचा कि कुछ और बच्चों को लेकर शीघ्र ही बैलूर के रक्षागृह में प्रविष्ट कराने के लिए जाने की आज्ञा अध्यक्ष से मांगी जाये।

रामनाथ पहले रिलीफ कैम्प के शिशु विभाग में पहुंचा, वहां जाकर पूछताछ की तो पता चला कि उस समय तो कोई शिशु वहां नहीं है, परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल २ बच्चों के आने की आशा है। इस समाचार से सन्नद्ध होकर रामनाथ अध्यक्ष के कार्यालय में पहुँचा तो देखा कि बा० बलधारीसिंह डाक की चिट्ठियां खोल खोलकर अध्यक्ष महोदय को सुना रहे हैं और अध्यक्ष महोदय जो उत्तर बता रहे हैं, उन्हें नोट करते जाते हैं। पूछने पर विदित हुआ कि बलधारीसिंह को अध्यक्ष का पी० ए० (निजी सहायक) नियुक्त किया गया है। अब रामनाथ की समझ में आगया कि उसे उतना शीघ्र मुंगेर चले जाने का हुक्म क्यों मिला। इस बात के ध्यान में आते ही उसका यह निश्चय और

भी दृढ़ हो गया कि वह मुंगेर न लौट कर बेलूर वापिस आयेगा।

[८]

रामनाथ का विचार था कि दो-तीन दिन में ही वापिस बेलूर पहुंच जाये। परन्तु कुछ कारणों से उसे वापिस आने में १० दिन लग गए। भूकम्प से प्रभावित स्थानों से अनाथ शिशुओं के इकट्ठा होने में २-३ दिन लग गए, फिर उसके साथ जाने के लिये अच्छी धाया के तलाश करने में कुछ समय लगा। सारी तैयारी हो जाने पर दो दिन की देर अध्यक्ष के पी० ए० (बलधारीसिंह) की कृपा से हुई, जिसने रामनाथ के नाम लिखे हुए आदेश-पत्र पर अध्यक्ष के हस्ताक्षर कराने में यथासम्भव टाल-मटोल की। अन्त में, नवें दिन सायंकाल होने पर रामनाथ को अध्यक्ष की ओर से लिखित आदेश मिल गया कि वह ३ अनाथ बच्चों को लेकर, बेलूर के शिशु-रक्षागृह में छोड़ आए।

जब रामनाथ बच्चों को लेकर बेलूर पहुंचा, तो उसने वहां के वातावरण में बहुत-सा परिवर्त्तन पाया। जहां वह शान्ति और सन्तोष का राज्य छोड़ गया था, वहां उसे घबराहट और उत्तेजना का दौर-दौरा दिखाई दिया। इस परिवर्त्तन का कारण समझने के लिए, हमें सिंह-परिवार का गत १० दिनों का संक्षिप्त इतिहास सुनाना पड़ेगा।

हम यह तो जान ही चुके हैं कि सुरजानपुर की महारानी देवकी ने माधवकृष्ण को अल्टीमेटम दे दिया था; जमींदारी के बंटवारे की घोषणा वस्तुतः युद्ध-घोषणा के समान ही हुआ करती है। उसमें जो पक्ष बंटवारे की मांग करता है वह अपने व्यवहार से सूचित कर देता है कि अब साझीदारी नहीं रह सकती, इस कारण सम्पत्ति का विभाजन हो जाना चाहिए। देवकी की बंटवारे की घोषणा माधवकृष्ण के लिए युद्ध-घोषणा के बराबर ही थी।

जब से गोपालकृष्ण ने अपना हिस्सा अलग कर लिया था, तब से राधाकृष्णसिंह की ओर अपनी मिली हुई जमींदारी का प्रबन्ध माधव-

कुछ ही करता था। राधाकृष्ण सीधे स्वभाव का, निर्बल इच्छा शक्ति वाला व्यक्ति था। जब तक उसे कोई व्यक्ति भड़का कर अपने रास्ते न लगा ले, तब तक वह किसी चीज में दखल नहीं देता था। सब काम चलते जाएं और वह भी आराम से बैठा रहे, उसे यही अच्छा लगता था। माधवकृष्ण पर जमींदारी का बोझ डालकर उसने कभी यह नहीं पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? इधर माधवकृष्ण बड़ी तत्परता और ईमानदारी से जमींदारी का प्रबन्ध करता रहा। वह आयु में अपने बड़े भाई से बहुत छोटा था। बड़े भाई को वह भाई की दृष्टि से नहीं, पिता की दृष्टि से देखता था। सुरजानपुर की जमींदारी का प्रबन्ध करते हुए उसने कभी भेद-भाव नहीं रखा था। देख-भाल और हिसाब-किताब की दृष्टि से उसका प्रबन्ध प्रशंसनीय था।

इधर कुछ समय से राधाकृष्ण के अन्तःपुर में, माधवकृष्ण और रमा के विरुद्ध एक षड्यन्त्र सा तैयार हो रहा था। यों तो बहुत पहले से ही बजरंग जैसे मुंहलगे कारिन्दे देवकी को भड़काते रहते थे। कभी कहते कि माधव बाबू अधिक समय वेलूर में ही बिताते हैं, जमींदारी की देख-भाल नहीं करते। कभी समाचार देते थे कि गांव से आया हुआ बढ़िया अनाज माधव बाबू के यहां डाला गया है और घटिया अनाज बड़ी हवेली में। ऐसी-ऐसी शिकायतों को लेकर जब देवकी राधाकृष्ण के पास पहुंचती थी, तो उसका उत्तर प्रायः यह होता था, 'तुम्हें गलत खबर मिली है। माधवकृष्ण मेरे बेटे के बराबर है। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास है कि जो लोग उसकी बुराई करते हैं, वह झूठ बोलते हैं।' देवकी इस उत्तर से दिल ही दिल में कुढ़ती थी, परन्तु लाचारी से चुप हो जाती थी, कुछ समय से दो नई बातें ऐसी हो गईं, जिससे माधवकृष्ण के विरोधी दल ने अधिक जोर पकड़ लिया। एक बात तो यह थी कि राधाकृष्ण की सेहत खराब रहने लगी—उनके जोड़ों में दर्द रहने लगा, जिसके कारण महीनों तक चारपाई के मेहमान बन जाना पड़ा; दूसरी बात यह हुई कि उनका पुत्र 'रामू' उम्र में बड़ा होकर और दसवीं श्रेणी

तक पढ़-लिख कर पहले 'छोटे बाबू' और फिर 'रामकृष्ण बाबू' के नाम से पुकारा जाने लगा। 'रामकृष्ण बाबू' बन कर वह घर के सभी मामलों पर सम्मति भी देने लगा जिसका सबसे अधिक प्रभाव देवकी पर होता था। रामकृष्ण बाबू ने अपनी मां के सामने बजरङ्ग के इस कथन की जोरदार पुष्टि की थी कि 'माधव चचा हमारी सारी जमींदारी को खा रहे हैं, यदि बंटवारा करके प्रबन्ध उनके हाथ से छीना न गया, तो कुछ ही वर्षों में हम लोगों को दाने दाने का मोहताज बन जाना पड़ेगा।' इस सम्मति को सुनकर देवकी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि जायदाद का बंटवारा हो जाना चाहिए। इसी बीच में समाचार मिला कि बैलूर में एक जलसा हुआ है, जिसमें माधवकृष्ण और रमा भी सम्मिलित हुए हैं। समाचार देने वालों ने बतलाया कि उस जलसे में माधवकृष्ण लीडर बना हुआ था। यह भी कहा गया कि माधवकृष्ण की ओर से यह घोषणा की गई कि वह सुरजानपुर की सारी जमींदारी बैलूर के शिशु-गृह के अर्पण कर देगा। इन सब समाचारों का देवकी पर क्या प्रभाव हुआ और देवकी ने उसके कारण क्या किया, यह सब कुछ पाठक जान चुके हैं। राधाकृष्णसिंह बेचारा उस सारे दुःखान्त नाटक का दर्शक मात्र था, जिसका प्रारम्भ देवकी की युद्ध-घोषणा के साथ हुआ।

युद्ध-घोषणा के पीछे एकदम कार्रवाई आरम्भ हो गई। जमींदारी मामलों में राधाकृष्णसिंह का मुख्त्यारेआम अब तक माधवकृष्ण था। अदालत में दरख्वास्त दे दी गयी कि भविष्य में यह कार्य बाबू बजरंगलाल किया करेंगे। बजरंग बाबू की मार्फत ही राधाकृष्णसिंह की ओर से जायदाद के बंटवारे का प्रार्थना-पत्र अदालत में दे दिया गया। साथ ही सिपाहियों द्वारा जमींदारी में यह हुक्म भेज दिया गया कि भविष्य में वसूली आदि का सब काम बजरंग बाबू किया करेंगे, माधवकृष्ण से उनका कोई सम्बन्ध न होगा।

माधवकृष्ण इस अकारण आक्रमण से बिल्कुल स्तब्ध हो गया। उसने अब तक कभी अपने को बड़े भाई का साझीदार समझ कर जमीं-

दारी का प्रबन्ध नहीं किया था। उसकी भावना सदा यह रही कि जमींदारी भैय्या की है और मैं लड़के की हैसियत से उसका प्रबन्ध करता हूं। आज उसे यह सुनना पड़ा कि वह अब तक भैय्या का साझीदार था, इससे आगे साझीदारी नहीं चलेगी और जायदाद का बंटवारा हो जायेगा। यह नई परिस्थिति उसकी समझ से सर्वथा बाहर की बात थी। फलतः उसने दूसरी ओर से की गई युद्ध-घोषणा की बिल्कुल उपेक्षा की, और अप्रतिभ होकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ गया।

अगले ही दिन से सुरजानपुर की जमींदारी में बजरंग बाबू का दौर-दौरा हो गया। यद्यपि कई वर्ष पूर्व गोपालकृष्ण के साथ बंटवारा हो जाने के कारण जमींदारी दो हिस्सों में बंट चुकी थी, तो भी व्यवहार में वह एक ही सी बनी हुई थी। माधवकृष्ण निःस्वार्थ भाव से जमींदारी का प्रबन्ध करता था, उसकी सदा यही चेष्टा रहती थी कि भाइयों भाइयों में जमीदारी के प्रबन्ध के कारण कोई वैमनस्य या झगड़ा खड़ा न हो। इस कारण बेलूर और सुरजानपुर की जमींदारियों के गाव-गांव में परस्पर उलझे रहने पर भी कभी कोई झगड़ा खड़ा नहीं हुआ। परन्तु इन्तजाम की बागडोर बजरंग के हाथ में आते ही हालत बदल गई। गड़े हुए मुर्दे उखड़ने लगे और सप्ताह भर में चम्पा के पास जगह-जगह से इस आशय की शिकायतें आने लगीं कि बजरंग की ओर से कलह उत्पन्न करने का यत्न किया जा रहा है।

बेचारी चम्पा जीवन के शेष दिन देश की सेवा में शान्ति से बिताना चाहती थी, इस गृह-कलह के समाचारों ने उसे घबराहट में डाल दिया। चिन्ताग्रस्त होकर मां-बेटी में चिरकाल तक परामर्श हुआ। अंत में निश्चय किया गया कि इतिकर्त्तव्यता का निश्चय करने के लिए माधवकृष्ण और रमा को बुलावा जाए। जिस दिन माधवकृष्ण और रमा सुरजानपुर से बेलूर पहुंचे, उससे अगले दिन प्रातःकाल तीन अनाथ बच्चों को लेकर रामनाथ भी पटने से आगया। रामनाथ को बेलूर पहुंच

कर, वहां के वातावरण में जो परिवर्त्तन दिखाई दिया वह उपर्युक्त घटना-चक्र का ही परिणाम था।

[६]

जमींदारी के बंटवारे के प्रस्ताव से माधवकृष्ण को दुःख तो बहुत हुआ, परन्तु उसके मनमें उदासीनता से अधिक कोई तीव्र भाव पैदा नहीं हुआ। रमा ने दो एक बार यह बात उठाई थी कि यदि बंटवारा होना ही है, तो वह न्यायपूर्ण होना चाहिये। इसके लिए मुस्तैदी से मामले की पैरवी करनी चाहिए; परन्तु माधवकृष्ण का रुख देखकर वह भी चुप हो गयी। माधवकृष्ण का कहना था कि मैं बड़े भाई से टक्कर नहीं लेना चाहता, वह हमारा हिस्सा समझकर जो कुछ भी दे देंगे, उससे हम दोनों का गुजारा चल जायगा, फिर हम सिरदर्दी क्यों करें!

प्रत्यक्ष में सुरजानपुर की जमींदारी के बंटवारे का बेलूर की जमींदारी पर कोई असर नहीं पड़ता था, क्योंकि वह दोनों पहले ही विभक्त हो चुकी थीं; परन्तु वस्तुतः चम्पा के लिए इस समय विकट समस्या खड़ी हो गयी थी। विभक्त हो जाने पर दोनों जमींदारियां परस्पर ऐसी गुंथी हुई थीं कि उनमें हर समय संघर्ष पैदा किया जा सकता था। राधाकृष्णसिंह की सल्तनत के नये मैनेजर बाबू बजरंगलाल ने शासन की बागडोर संभालते ही सीमा-प्रांत पर हलचल मचा दी। कहीं चम्पा की जमीन दबाने का उद्योग होने लगा, किसी जगह उसके किसानों को डराया-धमकाया गया और यह उद्योग तो प्रायः सारे सीमाप्रांत पर शुरू हो गया कि उसके मौरूसी काश्तकारों को बर्गलाया जाय। इन समाचारों से चम्पा बहुत विक्षुब्ध हो गई। सारी परिस्थिति पर विचार करने के लिए चम्पा ने माधवकृष्ण और रमा को आदमी भेजकर बुलवा लिया। उनके आने के दूसरे दिन ही रामनाथ पटने से आ पहुंचा। उस दिन दोपहर के समय भोजन के बाद जब घर के सब लोग परामर्श के लिए बैठक में बैठे, तब रामनाथ भी उनमें सम्मिलित था। माधव-

कृष्ण ने विस्तार से देवकी द्वारा युद्ध-घोषणा का पूरा वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर चम्पा और सरला को बहुत दुःख हुआ और क्रोध भी हुआ कि जब उनकी ओर से कोई विरोध-युक्त कार्य नहीं किया जाता तो दूसरी ओर से अकारण झगड़ा क्यों खड़ा किया जाता है! रामनाथ की तबीयत बहुत ही निःसंकोच और मिलनसार थी। उसे अपरिचित समाज में घुस जाने और गहरा परिचय प्राप्त करने में जरा सी भी देर नहीं लगती थी। चम्पा के परिवार में गत १५ दिनों में वह बिल्कुल घुल-मिल गया था। प्रतीत होने लगा था कि जैसे सदा से वह इस परिवार का सदस्य रहा हो। परिवार में सबसे अधिक निःसंकोचता पैदा करने वाली चीज़ रसोई होती है। तकल्लुफ भी वहीं होता है और बेतकुल्लफी भी वहीं। आप किसी परिवार की रसोई में बनी हुई वस्तुओं की प्रशंसा कर दीजिये, फिर अपनी पसन्द की चीजों की खुली घोषणा करके फर्मायशी चीजें बनवा लीजिये और इनके बनने के समय रसोईघर में जाकर घर की मालकिन की तारीफ और खाने की तारीफ कर दीजिये, आप किसी भी भले परिवार के अन्तरङ्ग सदस्य बन जायेंगे। यह परिवार का मर्मस्थल है। रामनाथ इस कला में स्वभाव से ही निपुण था। वह किसी विशेष उद्देश्य को लेकर इस रीति से नहीं चलता था, यह उसकी प्रकृति का एक हिस्सा था कि वह जहां भी जाता था, बहुत शीघ्र निःसंकोच भाव पैदा करके परिवार के अन्तस्तल में घुस जाता था। यही कारण था कि रामनाथ ने उस दिन की परामर्श-सभा में परिवार के सदस्य की भांति हिस्सा लिया।

विरोधी-आक्रमण के सम्बन्ध में चम्पा किंकर्त्तव्यविमूढ़ थी और माधवकृष्ण हथियार डाल चुका था। स्वभावतः विचार की बागडोर रामनाथ के हाथ में आगयी। सब समाचार सुनकर रामनाथ ने यह उत्तर दिया कि चुप बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। जब तक ईंट का जवाब पत्थर से नहीं दिया जायेगा, तब तक जमींदारी की रक्षा नहीं की जा सकती। माधवकृष्ण ने अपने सम्बन्ध में आपत्ति उठाते हुए कहा—

भाई मुझ से तो यह काम नहीं हो सकेगा। मैं संसारभर से लड़ सकता हूँ; परन्तु बड़े भैया से नहीं लड़ सकता। मैंने सदा उन्हें पिता के समान माना है, अब मुकाबला कैसे कर सकूंगा?'

रामनाथ ने आपत्ति उठायी—

'माधव बाबू, आपकी यह दलील बिल्कुल लचर है, यह तो धर्म-युद्ध है। अपनी और भाभी की सम्पत्ति की रक्षा के लिए आपको भाई से लड़ने के लिए भी तैयार रहना चाहिये। अन्याय करना पाप है, तो अन्याय के सामने दबना महा पाप है। क्यों? सरला जी, इस विषय में आप मुझसे सहमत हैं?'

सरला को रामनाथ की वीरतापूर्ण बात पसन्द आई। उसने चम्पा की ओर देख कर कहा—

'क्यों भाभी, क्या तिवारीजी ठीक नहीं कहते? मैं तो समझती हूं कि चाचाजी को उदासीन नहीं होना चाहिये।' चम्पा ने माधव-कृष्ण की ओर देखा। मानो पूछ रही है कि तुम्हारी क्या राय है? माधव ने गम्भीर भाव धारण करते हुए उत्तर दिया—

'मैं यह तो नहीं कहता कि इस सम्बन्ध में कुछ भी न करना चाहिये। मेरा कहना तो केवल इतना है कि मुझ में बड़े भैय्या से लड़ने का साहस नहीं है। उन्होंने बचपन से मुझे बच्चा समझ कर पाला है, और मैंने उनका पिता के समान आदर किया है। अब मुझसे यह नहीं हो सकेगा कि मैं उनका मुकाबला करूं। इसे चाहो तो मेरी कम-जोरी समझ सकते हो। अगर बंटवारे में वह मुझे कुछ भी न दें, तब भी मैं उनसे लड़ने की शक्ति नहीं रखता।'

रमा ने बात काटते हुये कहा—

'परन्तु यह झगड़ा तुम्हारे भैयाजी का नहीं है, यह तो मेरी जेठानीजी का खड़ा किया हुआ है।'

माधवकृष्ण ने उत्तर दिया—"मेरी दृष्टि में भाई और भाभी दोनों एक हैं, मैं दोनों में से किसी से भी नहीं लड़ सकता।"

रमा ने पूछा—'तब हम लोगों का जीवन-निर्वाह कैसे होगा ?'

'अगर ऐसा वक्त आ ही पड़ा, तो मेहनत-मजदूरी करके गुजारा कर लेंगे।'

इसके बाद बातचीत की बागडोर रामनाथ ने अपने हाथ में ली। उसने कहा—

'माधव बाबू, क्षमा कीजियेगा, मै जरा साफग आदमी हूं। आप मुझे बहुत कमजोर आदमी मालूम होते हैं। भाई हो या बाप, जो अन्याय करे, उसका मुकाबला करना ही चाहिये और फिर यह भी तो सोचिये कि आपके साथ रमा बहिन को भी तो मुसीबतों में फंसना पड़ेगा। आपको यह अधिकार नहीं है कि जिसे आपने जीवन-संगिनी बनाया है, उसे कंगाली का जीवन बिताने के लिये मजबूर करें। खैर, इसे भी जाने दीजिये। इस समय तो बंटवारे की इतनी चिन्ता नहीं है, जितनी भाभी की जमींदारी के संरक्षण की। आपके भाई साहब का या उनके कारिन्दों का यह अत्याचार कैसे सहा जा सकता है ? इसकी रोक-थाम तो होनी ही चाहिये ?'

सरला सहमति प्रकट करती हुई बोली—'चाचा जी ! आप ऐसी उदासीनता प्रगट न करें। अन्याय किसी ओर से हो, उसे सहना पाप है और यह भी तो सोचिये कि ऐसे कामों मे हमारा सहायक आपके सिवाय कौन है।'

इससे पूर्व कि माधवकृष्ण कुछ उत्तर देता, रामनाथ बीच में बोल उठा—

'सरलाजी ! आप इतनी चिन्ता न करें। जब से मैं चैलूर आया हूं मैंने आपकी भाभी को अपनी माता बना लिया है, अब से मैं इन्हें माताजी कहा करूंगा। मैं इनका बड़ा बेटा बन गया हूं। माधवबाबू को कुछ दिन आराम करने दीजिये। रामनाथ माताजी की आज्ञानुसार सब जमींदारी के सम्बन्ध में सब काम किया करेगा। क्यों माधव बाबू, आपको इसमें कोई शिकायत तो नहीं होगी ?'

रामनाथ की इस अद्भुत स्पष्टवादिता से माधवकृष्ण कुछ आश्चर्यित-सा होकर चम्पा की ओर देखने लगा। चम्पा रामनाथ की बातों से स्वयं कुछ दुविधा में पड़ गई थी, उसमें अपनावट भी थी और कड़वापन भी। अपनावट चम्पा के लिये थी और कड़वाहट माधवकृष्ण के लिये। चम्पा ने कड़वाहट के असर को दूर करने के लिये कहा—

'यह तो तुम्हारी कृपा ही है तिवारीजी, जो कि तुम हम लोगों से इतनी अपनावट बरतते हो। यह तुम्हारे लायक ही है कि तुम बेटे का कर्त्तव्य-पालन करने का संकल्प रखते हो। उस दशा में तुम्हें ध्यान रखना होगा कि माधव भैया तुम्हारे चचा हैं। तुम्हें उनकी सलाह से ही काम करने होंगे।'

'हां हां क्यों नहीं, माधव बाबू मेरे बुजुर्ग तो हैं ही! तुम्हें आगे रखकर ही तो सब काम करूंगा। बात यह है माता जी कि हमारे देश में स्त्रियों पर बहुत अत्याचार होते हैं। उन्हें शिक्षा नहीं दी जाती। (सरला की ओर देखकर) कुछ देवियों को छोड़ दीजिये जो सुशिक्षिता और समझदार हैं। बाकी सब शिक्षा के अभाव से बाहर के संसार का व्यवहार चलाने में असमर्थ रहती हैं। तब उन्हें लोग मूर्ख और नासमझ कहने लगते हैं, कैसा घोर अन्याय है। सरलाजी प्रायः इस अन्याय पर रोष प्रकट किया करती हैं। मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूं। मैंने भी निश्चय कर लिया है कि अपनी मातृभूमि की सेवा के साथ-साथ हिन्दू स्त्रियों की सेवा भी अपने जीवन का उद्देश्य समझूंगा। उन पर किये जाने वाले अन्यायों के हटाने में अपनी जान लड़ा दूंगा।'

यह प्रभावशाली व्याख्यान देकर रामनाथ ने चम्पा और सरला की ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देखा। उसने देखा कि उसके व्याख्यान का काफी असर हुआ है। दोनों की आँखों में उसे अपने लिये कृतज्ञता और आदर की भावना दिखाई दी।

हम देख आये हैं कि किसी दूसरे को अपने से बड़ा स्वीकार करना रामनाथ की प्रकृति के विरुद्ध था। माधवकृष्ण को बड़ा मानना

पड़ेगा, यह बात उसे चुभ-सी रही थी। दिल को हलका करने के लिये वह माधवकृष्ण की ओर उन्मुख होकर बोला—

'चचा, घबराओ मत। आप बैठे हुक्म देते रहो। मैं सब ठीक कर दूंगा। सुलतानपुर वालों को पता लग जायेगा कि किसी से वास्ता पड़ा है।' इन वाक्यों के शब्दों और कहने के ढंग का माधवकृष्ण पर बहुत प्रतिकूल असर हुआ। माधवकृष्ण को अनुभव हुआ कि जैसे रामनाथ उसका उपहास कर रहा हो। परन्तु बात हंसकर ऐसे ढंग से कही गई थी कि यदि माधवकृष्ण नाराज होता, तो उसी की तुनकमिजाजी समझी जाती। वह रूखे स्वर से बोला—"अच्छा भाई ! तुम लायक भी हो और जवान भी। जो ठीक समझो, करो। मैं भी तुम्हारे साथ हूं।"

रामनाथ ने सन्तोष से चारों ओर ऐसे देखा जैसे विजयी सेनापति रणक्षेत्र को देखता है, मानों उसने एक मुहिम जीत ली हो।

[१०]

उस दिन के परिवार-सम्मेलन के निश्चयों ने रामनाथ के अधिकारों में जो वृद्धि कर दी थी, उनके उपयोग का अवसर उसी दिन सायंकाल आ गया। जब यह खबर गांव में फैली कि तिवारीजी आए हैं, तो लोग दर्शनों की अभिलाषा से आने लगे। ग्रामीणों की श्रद्धा छल-छद्म से हीन होती है। तिवारीजी देश के लीडर हैं, जमींदार की कोठी पर ठहरे हुए हैं, बड़े भारी व्याख्यानदाता हैं और ब्राह्मण हैं। ये सभी बातें उनके पक्ष में जाती थीं। उसकी तबीयत में एक खास ढंग की सादगी थी, जो ग्रामवासियों को बहुत पसन्द थी। जोर की आवाज से खुल कर बातें करना, घर के और बाल-बच्चों के हाल-चाल पूछना, गांव की भाषा में बातचीत करने का यत्न करना ये सब विशेषताएं थीं, जिन्होंने एक ही दिन के परिचय में गांव वालों को तिवारीजी का भक्त बना दिया था। जब उन्होंने सुना कि तिवारीजी पटना से आए हैं तो आसपास के गांव के लोग दल बांध-बांध कर दर्शनों के लिए आने लगे।

दर्शनाभिलाषियों का तांता शाम तक लगा रहा । सीधे-सादे ग्रामीण लोग रामनाथ की मिलनसारी से बहुतही प्रभावित हुए। संध्या के समय जो लोग आए, उनमें कैलाश भी था। हम देख आए हैं कि कैलाश गत दो वर्षों से जमींदार परिवार के साथ गहरा परिचय प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा था। हमने यह भी देखा है कि उसके सम्बन्ध में सरला की भावना प्रतिकूलता की थी। वह उसके रंग-ढग और व्यवहार को अच्छा नहीं समझती थी। सरला की यह प्रतिकूलता रामनाथ को मालूम हो चुकी थी। कैलाश को देखते ही रामनाथ के मन में शरारत जाग उठी। वह चारपाई पर से उठा और हाथ बढ़ाकर कैलाश का हाथ पकड़ लिया। फिर "आइये, डाक्टर कैलाश ! आपने खूब दर्शन दिए"—इन शब्दों से स्वागत करते हुए, उसके हाथ इतने जोर से भींचे कि उस बेचारे ने अपनी चीख को हंसने की चेष्टा से ढकते हुए कहा—"अरे ! तिवारीजी, यह क्या कर रहे हो। क्या मेरे हाथ को तोड़ कर ही छोड़ोगे।" रामनाथ ने हंसते हुए कैलाश के हाथ छोड़ दिए और कहा—

"अरे भाई ! क्या करें, तुमसे एक बार की मुलाकात में ही इतना प्रेम हो गया है कि मिलने के समय हाथ काबू से निकल गए, लेकिन भाई, गाँव के आदमी होकर भी तुम फिसड्डी ही रहे। मालूम होता है खाते-पीते कम हो। डाक्टरी कैसी चल रही है ?"

यह कहते हुए रामनाथ ने कन्धे पर थपकी देकर कैलाश को पास की चारपाई पर बैठा लिया। तब दोनों में निम्न प्रकार से बातें होने लगीं। बातचीत के समय चार-पांच और दर्शनाभिलाषी भी उपस्थित थे।

कैलाश—डाक्टरी काहे की, तिवारीजी। किसी तरह गुजारा चल रहा है। गांव में पहले तो लोग बीमार कम होते हैं, बीमार हो जायं, तो तब तक डाक्टर के पास नहीं जाते तब तक मौत सामने न दिखाई दे।"

रामनाथ—और जब मौत सामने आ जाय तब मौत के भाई के पास चले जाते हैं। खाई से बचकर कुएं में जा पड़ते हैं। क्यों कैसी रही ?

यह कहकर रामनाथ ताली बजाकर हंस पड़ा। कैलाश अप्रतिभ सा होकर उसके मुंह की ओर देखने लगा।

रामनाथ ने फिर कहा – अरे भाई, मेरी ओर देखते क्या हो! मैने कोई गलत बात तो नहीं कही। हमारे शास्त्रों में ऐसा ही लिखा है कि वैद्य मृत्यु का भाई है।

कैलाश ग्रामीणों के सामने अपना अकारण अपमान सहन नहीं कर सका और क्रोध से कांपते हुए स्वर से बोला—

"देखो तिवारीजी, आप सरासर मेरा अपमान कर रहे हैं। मैंने आपसे कोई बुरी बात नहीं कही और आप बार-बार मुझे गाली देते जा रहे हैं।"

रामनाथ लापरवाही से चारपाई पर लेटता हुआ बोला—

"अरे बदतमीज, तुझे यह भी मालूम नहीं कि बड़ों से कैसे बोला करते हैं। न डाक्टर और न डाक्टर की दुम, चला है तिवारीजी महाराज को अक्ल बतलाने।

अब तो कैलाश आपे से बाहिर हो गया। जोर की आवाज से बोला —

"देखो जी मुंह संभालकर बोलो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा। क्या तुमने मुझे जुलाहा समझ लिया है जो मनमानी कहे जाते हो।"

इसपर रामनाथ चारपाई से उठकर खड़ा हो गया और खूब चिल्लाकर बोला—

"क्या कहा ? जुलाहा। तेरी यह बदजबानी कि मुझे जुलाहा कह रहा है और वह भी हमारे घर पर आकर। निकल जा यहा से। यदि मैंने महात्माजी का अहिंसा व्रत न लिया होता तो मैं तेरा सिर फोड़कर रख देता।"

कैलाश की आखिरी बात और रामनाथ की इस चिल्लाहट ने वहाँ बहुत सी भीड़ इकट्ठी कर दी थी। दरवाजे के दरबान और घर के नौकरों के अतिरिक्त हवेली के अन्दर से चम्पा, सरला, रमा और माधव

कृष्ण भी निकल कर आगये थे। जब उन्होंने रामनाथ के मुंह से यह सुनी कि कैलाश ने उसे जुलाहा कहकर गाली दी है तो सबको बड़ा क्रोध आया। नौकरों ने कैलाश को पकड़ लिया और धक्के देकर कोठी से बाहिर निकाल दिया। कैलाश की यह पुकार किसी ने नहीं सुनी कि "मैंने जुलाहे की गाली तिवारीजी को नहीं, अपने आप को दी थी।" भला यह कैसे माना जा सकता था कि कैलाश जैसा व्यक्ति सच बोलता हो और रामनाथ जैसा व्यक्ति झूठ।

कैलाश के निकल जाने पर घर के सब लोग रामनाथ से सुख पृच्छिका करने लगे। बड़ा कमबख्त था। आप पर उसने हाथ तो नहीं उठाया न? आपके कहीं चोट तो नहीं लगी?

रामनाथ हंसकर सब का उत्तर देता रहा। "अजी वह मुझ पर हाथ क्या उठा सकता था? मेरा एक थप्पड़ लग जाता तो वह पानी भी न मांगता। पर मैंने तो अहिंसा का व्रत लिया है, इसीसे मूजी को छोड़ दिया। पर वह इस लायक आदमी नहीं कि इस कोठी में पैर भी रखे। ऐसे जलील आदमियों का यहां आना बिल्कुल बन्द हो जाना चाहिये।"

इस प्रस्ताव से सभी सहमत हो गये। चम्पा और सरला कैलाश से पहले ही परेशान रहती थीं, फिर अब तो अपने मेहमान का अपमान किया था—उसे जुलाहा कहा था, वह क्षन्तव्य कैसे हो सकता था।

इस घटना से बेलूर के निवासियों पर रामनाथ की वीरता और अहिंसा व्रत की इकट्ठी ही धाक बैठ गई।

चौथा परिच्छेद

सरला का विवाह

[१]

रामनाथ पुरुषार्थी था, व्यावहारिक, प्रतिभा-सम्पन्न था और था साहसी। ऐसे व्यक्ति का सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में ऊंचा उठ जाना स्वाभाविक ही था। उसके स्वभाव में एक बड़ा दोष था। वह शीघ्र ही बिगड़ उठता था, और जब बिगड़ उठता था तब विरोधी को हानि पहुँचाने में उचित-अनुचित का कोई विचार नहीं करता था। उसका सिद्धान्त था कि परिणाम अच्छा हो तो उपाय में कोई बुराई नहीं आती। परन्तु यह दोष कांग्रेस के उस समय के जीवन में विशेष रूप से बाधक नहीं समझा जाता था। कांग्रेस देश की स्वाधीनता के लिये

विदेशी सरकार से लड़ रही थी। लड़ाई के मैदान में उसी का बोल बाला है, जो खूब डट कर लड़ सके। रामनाथ गजब का लड़ाका था और साथ ही वक्ता भी अच्छा था। बिहार के राजनीतिक नक्षत्र के रूप में वह शीघ्र ही चमक उठा।

उस दिन बिहार की प्रांतिक कांग्रेस कमेटी का चुनाव था। चुनाव के लिए होने वाली प्रान्तिक कमेटी की बैठक से पहिले स्वयं-सेवकों की एक सभा बुलाई गई थी। सभा में स्वयंसेवकों के अतिरिक्त प्रान्तिक कमेटी के और सैन्ट्रल रिलीफ कमेटी के अधिकारी भी उपस्थित थे। सभापति के आसन पर बिहार के एक प्रमुख नेता विराजमान थे। सभा का विशेष उद्देश्य यह था कि कुछ स्वयंसेवकों के सम्बन्ध में प्राप्त हुई उस गुप्त रिपोर्ट पर फैसला सुनाया जाय जो कुछ दिन पूर्व भूकम्प के कार्यक्षेत्र से प्राप्त हुई थी। मुजफ्फरपुर के इलाके के अध्यक्ष ने रिलीफ का काम करने वाले कुछ स्वयंसेवकों पर यह आरोप लगाये थे कि उन्होंने सार्वजनिक धन का अपव्यय किया और अधिकारियों द्वारा ताड़ना होने पर उनका सामना किया। अपराध बहुत संगीन थे। केन्द्रीय कार्यालय द्वारा शिकायतों की तहकीकात का काम बाबू बल-धारीसिंह के सुपुर्द किया गया था। बाबू बलधारीसिंह को वकील और अध्यक्ष का विश्वासपात्र होने के कारण इस योग्य समझा गया कि वह तहकीकात का काम कर सकें। बाबू बलधारीसिंह ने छान-बीन के पश्चात् जो रिपोर्ट पेश की, उसका अभिप्राय यह था कि शिकायतें न केवल ठीक थीं, अपितु यथार्थता से कम थी। स्वयसेवकों का अपराध बहुत अधिक था, अध्यक्ष ने उसे बहुत हल्का करके दिखाया। स्वयं-सेवकों की सभा और चुनाव की सभा में भाग लेने के लिए रामनाथ तिवारी विशेषरूप से पटना आ गये थे। यों सभा से रामनाथ का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि मुजफ्फरपुर के स्वयंसेवक दल का प्रबन्ध पटना या मुंगेर के प्रबन्ध से बिल्कुल अलग था। परन्तु एक

तो स्वयं-सेवकों का मामला और दूसरे बलधारीसिंह का नाम, दोनों चीजें रामनाथ को काफी आकर्षक प्रतीत हुईं, जिनसे खिंच कर वह सभा के दिन विशेष रूप से पटने जा पहुंचा और अपने मित्र बाकेलाल शुक्ल के साथ सभा में सम्मिलित हुआ। बाकेलाल शुक्ल पटना में भूकम्प-पीड़ितो की सेवा करने वाले स्वयंसेवक दल का उपकप्तान था। वह रामनाथ का गहरा मित्र बन गया था।

सभा एक विशाल हाल में की गई थी। आरम्भ में सभापति जी का भाषण हुआ। आप एक अत्यन्त शिष्ट वयोवृद्ध कांग्रेसी सज्जन थे। सन् १६१६ से बराबर सत्याग्रह की लड़ाई में शामिल हो रहे थे। बिहाररत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद का उन पर पूरा विश्वास था। इसी कारण उन्हें आज की सभा का सभापतित्व दिया गया था।

सभापति ने परिमित शब्दों में सभा का उद्देश्य बतलाते हुए स्वयंसेवकों को सत्य और अहिंसा का उपदेश दिया, और यह कहकर बैठ गये कि "अब बाबू बलधारीसिंह जी अपनी रिपोर्ट उपस्थित करेंगे, आप लोग उसे शान्तचित्त होकर सुने और गम्भीरता से विचारने के अनन्तर अपनी सम्मति प्रदान करें।"

सभापतिजी के आसनासीन होने पर बलधारीसिंह ने अपनी रिपोर्ट पढ़नी आरम्भ की। रिपोर्ट बहुत लम्बी थी और यथासम्भव कानूनी ढंग पर लिखी गई थी। फुलस्केप के कई पन्ने पढ़े जाने पर भी यह मालूम न हो सका कि स्वयंसेवकों पर लगाये गये आरोप सत्य हैं या नहीं? लेखक ने यत्न किया था कि स्वयंसेवकों के पक्ष को बहुत उज्ज्वल शब्दों में रखा जाय। स्वभावतः रिपोर्ट के प्रथम भाग को स्वयंसेवक लोग बड़े सन्तोष से सुनते रहे। रामनाथ यह सुनकर बैलूर से आया था कि बलधारीसिंह की रिपोर्ट स्वयंसेवकों के विरुद्ध होगी। रिपोर्ट के प्रथम भाग में विरोध के विशेष चिन्ह न देखकर रामनाथ कुछ निराश सा हो रहा था कि इतने में बलधारीसिंह ने पढ़ा—

'यहां तक मैंने वह बातें लिखी हैं, जो स्वयंसेवकों की सफाई में कही जा सकती हैं; अब मैं दूसरी ओर से दी गई युक्तियों का निर्देश करता हूँ..........'

इसके पश्चात् बलधारीसिंह ने आरोपों का जोरदार समर्थन आरम्भ किया और साथ ही रामनाथ के चेहरे पर उत्साह के चिन्ह झलकने लगे। वह साभिप्राय दृष्टि से स्वयंसेवकों की ओर देखने और अपने दिमागी हर्बों को सम्भालने लगा। रिपोर्ट का उत्तरार्ध कुछ दूर तक ही पढ़ा गया होगा कि रामनाथ और स्वयंसेवकों के नेताओं ने आंखों ही आंखों से सलाह कर ली कि अब आक्रमण शुरू कर देना चाहिए।

बलधारीसिंह ने रिपोर्ट पढ़ते हुए कहा— 'इसके पश्चात् मैं स्वयंसेवकों से मिला...'

रामनाथ ने बैठे ही बैठे नारा लगाया--'यह बिल्कुल झूठ है। हम से कोई नहीं मिला।'

इसका जोरदार समर्थन चारों ओर से होने लगा। 'यह सफेद झूठ है, यह काला झूठ है, यह कोरा झूठ है।' बलधारीसिंह ने रिपोर्ट पढ़ना बन्द कर दिया और सभापति के मुंह की ओर देखने लगा। वयोवृद्ध सभापति घबराई हुई आंखों से चारों ओर देखने लगे। थोड़ी देर में कोलाहल कुछ शान्त हुआ तो बलधारीसिंह फिर रिपोर्ट सुनाने लगा। अभी कुछ वाक्य ही पढ़े होंगे कि सभा में फिर कोलाहल उठा। 'यह आदमी झूठा है' 'यह सरकारी पिट्ठू है' इत्यादि अनलंकृत तथा अलंकृत विशेषण बलधारीसिंह पर फेंके जाने लगे। उस कोलाहल में रामनाथ का ऊंचा शब्द स्पष्ट सुनाई देता था। यह देखकर क्रोध से भरे हुए स्वर में बलधारीसिंह बोला—

'रामनाथजी, आप क्यों शोर मचा रहे हैं, आप तो मुजफ्फरपुर के स्वयंसेवक नहीं हैं। यहाँ तो.... ....

बस बलधारीसिंह इतना ही बोल पाया था कि रामनाथ ने खड़े होकर अपनी ललकार से उसे दबा दिया।

उसने कहा—'बाबू बलधारीसिंह, क्या तुम यह कहना चाहते हो कि मैं स्वयंसेवक नहीं; यदि मैं स्वयंसेवक नहीं तो क्या तुम स्वयंसेवक हो, जो भूत प्रेत के डर के मारे कभी घर से नहीं निकलते ? अनाथ बच्चों के हिस्से का दूध पी जाते हो'...

रामनाथ इतना ही कहने पाया था कि बलधारीसिंह ने जोर-जोर से चिल्लाना शुरु किया—'सभापति महोदय! मुझ पर झूठे आक्षेप किये जा रहे हैं। मैं प्रोटेस्ट करता हूँ।' इस पर स्वयंसेवक लोग शोर मचाने लगे, "तुम झूठे हो बैठ जाओ।"

बेचारे वयोवृद्ध सभापतिजी परेशान थे कि क्या करें। पहिले मञ्च पर खड़े होकर श्रोताओं और वक्ताओं को शान्त रहने का उपदेश दिया। जब उसका कोई असर न हुआ, तो कुर्सी पर खड़े होकर करुण आक्रन्दन करने लगे—'भाइयो! शान्त हो जाओ। अगर आप लोग एकदम शान्त नहीं होंगे तो मैं कुर्सी छोड़ दूंगा।'

इस समय रामनाथ बैठ गया था। उसने ढकना खोलकर भाप बाहिर निकाल दी थी। वह भाप आकाश में ऊधम मचा रही थी। चारों ओर से स्वयसेवक लोग बलधारीसिंह पर गालियों की बौछार डाल रहे थे और वह उनसे बचने के लिए निरन्तर सभापति को पुकार रहा था। रामनाथ स्वयसेवको के बीच मे बैठा हुआ, अपनी जीत को देखकर मुस्करा रहा था।

सभापति ने कुर्सी पर खड़े होकर देर तक प्रयत्न किया कि सभा में शान्ति हो, परन्तु 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' अन्त में थक कर सभापति ने सभा से पूछा—'आखिर आप चाहते क्या हैं ?' एक स्वयंसेवक ने खड़े होकर उत्तर दिया कि 'बलधारीसिंह को बिठा दिया जाय और तिवारीजी को बोलने का अवसर दिया जाय।' चारों ओर

से स्वयंसेवकों ने 'ठीक है, ठीक है' चिल्ला कर प्रस्ताव का समर्थन किया। इस पर सभापति ने बलधारीसिंह की ओर देखा। बलधारीसिंह ने क्रोध भरे शब्दों में प्रतिवाद किया--'यह कैसे हो सकता है ? मैं बोल रहा हूं, तब दूसरा आदमी कैसे बोल सकता है।' सभापति महोदय ने बलधारीसिंह के प्रतिवाद को ऊंचे स्वर से दोहराया—

'हाँ, ठीक तो है। जब बाबू बलधारीसिंह बोलने के लिए खड़े हैं, तब उन्हें बिठाकर दूसरे आदमी को बोलने का अवसर कैसे दिया जा सकता है ?' इस पर चार स्वयंसेवक उठे, और बलधारीसिंह को दोनों कन्धों से पकड़कर जबर्दस्ती बिठा दिया। इस पर तो सभा में कोहराम मच गया। प्रायः सब श्रोता खड़े होगये और बदतमीजी का एक तूफान सा बरपा हो गया। ऐसी दशा देखकर सभापतिजी घबरा गये और यह घोषणा करके कुर्सी छोड़ चले कि 'आप लोग सभापति की आज्ञा का पालन नहीं करते, इस कारण यह सभा विसर्जित की जाती है. फिर यह सभा कब होगी, इसकी सूचना समाचार-पत्रों द्वारा दे दी जायगी।' सभापतिजी यह घोषणा करके कुर्सी पर से उतर आये। कोलाहल के कारण घोषणा तो बहुत कम लोगों ने सुनी, परन्तु जैसे पुराने समयों में राजा के हौदे में न दिखाई देने पर समझ लिया जाता था कि लड़ाई समाप्त हो गई, उसी तरह कुर्सी को खाली देखकर सभा-जनों ने भी समझ लिया कि सभा विसर्जित हो गयी। इस प्रकार कम से कम उस समय के लिए अपनी जीत हुई देख स्वयंसेवकों ने "महात्मा गाँधी की जय" के साथ-साथ "देश-सेवक रामनाथ तिवारी की जय" के भी उच्च स्वर से नारे लगाये। इस तरह सभा-स्थल से बलधारीसिंह हारे हुए सेनापति की तरह दुबक कर और रामनाथ तिवारी जीते हुए सेनापति की तरह छाती फुला कर विदा हुए।

[२]

हम पहले बता आये हैं कि देवकी रानी के आदेश से मुरजानपुर की जमींदारी का बंटवारा होना तय हो गया था। बंटवारा तो राधा-

कृष्ण और माधवकृष्ण का होने वाला था, परन्तु अच्छा अवसर देखकर साथ ही साथ चम्पा की जमींदारी के उन हिस्सों पर हाथ साफ़ करने का भी निश्चय कर लिया गया था, जो सुरजानपुर की जमींदारी के बीच में पड़े हुए थे। इस कार्य को पूरा करने के लिए सब उचित-अनुचित उपायों को काम में लाने का अधिकार बजरङ्ग को दे दिया गया था, जिनसे वह पूरा-पूरा उपयोग ले रहा था।

बजरङ्ग बाहर की बैठक में बैठा कारिन्दों से भावी कार्यक्रम के बारे में बातें कर रहा था कि एक नये व्यक्ति ने प्रवेश किया। वह व्यक्ति हमारे लिए नया नहीं था, हां बजरङ्ग बाबू के लिए अवश्य नया था। वह था वेलूर का डाक्टर कैलाश।

बजरङ्ग ने नये आदमी को अन्दर आते देखकर मन्त्रणा बन्द कर दी और प्रश्नसूचक दृष्टि से कैलाश की ओर देखा। कैलाश ने पूछा—"क्या बजरङ्गबाबू आप ही हैं?"

बजरङ्ग ने उत्तर दिया—"जी हां, बजरङ्ग बाबू मुझे ही कहते हैं। कहिये; आपको क्या काम है।"

कैलाश ने कुर्सी पर बैठते हुए उत्तर दिया—"आपसे कुछ बातें करनी हैं।"

बजरङ्ग लापरवाही से बोला—"क्यों लगान का रुपया बहुत चढ़ गया है क्या? भैय्या, रुपये का काम तो रुपये से चलेगा, बातों से घर कैसे पूरा होगा अगर..............."

कैलाश ने बात काटते हुए कहा—"जी, आप समझे नहीं। मैं तो आपका काश्तकार नहीं हूँ। मैं तो आपसे एक जरूरी मामले पर बातें करने आया हूँ।"

बजरङ्ग ने बात कटने से कुछ असन्तुष्ट-सा होकर कंटता हुआ जवाब दिया—"आप देख रहे हैं कि मैं काम की बातें कर रहा हूँ, मेरे पास आपके मामले की फिजूल बातें सुनने का समय नहीं है। आप, फिर किसी वक्त आइयेगा।"

कैलाश इस उत्तर से निराश नहीं हुआ; वह जल्दी हारने वाला नहीं था, बोला—"मामला जितना मेरा है, उससे ज्यादा आपका है। मैं आपके काम की ही बात करने आया हूँ। फिर आने की शायद मुझे फुर्सत न मिले।" यह कहते हुए उसने कुर्सी पर से उठने का अभिनय किया।

बजरङ्ग पर कैलाश की इस बात का असर हुआ। वह दुनिया में एक ही चीज़ का पुजारी था और वह चीज थी 'स्वार्थ'। कैलाश ने उसी चीज का प्रलोभन दिखा दिया। कैलाश का हाथ पकड़ते हुए कहने लगा—"बस इतनी-सी बात पर रूठकर चल दिए। बैठो भई, तुम्हारी ही बात सुनते हैं। पहिले यह तो बताओ कि तुम्हारा नाम क्या है और कहां से आये हो?"

इस पर कैलाश ने चारों ओर देखा, जिसका अभिप्राय यह था कि वह अकेले में बातचीत करना चाहता है। बजरङ्ग उसका अभिप्राय समझ गया और वहां से उठकर बाहर सहन में पेड़ के नीचे चारपाई खींचकर बैठ गया। वहाँ दोनों व्यक्ति लगभग दो घण्टे तक बातें करते रहे। प्रारम्भ में कुछ सावधानता से और रुक-रुककर बातचीत चली, परन्तु थोड़ी ही देर में दोनों घुल-मिल गये और ऐसे मशविरा करने लगे जैसे पुराने परिचित हों और एक ही अखाड़े के दो पहलवान हों। अकेले में दोनों की जो मन्त्रणा हुई उसकी पूरी रिपोर्ट देना तो हमारी शक्ति में नहीं, पर हां जितनी बातें अन्त में सबके सामने हुईं, वह निम्न-लिखित हैं—

चारपाई से उठते हुए बजरङ्ग ने कैलाश से पूछा—"तो आज-कल तिवारी बेलूर में नहीं है।"

कैलाश ने उत्तर दिया—"नहीं; वह पटने गया है।"

"कब तक लौटने की बात है?"

"सुनते हैं, एक हफ्ते तक पटने में रहेगा।"

"हूँ, एक हफ्ता। एक हफ्ता हमारे काम के लिए बहुत है। एक हफ्ते में तो बजरङ्ग हकूमत पलट सकता है। हां, यह तो कहो कि आजकल माधवबाबू कहां हैं?"

"मैंने सुना है कि माधवबाबू इन दिनों देख-भाल करने के लिये देहात गये हुये हैं, उनके भी दस बारह दिन में लौटकर आने की खबर है।"

"तब तो सब ठीक है। अच्छा कैलाशबाबू तुम जाओ। आज से तीसरे दिन रात के समय मेरा आदमी तुम से मिलेगा। सब ठीक-ठाक रहे।"

"बहुत अच्छा," कहकर कैलाश सन्तुष्ट मन से बजरङ्ग का हाथ दबाकर विदा हुआ।

[३]

वह भारत के प्रसिद्ध तीजो के त्यौहार का प्रभात था। प्रत्येक शहर और प्रत्येक गांव में, घरों में अलग-अलग और सामूहिक रूप से उत्सव मनाने की तैयारी हो रही थी। प्रातःकाल से ही बेलूर की कन्यायें इकट्ठी होकर गाने और फूल इकट्ठे करने का कार्यक्रम बनाने लगीं। भारत में दो ही फूलों के मौसम हैं, इधर बरसात का उत्तर भाग और उधर वसन्त। गांव से बाहर निकलकर सड़कों के दोनों ओर दृष्टि डालें तो छोटे-बड़े हर रङ्ग के फूल खिले हुए दिखाई देंगे। गाव की कन्यायें हंसती, गाती खेलती और फूलों को तोड़ती हुई घूमती हैं और पेड़ों पर बैठे पक्षियों की तरह चहचहाती हैं। सरला अभी नित्य कर्मों से निवृत्त होकर घर के काम-काज में लगी ही थी कि कन्याओं की एक टोली हवेली में आ पहुँची और सम्मिलित स्वर से चिल्लाने लगी—"सरला जीजी" "सरला जीजी।"

शोर सुनकर चम्पा कमरे से बाहर निकल आई। लड़कियों ने नमस्कार किया और फिर पूछा—"सरलाजी कहां हैं?"

चम्पा ने उत्तर दिया—"सरला घर पर कामकाज कर रही है, कहो तुम्हें क्या काम है ?"

'हम सरला जीजी को बुलाने आई हैं, फूल तोड़ने चलेंगी।' कई लड़कियों ने इकट्ठे ही उत्तर दिया।

चम्पा ने कहा—"अरी ! तुम तो जानती ही हो कि सरला कहीं बाहर नहीं जाती। गये वर्ष भी तो वह नहीं गयी थी। उसे त्यौहार का ऐसा शौक नहीं है।"

लड़कियों के दल की सरदार चन्द्रकला ने बच्चों की सी जिद करते हुए कहा—"मांजी, गये साल तो सरला जीजी हमें चकमा दे गयी थीं। इस बार हम आपस में कसम खाकर आयी हैं कि टलेंगी नहीं, उन्हें साथ लेकर ही जायेंगी, मांजी, उन्हें तुम मत रोकना।"

चम्पा को लड़कियों के लड़कपन पर हंसी आ गयी, बोली—"तो भाई, अंदर जाकर खुद ही सरला से बात करलो, वह जाय तो ले जाओ, मैं काहे को रोकूंगी।"

अनुमति पाकर बालिका-दल हवेली के उस भाग में घुस गया, जहाँ रमा और सरला रसोई के काम की देख-भाल कर रही थीं। सरला तख्त पर बैठी उस दिन के लिये सब्जी छील रही थी और रमा गोदाम से भोजन की अन्य सामग्री निकलवा रही थी। लड़कियां वहां पहुंचकर "सरला जीजी," "सरला जीजी" का शोर मचाने लगीं। सरला समझ गयी कि वह चिड़िया-दल अपने साथ उसे भी उड़ाने आया है। अत्यन्त गम्भीर होकर सब्जी छीलते ही छीलते बोली—

"क्या है बहना ! मुझे किसलिए बुला रही हो।"

चन्द्रकला ने उत्तर दिया—"जैसे तुम्हें पता नहीं कि आज तीजों का त्यौहार है, बड़ी भोली बनती हो। गये साल तुमने हमें चकमा दे दिया था। इस बार हम तुम्हें लिये बिना यहां से टस से मस न होंगी। हमने माँजी से भी पूछ लिया है, तुम्हें हमारे साथ चलना ही पड़ेगा। छोड़ो यह घर का काम ! नौकरानी कर लेगी।" यह आदेश देने के

साथ ही चन्द्रकला और उसके साथ और लड़कियां भी सरला के पास जा पहुंचीं, एक ने हाथ से छुरी छीन ली और तीसरी ने हाथ पकड़कर कहा—"अब चलो।"

सरला इस पर भी नहीं उठी, और कहने लगी—'ऐसी जल्दी मत करो बहना! आओ, तख्त पर बैठ जाओ। पहिले मेरी बात सुन लो।'

'हम तुम्हारी बात सुन लेंगे तो तुम चलोगी। पहिले वायदा करो कि चलोगी, तब बात सुनेंगे।'

'अभी वायदा कैसे करूं, बातचीत के बाद ही तो निश्चय होगा कि मैं क्या करूं?'

इस पर चन्द्रकला ने कहा—'हम समझ गई सरला जीजी! तुम हमें बातों के चक्कर में डालना चाहती हो। हमने आज फैसला कर लिया है कि इस चक्कर में न पड़ेंगी। तुम हम सब में बड़ी हो। त्यौहार के दिन तुम्हारे बिना बाहर जाना हमें अच्छा नहीं लगता।'

इस समय रमा भी गोदाम का ताला बन्द करके वहाँ आ गयी थी, वह तो सरला की वैराग्य-वृत्ति के विरुद्ध थी ही, लड़कियों की हाँ में हाँ मिलाती हुई बोली—'अरी, यह ठीक कह रही हैं। लड़कियों, को त्यौहार के दिन तो बराबर वालियों में मिलकर हंसना-खेलना ही चाहिए। तेरे बिना यहाँ कौनसा काम रुका रहेगा? जा! घूम-आ इनके साथ।'

सरला इस पर भी अपनी जगह से नहीं हिली और रमा से बोली—'चाची! तुम सब कुछ जानती-बूझती हुई भी बच्चों की बातों में शामिल हो जाती हो, तुम्हें तो मालूम ही है कि मैं ऐसे कामों में क्यों शामिल नहीं होती। फिर भी तुम मुझ पर इनके साथ जाने के लिये जोर दे रही हो।'

रमा ने कुछ तेज होकर कहा—'बाबा! मैं तो कुछ भी नहीं जानती, और तुम पढ़ लिखकर बहुत कुछ जानती हो। मैं तो यह कहती

हूँ कि भाड़ में जाय ऐसा पढ़ना-लिखना, जिससे हंसना-खेलना भी बन्द हो जाय। तेरा यह साधुओं की तरह बाल फैलाये रहना और बिना चूड़ियों के नंगे हाथ घूमना, मुझे बिल्कुल नहीं भाता। भाई, मानना न मानना तेरी मर्जी पर है, मैं तो यह कहती हूँ कि तुझे लड़कियों के साथ फूल चुनने के लिए चले जाना चाहिए।'

सरला दुःखित स्वर से बोली—'चाची, तुम तो मुझसे हमेशा ही नाराज रहती हो। मैं कई बार कह चुकी हूं कि मुझे इस तरह के कामों में सुख नहीं मिलता। मैं चाहती हूँ कि इस जीवन में कुछ सेवा का कार्य कर सकूं। हंसी-खेल में मेरा जी नहीं लगता।'

रमा और अधिक तेज होकर बोली—'तू भी अजीब लड़की है। तेरे अन्दर लड़कियों की-सी कोई बात ही नहीं रही। हंसी खेल अच्छी नहीं लगती, ब्याह करेगी नहीं, तो क्या जन्म भर रसोई में बैठकर सब्जियां छीलेगी या पराये बच्चों के पोतड़े धोयेगी।'

कुछ आवाज की कर्कशता और कुछ बात के तीखेपन से सरला का धैर्य टूट गया। उसकी आँखों से टप टप आंसू गिरने लगे, जिन्हें वह मुंह फेरकर पोंछने लगी। इसी बीच में रमा की आवाज सुनकर चम्पा भी वहाँ आगयी थी। उसने जब सरला को आंसू पोंछते देखा तो सब बात समझ गयी। उसने लड़कियों से कहा—'जाओ बेटी, तुम फूल तोड़ने जाओ, सरला नहीं जायगी। लड़कियां अपने उत्साहभरे निमन्त्रण का ऐसा दुःखमय अन्त देखकर स्वयं दुःखित हो रही थीं। चम्पा का आदेश पाकर वहाँ से जाती हुई, सरला को सूचना दे गयीं कि 'सरला बीजी, इस बार तुमने रोकर छुटकारा पा लिया। याद रखना—अगले साल हम किसी तरह न छोड़ेंगी।'

लड़कियों के चले जाने पर चम्पा ने रमा से पूछा—'क्या बात हो गयी?'

रमा जो सरला को रोता देखकर स्वयं दुःखी हो गयी थी और अपनी बात के तीखेपन पर मन ही मन में पछता रही थी, बोली—'बहन

क्या कहूं, अब तो कसूरवार मैं ही बन गयी, क्योंकि अब मैंने कड़वी बात कहकर इस तुम्हारी बेटी रानी को रुला दिया, पर क्या करूं, इसकी दुनियां से अनोखी बातों से मेरा जी जला रहता है। तुम भी उसे कुछ नहीं समझातीं, उसकी हाँ में हाँ मिलाती रहती हो। तुम्हीं बताओ, यह उसकी साधुनी बनने की उमर है या हंसने-खेलने और शादी करने की।'

चम्पा स्वयं अपने मन से यही प्रश्न पूछती रहती थी। कभी-कभी हल्के तौर पर सरला से शादी की चर्चा भी चलाती थी, परन्तु अपने स्वभाव के अनुसार सरला की ओर से जरा-सी अनिच्छा प्रकट होते ही चुप हो जाती थी। वह अपने सम्बन्ध में जो निश्चय कर लेती थी, उसके बारे में जितनी दृढ़ थी, दूसरे की इच्छा के प्रतिरोध में उतनी ही निर्बल थी। इस विशेषता का मनोवैज्ञानिक कारण यह था कि वह सब दुःख और सब बलिदान अपने तक ही परिमित रखना चाहती थी। इच्छा के प्रतिरोध से दूसरे को जो दुःख होता है, उससे भी वह घबरा जाती थी। वह स्वयं इतनी अच्छी होती हुई भी आस-पास की परिस्थितियों को वश में न ला सकी और जीवन के अधिक भाग में दुःखी रही इसका यही कारण था। वह इतनी भली थी कि उसका सुखी रहना असम्भव-सा था। उसने रमा को उत्तर दिया—'रमा तू ही बता मैं क्या करूं ?'

'मुझसे तुम क्या पूछती हो जीजी, तुम बड़ी हो, मैं तुम्हें क्या बता सकती हूँ ! मैं बड़ी होती तो अब तक सरला कुंवारी न रहती। घर में इतनी बड़ी लड़की का कुंवारी रहना क्या मंगल की बात है ?' —रमा ने कहा।

चम्पा बोली - 'इसमें बड़े-छोटे की क्या बात है, चल तू यही बता कि अगर तू बड़ी होती तो क्या करती ?' रमा ने उत्तर दिया—'मैं ? अगर तुम्हारी जगह होती तो सबसे पहिला काम तो यह करती कि इस लाडो से पूछती कि जब दुनिया की सभी लड़कियां शादी करती हैं तो तेरे

कन्धों पर ही ऐसे क्या सुर्खाब के पर लगे हैं कि तू जन्म-भर कुंवारी रहना चाहती है।'

चम्पा ने खिन्न स्वर में कहा—'रमा मैं तो यह बात सरला से कई बार पूछ चुकी हूँ। मुझे तो इसने कभी ठीक-ठीक जवाब दिया नहीं, अधिक कहूँ तो रोने लगती है। मैं क्या करूं? मेरे भाग्य ही खोटे थे जो वह मुझे अकेली छोड़कर चले गये। घर में कोई पुरुष नहीं जिससे कुछ कह सकूं। तुम लोग कभी-कभी आ जाते हो, तो दो बात करने का मौका भी मिल जाता है, नहीं तो हम दोनों दीवारों से सिर फोड़ती रहती हैं। इसे कई बार कहा कि अगर तू शादी कर ले तो घर में एक मर्द ऐसा हो जायगा जो बाहर के सब कामों की देखभाल कर लिया करेगा। पर इसका भी यह कुछ न कुछ जवाब दे देती है और मेरी बात को टाल देती है। इसके लिए और किसी को क्या दोष दूं, यह भी मेरे अपने कर्मों का ही खोट है।' यह कहते-कहते चम्पा की आखों से आंसू बहने लगे।

रमा ने भर्त्सना के स्वर में सरला से कहा—'अरी लड़की, तेरा दिल क्या पत्थर का है जो अपनी दुखिया मां के आँसू देखकर भी नहीं पसीजता?'

सरला को अपनी मां से असीम प्रेम था। वह उसके जरा से कष्ट को भी नहीं सह सकती थी। हम देख आये हैं कि उसने विवाह न करने का जो निश्चय किया, वह भी अपनी मां के दुःख भरे जीवन से प्रभावित होकर ही किया। यदि केवल शब्दों की ही बहस होती तो शायद सरला उत्तर-प्रत्युत्तर देने का प्रयत्न करती, परन्तु अब तो आँसुओं की बहस छिड़ गई जिसमें सरला को परास्त हो जाना पड़ा। माँ को सान्त्वना देने के लिये उसने कहा—

'भाभी, तुम मुझे विवाह के लिये कहती तो हो, परन्तु क्या तुम ने कभी यह भी सोचा है कि यदि उस विवाह का परिणाम अच्छा न

हुआ तो क्या होगा ? इसका क्या पता है कि तुम जिससे मेरी शादी करोगी, वह तुम्हें सुख ही देगा।'

चम्पा ने उत्तर दिया—'अभी तू मेरी बात छोड़ दे, अगर मेरे भाग में सुख लिखा होता तो ऐसे ऊंचे घर में पैदा होकर और ऐसे राजा घर में ब्यांही जाकर इतने दुःख क्यों भोगती ? मेरे माथे में जो कुछ लिखा होगा, वह तो होकर ही रहेगा। मैं तो यह सोच रही हूँ कि तेरी सारी उम्र इस तरह कैसे कटेगी ? तुझे इस उम्र में साधुनी-सी बनी देखकर मैं दिन-रात अन्दर ही अन्दर घुली जा रही हूँ और एक तू है कि कोई बात मनती नहीं।' यह कहते-कहते चम्पा की आंखों से आंसू बहने लगे। रमा ने भर्त्सना से भरी हुई आँखों से सरला की ओर देखा। सरला दुःख से रुआनी सी होकर बोली—'यह मेरे बुरे भाग्य ही हैं भाभी, कि मेरे विवाह न करने के कारण तुम्हें इतना दुःख होरहा है। मैं जब यह सोचती हूँ कि यदि तुमने मेरी शादी करदी और तुम्हारे उस होने वाले दामाद ने तुम्हें कष्ट पहुंचाया तो मेरा क्या हाल होगा, तो मैं व्याकुल हो उठती हूँ। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि कोई ऐसा आदमी मिल जायगा जो हमें सुखी कर सके। पुरुषों में स्वार्थ की मात्रा इतनी अधिक रहती है और वह स्त्रियों को इतना तुच्छ समझते हैं कि उनसे सुख नहीं मिल सकता।'

चम्पा ने सरला की बात को रोकते हुए कहा—'राम ! राम ! सरला, ऐसी ना समझी की बात तुझे नहीं कहनी चाहिए। क्या सब मर्द एक से ही होते हैं ? यही देख, तिवारीजी हैं, बेचारे ! स्त्रियों का कितना आदर करते हैं। हम लोगों से कितना प्यार करते हैं। मैं तो सोचती हूं कि कोई ऐसा आदमी मिल जाय, तो उससे तेरी शादी करके निश्चिन्त हो जाऊं।'

रमा ने प्रकारान्तर से किये गये सुझाव का समर्थन करते हुए कहा—'और मैं पूछती हूं कि तिवारीजी ही क्या बुरे हैं। वे भी तो

ब्राह्मण हैं कुंवारे भी हैं।' सरला रमा की बात को काटती हुई बोली — 'बस चाची, तुम्हारा तो यही काम है कि भाभी के मुंह से कोई बात निकली और तुमने उस पर अपनी मोहर लगा कर मेरे सामने रख दी। भला तिवारी जी में क्या.... .. ...'

सरला अभी इतना ही कह पायी थी कि बाहर से आकर चौकीदार ने खबर दी कि माधवबाबू ने गाँव से एक आदमी भेजा है, जो मालकिन से तुरन्त ही मिलना चाहता है।

इस तरह बातचीत का सिलसिला बीच में ही टूट गया और तीनों जनी बैठक की ओर चली गयीं।

[४]

दरबान ने जिस व्यक्ति के आने की सूचना दी थी, उसका नाम वैदेहीशरण था। वह बिसरामपुर गांव का रहने वाला था। बिसरामपुर गांव, बैलूर और सुरजानपुर की सीमा पर था। उस गांव का आधा भाग बैलूर की रियासत में था और आधा भाग सुरजानपुर की रियासत में था। जब से बजरङ्गबाबू के सेनापतित्व में जमींदारी-युद्ध शुरु हुआ है, तब से बिसरामपुर झगड़े का केन्द्र बना हुआ है। बजरङ्ग के पिट्ठू बैलूर के किसानों पर तरह-तरह के आक्रमण करते रहते हैं। वैदेहीशरण उस गाँव का एक खास आदमी है, क्योंकि दूसरों के जलते हुए छप्पर की आगसे हाथ सेंकना उसका पेशा है। गांव में शायद ही कोई ऐसा मामला चलता हो जिसके किसी न किसी पक्ष में वैदेहीशरण का हाथ न रहता हो। इसलिए वह गांव का खास आदमी था। जमींदार लोग ऐसे व्यक्तियों से बहुत से काम लेते हैं। वैदेहीशरण भी बिसरामपुर गांव का गैर-सरकारी कारिन्दा बना हुआ था। खटपट करना उसका पेशा था। जो फीस दे, वह उसकी वकालत करने को तय्यार रहता था। ऐसे ही कामों के लिये वह प्रायः राधाकृष्णसिंह के समय में भी बैलूर की कोठी में आता-जाता रहता था।

चम्पा, रमा और सरला के आने पर वैदेहीशरण ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा—

'मां जी, मुझे बाबू ने आपके पास भेजा है।'

'क्या कहलाया है'—चम्पा ने पूछा।

इस प्रश्न के उत्तर में वैदेहीशरण दायें बायें देखने लगा, जिसका अभिप्राय यह था कि वह सूनापन चाहता है। चम्पा ने उसे आश्वासन देते हुए कहा 'घबराओ नहीं भाई, यहां कोई पराया नहीं है, जो बात कहनी हो, कहो।' वैदेहीशरण धीमे स्वर से बोला—

'सो तो ठीक है मांजी, लेकिन दीवार के भी कान होते हैं। आप की आज्ञा हो तो दरवाजा बन्द करदूं।'

'तुम डरते हो; दरवाजा बन्द कर दो भाई।'

'मैं तो अचम्भे में हूँ कि तुम इतने क्यों घबरा रहे हो। ऐसी क्या बात है।'

वैदेहीशरण ने उठकर दरवाजा कसकर बन्द कर दिया और फिर धीमे स्वर से कहा—

'बात यह है मांजी, दो तीन दिन हुए बिसरामपुर में कुछ झगड़ा हो गया था। आपके और सुरजानपुर के आदमियों में कहा-सुनी हो गयी। नौबत बढ़ते-बढ़ते मार-पीट तक पहुँच गयी। चोटें दोनों ही ओर आयी हैं, पर सुरजानपुर के आदमियों के जो घाव लगे हैं, वह गिनती में अधिक हैं और गहरे हैं। पुलिस इस मामले में दस्तन्दाजी करेगी तो हमारे ही लोगों को अधिक दोषी ठहरायेगी।'

'यह तो बहुत बुरा हुआ भाई! इस वक्त माधव भैय्या भी यहां नहीं हैं। होते, तो उन्हें बिसरामपुर भेज देते'—चम्पा ने चिन्तित भाव से कहा।

वैदेहीशरण ने आश्वासन देते हुए कहा—'माधवबाबू तो कल वहां पहुँचे थे, मांजी! उन्हींने तो मुझे तुम्हारे पास भेजा है।'

'क्या कहलाया है भैय्या ने'—चम्पा ने उत्सुकता से पूछा।

वैदेहीशरण ने उत्तर दिया—'उन्हें काम से कल शाम ही दूसरे गाव चले जाना पड़ा। जाते हुए मुझसे कह गये कि मांजी को यहां लिवा लाना, मैं भी परसों तक आ जाऊंगा। गाँव वालों पर जो असर मांजी का पड़ सकता है और किसी का नहीं। उनके आने से गांव वालों की शहादतें हमारे अनुकूल हो जायेंगी।'

'तो मुझे वहां जाना होगा? पर मैं अकेली क्या करूंगी वहाँ जाकर'—चम्पा ने रमा की ओर देखते हुए कहा। रमा बोली—'जब उन्होंने बुलाया है, तो जाना तो चाहिये ही। जरूरी काम होगा तभी तो बुलाया है। अकेले न जाना हो तो सरला को साथ लेते जाओ।'

सरला ने बात काटते हुए कहा—'तुम भी साथ चलो चाची।'

रमा ने उत्तर दिया—'मैं क्या करूंगी, तुम जीजी के साथ जाओ। शायद वहां लिखने-पढने का भी काम पड़े।'

कुछ और सलाह के पश्चात निश्चय हुआ कि चम्पा और सरला भोजन करके दिन के दो-तीन बजे बिसरामपुर के लिए रवाना होंगी। साथ वैदेहीशरण जायगा और एक घर का नौकर रहेगा। बैलूर से बिसरामपुर कोई सात मील की दूरी पर था। उसी समय आज्ञा दे दी गई कि दो बजे बड़ा बैल-ताँगा तय्यार रहे।

समय पर बड़ा बैल-तांगा आगया। तांगे के बैल खूब तेज थे, परन्तु सफर केवल सात मील का था। कई जल्दी या घबराहट की बात नहीं थी, इस कारण गाड़ीवान को आज्ञा दी गई कि बैलों को धीरे धीरे चलने दे, जिससे रास्ते में पड़ने वाले अपने गाँवों पर भी दृष्टि डाली जा सके। चम्पा और सरला छतदार तांगों में बैठ गई, वैदेहीशरण तांगे के साथ साथ चला जा रहा था। वह जमींदारी के अतिरिक्त इलाके के सम्बन्ध की अन्य बातें भी करता जाता था। घर का नौकर तांगे के पीछे-पीछे जारहा था।

वैदेहीशरण उस इलाके का कीड़ा था। इंच इंच जमीन उस की देखी हुई थी, प्रत्येक गांव की मालगुजारी की रकमें उसे कंठस्थ थीं, और हर एक खास आदमी के सात पुरखों तक की कहानी उसे याद थी। वह चलता जाता था और मार्ग में और प्रसंग से आने वाले गाँव और व्यक्तियों के किस्से सुनाता जाता था। उन किस्सों में जितनी सचाई थी, लगभग उतनी ही गप्प या जनश्रुति मिली हुई थी। नमक-मिर्च इन दोनों से अलग था। जब कोई गांव दिखायी देता तब वह ठहर जाता, जिससे तांगे को भी ठहरना पड़ता। फिर वह उस गांव की लम्बी कहानी सुनाकर दो-चार समस्यायें सरकार के सामने पेश कर देता। सरकार अर्थात चम्पा उस पर कुछ स्वयं विचार करती और कुछ वैदेहीशरण से सलाह मागती। इस तरह कई स्टेशनों और जंकशनों पर रुकती हुई वह रेलगाड़ी अत्यन्त धीमी चाल से चलती हुई; जब बिसरामपुर से दो मील की दूरी पर एक बड़ के पेड़ के समीप पहुंची; तो सन्ध्या काल हो रहा था, आकाश में गहरे बादल छाये हुए थे, जिन्होंने आकाश को समय से पूर्व ही अन्धकारमय बना दिया था। पेड़ के नीचे एक कुआ था, जिस के समीप एक छोटी-सी कोठरी बनी हुई थी, जो आये गये राहियों के लिए सराय का काम देती थी। वहा पहुंचकर वदेहीशरण ने गाड़ीवान को गाड़ी रोकने का इशारा किया। गाड़ावान ने गाड़ी रोक दी। इस पर आश्चर्यित होकर चम्पा ने पूछा—'गाड़ी क्यों रोक ली।' वैदेहीशरण ने उत्तर दिया—'मैने रुकवाई है।' चम्पा ने फिर पूछा—'यहा क्या काम है।' 'थोड़ी देर तक यहा ठहर कर बैलों को बिसराम दे देना होगा'—वैदेहीशरण ने उत्तर दिया।

वैदेहीशरण ने जिस स्वर में उत्तर दिया, उस में कुछ रुखाई थी। अबतक वह जिस स्वर में बोल रहा था वह नम्रता बल्कि खुशामद भरा था। बात की शैली में अकस्मात परिवर्तन का अनुभव करके चम्पा ने ध्यान से वैदेहीशरण के मुंह की ओर देखा। उसने देखा कि वैदेहीशरण

के चहरे और चक्षुओं का भाव बदल गया है। अब तक टपकती हुई दीनता का कोई निशान बाकी नहीं रहा। मेघाच्छन्न सन्ध्याकाल के उस हल्के प्रकाश में वैदेहीशरण के चहरे पर चम्पा को गुस्ताखी और दिठाई के भाव दिखाई दिये। चम्पा कुछ सहम गयी, परन्तु सरला कुछ अधिक संसार देख चुकी थी और बम्बई में रहने के कारण तरह-तरह की परिस्थितियों का मुकाबला कर चुकी थी। उसने दृढ़तापूर्वक कहा—'गाड़ी यहाँ नहीं रुकेगी। सुरजा, गाड़ी चलाओ।' इस पर वैदेहीशरण ने बैल की रस्सी थाम कर कहा—'जब तक मैं न कहूँ तब तक गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती।' सरला ने चिल्लाकर कहा—'सुरजा, गाड़ी चलाओ।' सुरजा बेलूर से चलने से पहिले ही जेब गरम कर चुका था, बोला—'सरकार! यह गाड़ी को नहीं चलने देते, मैं बेबस हूँ।' यह कहकर सुरजा बैलों की रस्सी छोड़कर गाड़ी से नीचे कूद पड़ा। तब सरला ने आगे बढ़कर बैलों की रस्सी हाथ में ले ली और उन्हें चलने का इशारा किया।

इस पर वैदेहीशरण ने बैलों के जुए को पकड़कर डांट के स्वर में जोर से कहा—'खबरदार लड़की, गाड़ी को आगे बढ़ाने की कोशिश न करना। यदि अपना भला चाहती हो तो दोनों जनी चुपचाप तांगे से नीचे उतर आओ।' साथ ही अपने मुंह में दो अगुलियां डालकर एक खास ढंग से सीटी बजाई, जिसके पश्चात कुछ दूरी पर कई पैरों की आहट सुनाई दी और झुरमुट के घने अन्धकार में से निकलकर सड़क के हल्के अन्धकार में आते हुये चार व्यक्ति दिखाई दिये। उस आततायी दल के मुखिया ने दूर से ही ऊंचे स्वर से आदेश दिया—'दोनों को गाड़ी से नीचे उतार लो। बैलों को थामे रहो, वे आगे न बढ़ने पायें। अब इन दोनों को मालूम हो जायगा कि किसी भले आदमी को बेइज्जत करके घर से निकालने का क्या नतीजा होता है।' चम्पा और सरला दोनों ने पहिचान लिया कि वह आवाज कैलाश की है। दोनों कांप गईं।

वैदेहीशरण, जो अभी तक भीगी बिल्ली की भूमिका में दिखाई दे रहा था, अब बाघ का प्रत्यक्ष रूप धारण कर चुका था। उसने सरला का हाथ पकड़ कर कहा—'नीचे उतर।' इस पर चम्पा और सरला दोनों चिल्ला उठीं। सरला ने झटका देकर अपना हाथ तो छुड़ा लिया, परन्तु इसी बीच में कैलाश और उसके तीनों साथियों ने वहाँ पहुंच कर गाड़ी को घेर लिया। गाड़ीवान गाड़ी से उतरते ही वहां से भाग कर एक झाड़ी के पीछे जा छुपा था। जब दो आदमियों ने चम्पा को गाड़ी के एक ओर से और बाकी दो ने सरला को दूसरी ओर से नीचे घसीटा तो उनके आर्त्तनाद को सुनने वाला परमात्मा के सिवा वहां कोई नहीं था। दोनों ने पहिले एक दूसरे को खूब जोर से पकड़ कर किलाबन्दी करने की कोशिश की। परन्तु पाशविक बल के सामने उन की एक न चली और किला टूट गया तो उन्होंने गाड़ी से लिपट कर बचने की चेष्टा की। साथ ही वह सहायता के लिये पुकार भी करती रहीं। दोनों ने गाड़ी को काफी मजबूती से पकड़ा, मानों गाड़ी ही उनकी अक्षौहिणी सेना हो। परन्तु वह सहारा भी देर तक न रहा। आततायियों ने उन्हें बलपूर्वक घसीट कर गाड़ी से अलग कर दिया। इस छीना-झपटी में दोनों के बहुत-सी चोटें लग गयीं और कई जगह से खून जारी हो गया। सरला का सिर गाड़ी के पहिये से इस जोर से टकराया कि वह बेहोश होगई। चम्पा निरन्तर सहायता के लिए चिल्ला रही थी, उसे रोकने के लिए कैलाश ने, जो सरला के घसीटने में लगा हुआ था, ऊंचे स्वर से चिल्ला कर कहा—"इसके मुंह पर कपड़ा बांध दो और उठाकर उस जगह ले जाओ, जहाँ हम लोग बैलगाड़ी को छोड़ आये हैं, वहीं हमारी इन्तजार करना।"

अभी कैलाश की बात समाप्त न होने पाई थी कि उस घने अन्धकार को भेदती हुई घोड़ों की टाप सुनाई दी, जिससे आततायियों के कान खड़े होगये। घोड़े सरपट भागे आरहे थे। आन की आन

में सिर पर आ पहुँचे। मालूम होता था कि घुड़ सवारों ने, जो संख्या में दो थे, चम्पा की चिल्लाहट सुन ली थी। उनमें से एक घुड़सवार ने गगनभेदी स्वर से ललकारते हुए कहा—"खबरदार, सब लोग हाथ ऊँचा कर लो, नहीं तो गोली मार दी जायगी।" इस ललकार के साथ ही घुड़सवार ने आकाश में रिवाल्वर का फायर कर दिया। कायर आततायियों के लिए यह काफी था। वह सरला और चम्पा को छोड़ कर भाग निकले और अन्धकार में विलीन होगये। सड़क पर गाड़ी खड़ी थी और उसके दोनों ओर चम्पा और सरला बेहोश पड़ीं थीं। आततायी जाते हुए नृशंसता की यादगार के रूप में चम्पा के सिर पर एक लाठी का प्रहार करते गये थे।

[५]

रामनाथ को पटने में कई दिन लग गये। स्वयंसेवकों की सभा में उसने जो अभिनय किया था, वह उस बड़े संघर्ष का एक हिस्सा था, जो अनायास ही रामनाथ और बलधारीसिंह में आरम्भ हो गया था। 'दर्शन मात्र से प्रेम' की भाँति 'दर्शन मात्र से द्वेष' भी एक वास्तविक वस्तु है। इसमें पूर्वजन्म के कोई संस्कार कारण बन जाते हैं या यह केवल आकस्मिक चीज है, इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। रामनाथ और बलधारीसिंहका विरोध पूर्वजन्म का अवशेष था या इसी जन्म की उपज थी, इस समस्या को सुलझाये बिना भी हमारे लिए इतना जान लेना पर्याप्त है कि उन दोनों ने जब से मुंगेर के खंडहरों में एक दूसरे को देखा है, तब से उनमें प्रतिस्पर्धा का भाव पैदा हो गया है। स्वभाव में दोनों एक दूसरे से भिन्न थे, परन्तु एक बात में दोनों समान थे। दोनों उग्र महत्वाकांक्षी थे, उनके हृदयों में आगे बढ़ने और प्रसिद्ध होने की लालसा बहुत प्रबल थी। भाग्यों ने उन्हें एक ही रङ्गमंच पर लाकर खड़ा कर दिया था। परिणाम यह हो रहा था कि वे जब भी एक दूसरे की ओर देखते थे, तब ऐसे उत्तेजित हो उठते थे, जैसे घुड़दौड़ के

मैदान में दो घोड़े। उन दोनों में जो प्रतिस्पर्धा चल रही थी, उसमें स्वभाव-भेद के कारण लड़ाई के ढंग अलग-अलग थे, परन्तु मानसिक प्रेरणा एक ही थी।

स्वयंसेवकों की सभा का दूसरा दिन दोनों प्रतिस्पर्धियों ने अपने अपने ढंग पर व्यूह-रचना करने में गुजारा। बलधारीसिंह ने सभा की घटनाओं का विवरण खूब नमक-मिर्च लगाकर कांग्रेस-कमेटी के अध्यक्ष तक पहुंचाया और एक लिखित रिपोर्ट भी कार्यालय में दाखिल की, जिसमें सभा में गड़बड़ करने का सारा दोष रामनाथ पर लगाया गया था। उधर रामनाथ दिन भर स्वयंसेवकों और कमेटी के सदस्यों में घूम घूम कर बलधारीसिंह की 'बेईमानियों' और 'बत्तमीजियों' के विरुद्ध जोरदार प्रचार करता रहा। उसके दो एक दिन और भी इसी 'पवित्र' कार्य में व्यतीत हो गये। उसके पश्चात् वह रक्षा-कैम्प के शिशु-विभाग में गया, वहां उसे मालूम हुआ कि दो बच्चे ऐसे आये हुए हैं, जिन्हें बैलूर के शिशु-गृह में पहुंचा देना चाहिए। पटना का कार्य समाप्त हो चुका था, वह स्वयं बैलूर जाने को उत्सुक था; अतः दोपहर के समय घोड़ा-गाड़ी किराये पर लेकर बच्चों के साथ बैलूर के लिये रवाना हो गया।

जब दोपहर बाद वह बैलूर पहुंचा, तो उसने देखा कि हवेली में हलचल सी मची हुई है। दरबान और अन्य नौकर घबराहट में इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे हैं। अन्दर जाने पर माधवकृष्ण से भेंट हुई, जो उत्तेजित दशा में बाहर जाने को तैयार थे। रामनाथ के पूछने पर उन्होंने बतलाया कि बड़ा अनर्थ हो गया है। झूठा बहाना बनाकर बिसरामपुर का मशहूर धूर्त वैदेहीशरण भाभी को और बिटिया को ले गया है। गाड़ी पर जो गाड़ीवान गया है, वह भी विश्वासपात्र नहीं। माधवकृष्ण ने रामनाथ के सामने यह भय प्रकट किया कि यह सारी घटना किसी गहरे षड्यन्त्र का परिणाम है। रामनाथ भी इस बात से

सहमत हुआ कि मामला पेचीदा है और किसी भारी षड़यन्त्र की भूमिका है। दोनों इस बात में भी सहमत हुए कि बिना किसी विलम्ब के बैलगाड़ी का पीछा करना चाहिए, अन्यथा किसी अनर्थ की आशङ्का है। अस्तबल में से दो घोड़े कसवा कर मंगवाये गये। जमींदारी में बन्दूक और रिवाल्वर दोनों का लाइसैन्स था। चलते समय माधवकृष्ण ने रिवाल्वर भर कर अपनी कमर में रख लिया। इस तरह अगर कोई संघर्ष हो तो उसके लिये तैयार होकर माधवकृष्ण और रामनाथ घोड़ों पर सवार हो गये और जिस रास्ते से बैलगाड़ी गयी थी, उस रास्ते पर तीव्र गति से रवाना हो गये।

माधवकृष्ण उन रास्तों से भली प्रकार परिचित था। पीछा करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। रास्ते में दोनों में सिंह-परिवार की आन्तरिक राजनीति के सम्बन्ध में चर्चा होती रही। माधवकृष्ण ने गोपालकृष्ण के विलायत से लौटने से प्रारम्भ करके बंटवारे के निश्चय तक की सब घटनाओं का संक्षिप्त विवरण रामनाथ को सुनाया। अन्त में उसने कहा कि 'यह किस्मत की बात थी कि मैं आज कुछ सलाह करने के लिए अकस्मात यहां आ निकला। यदि मैं इधर न आता तो हमें पता भी नहीं लगता कि क्या हुआ? अवश्य ही यह धूर्त्त बजरङ्ग का माया-जाल है।'

रामनाथ सारे किस्से को बड़ी अधीरता से सुनता रहा, बीच-बीच में उग्र भाषा में टिप्पणी भी करता जाता था। वृत्तांत के अन्त में उसने भावुकतापूर्ण शब्दों में कहा 'क्या ही अच्छा होता, यदि मैं कुछ वर्ष पहले इस परिवार के सम्पर्क में आजाता। बेचारी सरला को इतने कष्ट न उठाने पड़ते।'

जिस समय वे दोनों बिसरामपुर से ३ मील के लगभग पहुंचे, तब सूर्य अस्त हो रहा था। वे गांव के बहुत समीप पहुंच गये थे और गाड़ी की ताजा लीक बिल्कुल सीधी जा रही थी। उनके मन में जो

घबराहट थी, वह दूर होने लगी। वे सोचने लगे कि शायद व्यर्थ ही सन्देह किया। यदि कोई धोखा होता तो गांव के इतने समीप तक गाड़ी न आती। अब तक उन्होंने रास्ते का अधिक भाग घोड़ों की दुलकी चाल से तय किया था, आश्वासन पाकर चाल ढीली कर दी। दोनों घोड़े कदम-कदम चलने लगे।

इधर सूर्य अस्त हो गया और पूर्व दिशा से अन्धकार का ओढ़न धीरे धीरे आकाश पर छाने लगा। दोनों जने बातचीत में व्यस्त थे कि इतने में उस झुटपुटे अन्धकार को चीरती हुई चीख की आवाज उनके कानों में पड़ी। उन्हें यह पहिचानने में देर न लगी कि आवाज चम्पा की है, इसके आगे जो कुछ हुआ वह पाठक सुन ही चुके हैं।

माधवकृष्ण और रामनाथ ने गाड़ी के समीप पहुंच कर जो दृश्य देखा, उसका हम ऊपर वर्णन कर आये हैं। संध्याकाल की हल्की-हल्की रोशनी में उन्होंने देखा कि बैल-तांगे के दोनों ओर भूमि पर दो मनुष्य-शरीर पड़े हुए हैं, जो लाशों की तरह निश्चेष्ट हैं। पास जाकर उन दोनों को पहिचाना तो दोनों बहुत दुःखी हुए। यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि गाड़ीवान भी लापता था! गाड़ीवान नौकर था, उसके भाग जाने पर माधवकृष्ण को बहुत दुख हुआ।

पहिला कार्य चम्पा और सरला को भूमि पर से उठाकर तांगे में डालने का था। वह थोड़ी देर में पूरा हो गया। तब यह समस्या उठी कि तांगा कौन चलावे। पुराने ढंग के जमींदार प्रायः जमींदारी से सम्बन्ध रखने वाले सब कार्यों का अभ्यास रखा करते थे। यही कारण था कि वे अपनी जमींदारी का प्रबन्ध ऐसा अच्छा कर सकते थे। अब आराम तलबी और विलासिता बढ़ जाने के कारण अन्य श्रेणी के पूंजीपतियों की तरह भूमि के मालिक ने भी खेतों और उनकी उपज की देख-भाल नौकरों पर छोड़ दी है। भूमि भी उन्हें उतना ही पुरस्कार देती है जितना नौकरों को मिलना चाहिये। माधवकृष्ण भी

गाड़ी हांकना जानता था। उसने बैलों की लगाम हाथ में ली और बैलों को गांव की ओर ले चला।

गाड़ीवान इस घटना को झाड़ी के पीछे से देख रहा था। बैलगाड़ी के दूर निकल जाने पर वह वहां से निकला और जिधर उसके षड़यन्त्र के साथी गये थे, उधर ही चला गया।

[६]

बिसरामपुर में उन लोगों को तीन दिन तक ठहरना पड़ा। चम्पा को हल्की ही चोट आयी थी। वह शीघ्र ही सचेत हो गयी, परन्तु सरला के आघात गहरे और संख्या में अधिक थे। खींचातानी में उसके शरीर पर कई जगह रगड़ लगकर रुधिर बह निकला था। झटका लगने से दांये हाथ की कलाई की हड्डी उतर गयी थी। सरला के हृदय पर उस सारे दृश्य का धक्का भी बहुत जोर का लगा था। उसे होश में आने में कई घण्टे लग गये। जब होश में आयी तब भी हिलने जुलने योग्य नहीं थी। तीन दिन की परिचर्या और गांव के घरेलू इलाज से उसकी दशा इतनी सुधर गयी कि उसे बैल तांगे में गद्दी पर लिटाकर बैलूर तक ले जाया जा सके। उपर्युक्त घटना के चौथे दिन प्रातःकाल वे लोग बिसरामपुर से बैलूर के लिए चल पड़े।

घटना की रिपोर्ट दूसरे ही दिन थाने में करादी गयी थी। कैलाश, वैदेहीशरण और गाड़ीवान ये तीन आदमी तो पहिचाने हुए थे ही। दूसरे दिन सायंकाल उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट जारी होगये।

देहात के लिये यह बहुत बड़ी और सनसनीखेज़ घटना थी। ऐसी ही बड़ी और सनसनीखेज़ थी जैसी राष्ट्रों की दुनिया में किसी राज-परिवार पर गोली चलने या दो देशों के आपस में टकरा जाने की समझी जाती है। आस-पास के २०-२५ गांव में बहुत दिनों तक इस घटना की चर्चा और व्याख्या होती रही। जब सब समाचार खूब नमक मिर्च के साथ सुरजानपुर पहुंचे, तब हवेली में मानो शादियाने बजने लगे। देवकी

रानी ने सन्तोषपूर्वक सिर हिलाते हुए कहा—"यह तो एक दिन होना ही था। महारानीजी अपनी जवान लड़की को लिये बहुत सैर करती फिरती थीं। दोस्त भी बहुत से बना रखे थे। कुल की मर्यादा तोड़ने का यही फल होता है।"

बैलूर पहुंचकर सरला का विधिपूर्वक इलाज आरम्भ किया गया। पटने से बंगाली डाक्टर को बुलाया गया, जिसने आघातों पर दवा लगायी और कलई की हड्डी को ठीक जगह पर जोड़कर पट्टी बांध दी। कलई दायें हाथ की थी, इस कारण उसे हर काम के लिये दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती थी। फलतः उसे दो-तीन सप्ताह तक पराधीन होकर रहना पड़ा।

माधवकृष्ण को परिवार के बैलूर पहुंच जाने पर एकदम ही जमींदारी की देखभाल और मुकद्दमे की पैरवी के लिये बाहर जाना पड़ा। रमा अपने मायके की रिश्तेदारी में एक शादी पर गयी हुई थी और चम्पा स्वयं अर्धरोगी और निर्बल हो रही थी। उसके शरीर और मन पर जीवनभर के कष्टों का जो बुरा असर हुआ था, उसे उस रात की घटनाओं ने और अधिक गहरा कर दिया। फलतः सरला की परिचर्या का अधिकतर बोझ रामनाथ पर ही पड़ा। रामनाथ ने वह कार्य जिस तत्परता से किया, उससे यह अनुमान कठिन नहीं था कि वह उसे प्रसन्नतापूर्वक कर रहा था, अनिच्छापूर्वक नहीं। वह चौबीस घण्टों के दिन में लगभग १६ १७ घण्टे सरला की परिचर्या में व्यतीत करता था। केवल थोड़े बहुत सोने या नित्यकर्मों से निवृत्त होने के लिये रोगी से अलग होता था। उसका शेष सारा समय सरला की सेवा में ही गुजरता था।

यह तो पाठक समझ ही गये होंगे कि रामनाथ रोगी का आदर्श सेवक नहीं बन सकता था। उसकी तबीयत में न इतना धैर्य था और न इतना सन्तोष कि वह एक रोगी का आदर्श परिचारक बन सकता। इस कारण बीच-बीच में काण्ड भी उपस्थित होते रहते थे। कभी वह रोगी

के किसी बात पर स्वाभाविक आग्रह करने पर झल्ला उठता था, तो कभी बच्चों की तरह रूठकर बैठ जाता था! फिर भी उसकी तत्परता प्रेम और परिश्रम का सम्मिलित रूप से यह प्रभाव हुआ था कि चम्पा और सरला उसकी प्रकृति के विस्फोटों को क्षमा कर देती थीं और उबाल के शांत हो जाने पर रामनाथ फिर सेवा के कार्य में लग जाता था।

स्त्री-हृदय स्वभाव से ही भावुक होता है। उस पर प्रेम, साहस और सेवा जैसे गुणों का बहुत शीघ्र और तीव्र प्रभाव पड़ता है। चम्पा और सरला दोनों पर ही उसका पुष्कल प्रभाव पड़ा। उन दोनों पर पड़े हुए प्रभावों की भी यदि परस्पर तुलना करनी हो तो हम कह सकते हैं कि चम्पा पर जो प्रतिक्रिया हुई, वह अधिक गहरी थी। प्रकृति ने पुरुष और स्त्री दोनों को अपने आप में अधूरा बनाया है। पुरुष कितना ही शक्ति-सम्पन्न हो, स्त्री के सहयोग के बिना सूना रहता है, और स्त्री कैसी ही प्रतिभा-सम्पन्न हो, पुरुष का साथ न होने पर अपने को अपूर्ण ही अनुभव करती है। वस्तुतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। बेचारी चम्पा के जीवन में भी एक बहुत बड़ी अपूर्णता आ गई थी। वह जमींदारी का प्रबन्ध भी करती था और घर की देखभाल भी। परन्तु किसी कार्य में उसका दिल नहीं जमता था। उसे जमींदारी के बंटवारे की बात छिड़ने के पश्चात् माधवकृष्ण से कुछ सहायता मिलने लगी थी, परन्तु वह भी अधूरी थी। माधवकृष्ण को मुख्य चिन्ता अपने हिस्से के बंटवारे की थी। साथ-साथ लगते हाथ वह बैलूर की जमींदारी की भी देख-भाल करने लगा था परन्तु वह तो गांव को जाते हुए तिनका छूने के समान ही था। घर के मामलों में तो चम्पा को सरला के बिना और किसी की सहायता नहीं मिलती थी। रंगभूमि में रामनाथ के प्रवेश ने एक नई परिस्थिति पैदा कर दी। रामनाथ में कई विशेषतायें थीं। वह शरीर से हृष्ट-पुष्ट, साहसी और वाक्पटु व्यक्ति था। उसके बैलूर में आते ही यह बात अनुभव होने लगी थी कि वह देशभक्त और वीर पुरुष होने के साथ-साथ

उदार विचारों वाला व्यक्ति है। वह बातचीत में स्त्रियों के अधिकारों का जोरदार समर्थन करता था और हिन्दू समाज में पुरुषों की ओर से स्त्रियों पर जो अत्याचार होते हैं, उनकी कठोर शब्दों में निन्दा किया करता था। उसके स्वभाव में बहुत उग्रता थी और जब वह किसी कार्य के करने का निश्चय कर लेता था, तब यह नहीं देखता था कि उस कार्य को पूरा करने में वह जिन साधनों का प्रयोग कर रहा है, वह अच्छे हैं या बुरे। "अंत भला सो भला" उसका यही आदर्श था। उसके स्वभाव का यह दोष सामान्य रूप से हर एक की दृष्टि में नहीं आता था। चम्पा के भावुक हृदय पर रामनाथ के गुणों का बहुत गहरा असर हो रहा था, उसे वह अपने बुढ़ापे की लकड़ी समझने लगी थी और मन में सोचने लगी थी कि क्या ही अच्छा होता यदि रामनाथ मेरा पुत्र होता। विसरामपुर के समीप संकट के समय पहुंच कर रामनाथ ने उन लोगों की रक्षा की और फिर बीमारी की दशा में सरला की इतनी अच्छी सेवा की, कि उसके प्रति चम्पा का स्नेह और भी बढ़ गया और वह इस निश्चय पर पहुंच गयी कि रामनाथ से सरला का विवाह करके उसे वस्तुतः परिवार का अंग बना लिया जाय।

उपर्युक्त सब घटनाओं का असर सरला के हृदय पर भी हो रहा था। परन्तु उसमें इतना भेद था कि वह रामनाथ के स्वभाव की उग्रता से परिचित हो चुकी थी, इस कारण घबराती थी। विवाह की बात तो अभी उसके दिल में आयी ही नहीं थी। बीमारी में रामनाथ ने जो सेवा की, उससे भी सरला के हृदय पर मीठे-कड़वे दोनों तरह के प्रभाव पड़े। उसकी तत्परता मधुर थी, परन्तु विस्फोट भयानक था। सरला विस्फोट के समय कांप उठती थी।

इधर रामनाथ के मस्तिष्क और हृदय का प्रवाह वेग से बह रहा था। उसे बेलूर के वातावरण में पहुंच कर बहुत संतोष मिलता था। जमींदारी का पुश्तैनी गौरव, चम्पा का मातृ-वात्सल्य और आस-

पास की ग्रामीण जनता का आदर-भाव पाकर वह अपने को कुछ ऊंचा उठा हुआ अनुभव करता था। प्रारम्भ से ही सरला के प्रति उसका हृदय आकृष्ट होने लगा था। इससे पूर्व अपने अक्खड़ जीवन में वह कभी स्त्री की समीपता में नहीं आया था। ऐसे व्यक्ति के लिये एक युवती का सान्निध्य ही वृत्तियों को उत्तेजित करने के लिये काफी था, फिर यहां तो सरला की नैसर्गिक मधुरता से रामनाथ की भावुकता से भरी हुई उग्र प्रकृति पर तीव्र प्रतिक्रिया हो रही थी। रामनाथ का मस्तिष्क सिंह परिवार के साथ स्थिर सम्बन्ध करने को आत्म-गौरव का बढ़ाने वाला समझने लगा था और उसका हृदय सरला को अपनाने के लिये उतावला हो गया था।

जब तक सरला चारपाई पर पड़ी रही, तब तक तो कोई विशेष चर्चा नहीं चली पर जब सरला चलने-फिरने और कुछ काम-काज करने लगी, तो एक दिन चर्चा चल गयी। उस दिन रामनाथ कांग्रेस की सभा में शामिल होने के लिये पटना गया हुआ था और रमा रिश्तेदारी की शादी से निवृत्त होकर बेलूर आयी हुई थी। दोपहर के समय घर के काम-काज से निवृत्त होकर तीनों जनी चौक में पीढ़ियों पर बैठी चर्खा कात रही थीं। रमा ने श्रीगणेश किया। उसने चम्पा से कहा—

'जीजी, अब तो सरला चंगी हो गयी, वह बात शुरू करो न।'

'कौन सी बात?' चम्पा ने आश्चर्य से पूछा।

रमा ने उत्तर दिया - 'उस दिन जब हम लोग किशोरी की शादी में जारहे थे और मैंने तुमसे पूछा था कि सरला की शादी कब तक करोगी तो तुमने जवाब दिया था कि अभी तो सरला चारपाई पर पड़ी है, जब राजी हो जायेगी, तब उससे पूछेंगे। अब तो तुम्हारी लड़की ईश्वर की कृपा से अच्छी हो गयी, अब पूछो न!'

चम्पा ने सरला की ओर देखकर कहा—'सुन रही है बिटिया, तेरी चाची क्या पूछ रही है? बता अब भी विवाह पर हामी भरेगी या मेरी किश्ती को मंझधार में ही पड़ा रहने देगी।'

सरला विवाह की बातचीत आरम्भ होने पर प्रायः उद्विग्न हो जाती थी। परन्तु आज प्रतीत होता है कि वह पहले से ही ऐसी चर्चा की आशङ्का कर रही थी। इस कारण इतनी नहीं घबराई, जितनी अकस्मात् किसी अप्रिय प्रसङ्ग के आरम्भ हो जाने पर घबरा जाती। बीमारी के दिनों में वह दो चीजों को देखती और अनुभव करती रही।' पहली चीज थी—रामनाथ द्वारा खूब लग कर परिचर्या और दूसरी थी, रामनाथ के लिये चम्पा की स्नेह भावना। सरला इन दोनों वस्तुओं को देखकर मन ही मन में यह अनुमान लगा रही थी कि एक न एक दिन भावनाओं की यह क्रिया प्रतिक्रिया विवाह-प्रस्ताव के रूप में सामने आयेगी। जब वह आ गयी तब सरला पहले की भाँति अधिक उद्विग्न नहीं हुई। सरला बोली—

'भाभी, क्या तुम समझती हो कि मेरा विवाह करना आवश्यक है? क्या मैं इसी तरह जन्म भर तुम्हारी सेवा नहीं कर सकती?'

चम्पा ने उत्तर दिया—'नहीं सरला, यह नहीं हो सकता, लड़कियां पराया धन हैं। पराये धन को अवधि बीत जाने पर घर में रखने से पाप लगता है। रही मेरी सेवा की बात। मैं ऐसी स्वार्थी नहीं बनना चाहती कि अपने सुख की खातिर तेरे जीवन को बरबाद करूं और यह भी तो जरूरी नहीं कि विवाह के पीछे तुम लोग मेरी देख न कर सको। यदि मेरे भाग्यों में सुख होगा तो तेरी शादी से मुझे एक ऐसा बेटा मिल जायेगा, जो इस जमींदारी के प्रबन्ध में मेरा हाथ बंटा सके। मैं इस माया-जाल में कब तक फसी रहूँगी। मुन्ना अभी बहुत छोटा है, उसके बड़ा होने तक इस बोझ को उठाने वाला भी तो कोई चाहिये और...... ।'

सरला ने बात काटते हुए कहा—'भाभी तुम ऐसा क्यों कहती हो, चाचाजी तो सब कुछ संभाल ही रहे हैं।'

चम्पा बोली—'नहीं सरलो,यह उनके बस का काम नहीं, उन्होंने अपनी सेहत, अपने बड़े भाई की सेवा में खो दी। कोई तलबदार नौकर भी वैसी सेवा नहीं कर सकता जैसी तेरे चाचा ने अपने बड़े भाई की की है। न दिन देखा न रात। नतीजा यह निकला कि अपना कुछ न बनाया, सेहत बिल्कुल खराब कर ली। अब तो उनका शरीर रोगों का घर बन गया है।' यह कहते कहते चम्पा का गला रुंध गया और आंखों से आंसू निकल आये। थोड़ी देर रुक कर फिर कहने लगी 'इतनी खिदमत करा कर इन लोगों ने यह इनाम दिया कि मक्खन में से बाल की तरह निकाल कर बाहिर फेंक दिया। उनकी सेहत तो अब अपना काम देखने लायक भी नहीं रही। मैं तो रात दिन इस चिन्ता में घुली जाती हूँ और देख सरलो, इस तरह टालने से काम नहीं चलेगा।' बीच में रमा बोल उठी—'सरला, तेरी मां को सभी ने दुःख दिया है, अब तू भी उसे दुख दे रही है।'

'मैं, भाभी को दुःख दे रही हूँ, यह तुमने कैसे कहा चाची' सरला बोली।

रमा ने तीखे स्वर से उत्तर दिया—'मैंने बिल्कुल ठीक कहा है, तू बार-बार विवाह से इन्कार करके अपनी मां को दुखी कर रही है। क्या तुम लोगों की किताबों में यही लिखा होता है कि मां बाप का कहा मत मानो, शादी मत करो और जन्म भर कुंवारे रहकर घर भर की मुसीबत और बदनामी का कारण बनो।'

रमा के तीखे स्वर से सरला का प्रयत्नपूर्वक बांधा हुआ धैर्य का बांध टूटने लगा। वह आंखों में आंसू भर कर बोली—'मैंने कुल की बदनामी का क्या काम किया है चाची।'

रमा—'बदनामी नहीं तो और क्या किया है? सारी बिरादरी में खाक-सी उड़ रही है कि लड़की सयानी हो गयी, तो भी उसकी शादी नहीं होती। इसमें कोई न कोई बुराई की बात ही कारण है। कोई

बम्बई की बातें सुनाता है तो कोई कैलाश की चर्चा करता है। तुझे घर में बैठे पता नहीं कि दुनिया क्या क्या कहती है।'

सरला के धैर्य का बांध तो पहिले ही टूट गया था, रमा के तीखे वाक्यों के गोलों ने तो उसे बिल्कुल ही चकनाचूर कर दिया। चर्खा हाथ से छूट गया और जल-प्रवाह आंखों के रास्ते से बहने लगा। वह निराश्रय सी होकर अपील के तौर पर कहने लगी—

'क्यों भाभी! क्या तुम भी वैसा समझती हो जैसा चाची ने कहा है?'

यों तो चम्पा का नर्म दिल लड़की के आंसू देख कर पिघल रहा था, परन्तु अब उसके मन में भी यह निश्चय सा हो रहा था कि अब सरला की शादी होनी ही चाहिये। उसने अपने स्वर को यत्नपूर्वक दृढ़ करते हुए कहा—'देख सरला! तू अब बहुत सयानी हो गयी। तुझे कुंवारी देख कर मैं बहुत दुःखी रहती हूं और लोग भी तरह-तरह की बातें कहते हैं। मैं जानती हूँ कि वह जो बातें कहते हैं, सब झूठ हैं, परन्तु किसी की जुबान तो नहीं पकड़ी जा सकती। तेरी शादी हो जाय तो उन सब के मुंह पर खाक पड़ जाय और मेरे शरीर का भी क्या पता। न जाने पिंजरे में से पखेरू कब उड़ जाय। मुझे यह चिन्ता खाये जा रही है कि मेरे पीछे तेरा क्या होगा।' यह कहते-कहते चम्पा का गला भर गया। सरला पूरी तरह परास्त हो गई। बरसों से पकाया हुआ विवाह न करने का संकल्प रमा के दिये हुए झकझोरे और चम्पा के दुःख भरे शब्दों के सामने खड़ा न रह सका। वह रोती हुई बोली—'मैं बड़ी ही पापिन हूं भाभी कि तुम्हें रात दिन कष्ट दिया करती हूं। मैं सच कहती हूं, तुम्हें जरा सा भी क्लेश नहीं देना चाहती। अब मैं इस विषय में कुछ न कहूँगी। जिसमें तुम्हें प्रसन्नता हो, वैसा करो।''

चम्पा प्रसन्न होकर बोली—'तो तू शादी करने के लिए राजी है न?'

"मैं तो कह चुकी कि मैं अब इस विषय में कुछ न कहूँगी। जो चाची और तुम ठीक समझो और जिसमें तुम्हें प्रसन्नता हो, वही करो। मुझसे कुछ मत पूछो।"—सरला ने उत्तर दिया।

चम्पा ने कहा—"तू बड़ी अच्छी है सरला, फिर भी..........."

रमा ने बात काटते हुए कहा—'जीजी तुम्हारी यह 'फिर भी' 'तो भी' ही तो खराब है। जब सरला ने एक बार कह दिया कि जैसा तुम लोग ठीक समझो करो, तो फिर आगे खोद-खोद कर पूछने और नहीं कहलवाने में तुम्हें क्या मजा आता है। बिटिया बेचारी ने तो अंतिम निश्चय तुम पर छोड़ दिया है। अब तुम्हें चाहिये कि शादी की तैयारी करो।"

[८]

उपर्युक्त बातचीत के दो तीन दिन पश्चात् माधवकृष्ण और रमा में निम्नलिखित बातचीत हुई। रमा ने कहा—

'तुम्हें एक शुभ समाचार सुनाऊं, तो क्या दोगे?'

'सुनाओ, तब बताऊं।'

'पहले बताओ, तब समाचार सुनाऊंगी।'

'यह तो बड़ी मुश्किल बात है, खैर! अगर समाचार सचमुच शुभ हुआ, तो जो कुछ तुम मांगोगी, वह दूंगा।'

'समाचार तो सचमुच ही शुभ है। उसे सुनकर कहीं अपने वायदे को भूल न जाना। अच्छा तो सुनो। सरला बेटी ने मान लिया है कि वह विवाह करा लेगी, और यह भी निश्चय होगया है कि शादी किससे होगी।'

'यह तो सचमुच शुभ समाचार है कि सरला विवाह के लिए राजी होगई है। हां, यह तो बताओ, लड़का कौनसा चुना है?'

'लड़का यही तिवारीजी हैं।'

'कौन, तिवारीजी?'

'यही अपने तिवारीजी पटने वाले।'

'तुम्हारा मतलब रामनाथ तिवारी से है ? क्या तुम मजाक कर रही हो ?'

'नहीं, मजाक नहीं बिल्कुल सच है ।'

'यह सच कैसे हो सकता है । मुझे तो इसके बारे में कुछ भी नहीं मालूम । चुनाव किसने किया ?'

'चुनाव हम लोगों ने किया । मैंने और जीजी ने । तुम्हारी तो सहमति होगी ही, यह मानकर हमने फैसला कर लिया ।'

इस उत्तर से माधवकृष्ण की त्योरी चढ़ गयी । उसने तेज होकर कहा—'मेरी सहमति तो इस चुनाव में बिल्कुल नहीं । मैं तो तिवारी को इस योग्य नहीं समझता कि उसके साथ सरला जैसी भोली लड़की का गठजोड़ किया जाय । वह तो बड़ा तुनक-मिजाज आदमी है । जब बिगड़ जाता है, तब मनुष्य नहीं रहता, दैत्य हो जाता है । ऐसे पुरुष से बिटिया की शादी करना तो गाय को बाघ से बांधने के बराबर होगा ।'

रमा बोली—'तुम्हें तो कोई भी पुरुष अच्छा नहीं लगता, सब में दोष ही दोष देखा करते हो । पुरुष की आदत ही ऐसी होती है.........'

माधवकृष्ण ने बात काटते हुए कहा—'पुरुषों के सम्बन्ध में अपनी कीमती राय देना छोड़ कर पहले मुझे यह बताओ कि यह बात अभी तुम लोगों ने सरला से तो नहीं कही ।'

रमा ने उत्तर दिया—'कही क्यों नहीं, कह दी है और उसने चुप्पी साध कर स्वीकार भी कर लिया है । उसने कह दिया है कि मुझे इस बारे में कुछ मत पूछो, जीजी जो ठीक समझें करें । मुझे सब कुछ मंजूर है ।'

माधवकृष्ण ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—'यह सबकुछ तो ठीक नहीं हो रहा । अभी इसके बारे में तिवारी से तो कुछ नहीं कहा गया ।'

'नहीं, तिवारीजी से अभी कुछ नहीं कहा गया। वह तो अभी यहां थे ही नहीं परन्तु बात तय हो गई समझो। वह कभी इन्कार नहीं करेंगे। उनका सरला से बहुत प्रेम है।'

यह कहकर रमा ने माधवकृष्ण को शान्त करने का यत्न किया परन्तु माधवकृष्ण पर इसका कोई असर नहीं हुआ। वह असन्तोष प्रगट करता हुआ बोला—'मुझे यह सब बात बिल्कुल पसन्द नहीं कि कोई निश्चय करने से पहले मुझसे सलाह भी नहीं ली गयी। क्या मैं सरला का कोई नहीं हूँ? यदि मुझसे सलाह ली जाती, तो मैं कभी इस सम्बन्ध को मंजूर न करता। इस में हमारे कुल की हेठी तो है ही; बेचारी सरला को भी सुख नहीं मिल सकता। मेरी तो सम्मति है कि इस विचार को अब भी त्याग देना चाहिये।'

रमा घबराहट के साथ बोली—'देखो तुम्हें मेरे सिर की सौगंध, तुम इस मामले में कुछ मत बोलना। अपनी राय को अपने तक ही रहने दो। जीजी का दिल इस सम्बन्ध पर जम गया है और सरला ने भी इसे स्वीकार कर ही लिया है। अब इस में विघ्न मत डालो। बेचारी जीजी को एक सहारा मिल जायगा और बिटिया के भी हाथ पीले हो जायेंगे। इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है। तुम्हें अच्छा लगे या बुरा, मैं तुम्हारे पांव पोंछ कर कहती हूँ कि इस शुभ काम में रुकावट मत डालो।'

माधवकृष्ण की तबीयत नर्म थी और वह मतभेद होने पर भी अन्त में रमा को बात मान जाता था। कोई सन्तान न होने से दोनों की प्रसन्नता बहुत कुछ एक दूसरे पर ही अवलम्बित थी। बीच में तीसरी कोई चीज न होने से दोनों मानों एक ही शरीर के दो अंग बन गये थे। रमा का अत्यन्त आग्रह देखकर माधवकृष्ण ने कहा—'जब तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो मैं इस विषय में कुछ नहीं बोलूंगा, न पक्ष में और न विपक्ष में, तुम लोग जानो और तुम्हारा काम जाने।'

माधवकृष्ण उसी दिन शाम को बंटवारे के मुकद्दमे की पैरवी के लिए बैलूर से चला गया।

माधवकृष्ण के जाने पर तीन-दिन पीछे रामनाथ पटना से लौटा। वह वहां से कांग्रेस कमेटी के चुनाव में सफल होकर लौटा था। वह जिला कांग्रेस कमेटी की वर्किङ्ग कमेटी की सदस्यता का उम्मीदवार बना था। पटना के कांग्रेसी-क्षेत्र में बलधारीसिंह का भी एक दल था। उसने रामनाथ का खूब विरोध किया, परन्तु बिहार की स्वयंसेवक मंडली में रामनाथ बहुत लोकप्रिय हो गया था। उस मण्डली के उद्योग से रामनाथ सफल हो गया। वह जिला कांग्रेस कमेटी की वर्किङ्ग कमेटी का सदस्य चुना गया। चुनाव के गरमागरम संघर्ष में उसकी बलधारीसिंह से दो-चार चोंचें भी हुईं, जिनमें बलधारीसिंह को रामनाथ की पैनी तुरत-बुद्धि और उस से भी पैनी जिह्वा के सामने हार खानी पड़ी। जब रामनाथ बैलूर में खाना खाने के लिये बैठा, तो उसका दिल पटना के समाचारों को सुना डालने के लिए इतना उत्सुक हो रहा था कि वह घर के सब लोगों की मानसिक दशा में आये हुए परिवर्त्तन को न भांप सका और बहुत देर तक चुनाव-संग्राम के विस्तृत समाचारों के सुनाने में ही मग्न रहा। उसने अपनी विजय का वृत्तान्त सुनाने की धुन में यह भी नहीं देखा कि उसके पास केवल चम्पा ही बैठी थी। प्रायः भोजन के समय परोसने का काम सरला करती थी, जो आज अदृश्य रही। जब रामनाथ का पहला धारा-प्रवाह जरा ढीला हुआ, तो उसे सरला का अभाव अनुभव होने लगा, क्योंकि वह अपनी जीत पर चम्पा और सरला दोनों से साधुवाद और बधाई की आशा रखता था। बलधारीसिंह को उसने जो फड़कते हुए जवाब दिए और उनसे बलधारी-सिंह जिस तरह खिसियाना होकर रो दिया, वह सब रामनाथ खूब नमक-मिर्च लगाकर सुना गया था। वह आशा कर रहा था कि उस पर सब लोग खूब हंसेंगे, और उसकी तारीफ करेंगे। परन्तु जब चम्पा केवल

मुस्कराकर ही सन्तुष्ट हो रही और सरला दिखाई न दी तो रामनाथ ने भौचक्का सा होकर पूछा—'भाभी, आज क्या बात है, तुम आज चुप-सी हो। और सरला भी दिखाई नहीं देती।'

चम्पा मुस्कराती हुई बोली—'सब बताऊंगी। खाना खाकर निश्चिन्त होकर बैठो, तब बातें होंगी।'

रामनाथ और भी अधिक आश्चर्यित हो गया। यह तो उसने चम्पा की मुस्कराहट से जान लिया कि बात अप्रिय नहीं है। परन्तु यह अनुमान न लगा सका कि क्या बात है? यद्यपि वह सरला की ओर पूरी तरह आकृष्ट हो चुका था, तो भी उससे विवाह होने की सम्भावना उसके दिल में नहीं आयी थी। यह बात तो उसे ऐसे ही असम्भव मालूम होती थी, जैसे चाँद के टुकड़े का मिलना। उस इलाके में सिंह परिवार की बड़ी मानता थी। सुप्रबन्ध के कारण जमींदारी का राजसी-ठाठ भी कम नहीं था। अड़ौस-पड़ौस में चम्पा की धर्म-परायणता और उदारता की धूम थी। इधर सरला भी जीवन की इतनी मंजिलें तय करके भी अभी तक अछूती कली की तरह पवित्र थी। इन सब बातों को देखकर रामनाथ इस परिणाम पर पहुंच चुका था कि 'सिंह-परिवार' ऊंचा वृक्ष है और वह एक बौना आदमी है, जो अत्यन्त इच्छा रहते भी उस वृक्ष के फलों को केवल देख सकता है, प्राप्त नहीं कर सकता। उसने चम्पा की बात को सुनकर जो-जो कल्पनाएं कीं, वह सभी लक्ष्य से बहुत दूर थीं।

रामनाथ खाना खाकर, हाथ पोंछकर उत्सुकतापूर्वक चम्पा से बोला—"लो! अब ब्राह्मण खा-पीकर बिल्कुल तय्यार हो गया, बताओ, क्या बात है।" चम्पा ने संक्षेप में बिल्कुल सीधे ढंग पर विवाह का प्रस्ताव सामने रख दिया। रामनाथ उसे सुनकर मन-ही मन कितना प्रसन्न हुआ होगा, इसका पाठक अनुमान लगा सकते हैं। परन्तु उसकी तुरंत बुद्धि ने उसके कान में धीरे से कहा कि एकदम प्रसन्नता प्रगट

करना ठीक नहीं। इसमें हेठी हो जायेगी। शान जमाने का यही समय है। चेहरे को अत्यन्त गम्भीर बनाकर बोला—"हूं! तो बात यह है। मैंने तो सुना था कि सरला विवाह करना ही नहीं चाहती, क्या उसने अब अपनी राय बदल ली?"

चम्पा ने उत्तर दिया—"हा, अब तो वह मान गयी है।"

"अब तक नहीं मानी थी, अब क्यों मान गयी। अब मानने का क्या कारण हुआ?"—रामनाथ ने पूछा।

चम्पा बोली—"अब तक उसका इन्कार भी ठीक ही था। जब तक कोई योग्य आदमी न मिले, तब तक हम भी तो पूरा जोर नहीं दे सकते। तुम्हें देखकर मेरे दिल में तसल्ली हो गयी कि इस सम्बन्ध में बिटिया को सुख मिलेगा। मैंने पूरा जोर देकर कहा तो वह मान गयी। अब मैं शुभ-कार्य में देर नहीं करना चाहती। तुम मंजूर दे दो, तो विवाह की तैयारी की जाय।"

रामनाथ एक क्षण तक चुप रह कर व्यंगभरी वाणी से बोला—"और यदि मैं स्वीकार न करूंगा तो?"

चम्पा पर मानो वज्र गिरा। उसने यह कल्पना भी नहीं की थी कि रामनाथ सरला से विवाह करना स्वीकार नहीं करेगा। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो पानी में देर तक डुबकियां खाकर, जब अन्त में वह नदी-तट पर झुके हुए वृक्ष की शाखा को पकड़ने में सफल हो गयी, तो किसी ने कुल्हाड़े से उस वृक्ष का तना काट दिया। वह स्तब्ध-सी रह गयी। तब रामनाथ ताली पीटकर जोर की हंसी हंसता हुआ बोला—"बस, इतनी-सी हंसी से घबरा गयीं। भला तुम्हारी इच्छा को मैं कैसे टाल सकता हूँ। मैं तो देख रहा था कि मेरे इन्कार करने का तुम पर क्या असर होगा। सचमुच स्त्रियों का दिल बहुत कमजोर होता है।"

"तुमने बात ही ऐसी कही, तिवारीजी! भला कोई ऐसा भी मजाक करता है। अगर तुम्हारी बात बिटिया सुन लेती, तो क्या होता।

चम्पा को यह मालूम नहीं था कि सरला कमरे के बन्द दरवाजे के पीछे खड़ी हुई सब कुछ सुन रही है। वह रामनाथ की बात सुनकर बेहोश होते-होते बची।

चम्पा की बात का रामनाथ ने उत्तर दिया—"और क्या होता, पहिली बात सुनकर रोने लग जाती और दूसरी बात सुनकर हंस पड़ती।"

चम्पा अब कुछ शान्त होगयी थी। बोली—"तो बात तय हो गयी। मैं सबसे कह दूं।"

रामनाथ ने गम्भीर बनने की चेष्टा करते हुए कहा—"यह तो ठीक ही है। परन्तु क्या यह भी जरूरी नहीं कि मैं स्वयं सरला से इस विषय में बातचीत कर लूं?"

चम्पा ने कहा—"वह तो सब कुछ मुझ पर छोड़ चुकी हैं। अब पूछने से क्या लाभ?"

रामनाथ ने जोर देकर कहा—"वाह, भाभी यह भी कोई बात है, क्या सरला कोई पत्थर की मूर्ति है, जो अपने विवाह के सम्बन्ध में भी बातचीत नहीं करेगी? क्या मैं ही अब ऐसा खतरनाक आदमी हो गया हूँ कि वह मेरे सामने आती तक नहीं। यह तो बहुत ही गंवारपन की बात है।"

चम्पा रामनाथ के स्वर की कर्कशता से बहुत घबरा गयी। वह सोचने लगी कि तेज होने की कोई बात तो थी नहीं, फिर रामनाथ इतना कुछ क्यों कह गया। पहले तो मन आया कि रामनाथ को कोई सख्त बात कह दे, परन्तु भारत में लड़की वाले के स्वाभाविक दब्बूपन ने उसे दबा दिया। हमारे देश की यह प्रथा है कि विवाह की बातचीत चलते ही लड़की वाले का सिर झुक जाना चाहिये और उसे हर बात में दबना चाहिए। चम्पा भी रामनाथ के कठोर शब्दों को पीकर शान्त-भाव से बोली—"तिवारीजी, ऐसी कोई बात नहीं। सरला किसी काम में लगी होगी, इसलिये नहीं आ सकी। काम-काज से निबट लेगी, तो तुम उससे

बातचीत कर लेना, उसने बात करने से इन्कार नहीं किया। वह बात तो मैंने अपनी ओर से ही कह दी। तुम तो व्यर्थ ही नाराज हो गये।"

रामनाथ ने इस पर जोर से ताली बजाई और हंसते हुए कहा—"वाह भाभी! इतनी-सी बात से घबरा गयीं। तुम तो मुझे दामाद बनाने जा रही हो। दामादों के तो बहुत बड़े-बड़े नखरे सहने पड़ते हैं। मेरा भी यह नखरा ही था।"

चम्पा इस काण्ड से अप्रतिभ सी हो गयी। केवल इतना ही कह सकी, "अच्छा, तिवारीजी अब तुम आराम करो। काम-काज से निबट-कर सरला से बातचीत कर लेना।"

[६]

चम्पा और रामनाथ की विवाह-सम्बन्धी बातचीत के पश्चात् बहुत-सी चीजें हुईं। रामनाथ और सरला में प्रस्तुत सम्बन्ध के बारे में बातचीत हुई। सरला ने रामनाथ के अनेक बार और अनेक प्रकार से पूछने पर भी केवल एक ही उत्तर दिया कि जो भाभी की इच्छा है, वही मेरी इच्छा है। जो कुछ भाभी ने कह दिया है, उसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कहना चाहती। जब रामनाथ ने यह कहा कि "देखो, खूब सोच समझ लो। मैं बिल्कुल अकेला हूँ, क्योंकि कांग्रेस के काम में आ जाने के कारण घर वालों से मेरा सम्बन्ध बिल्कुल टूट गया है। सांसारिक दृष्टि से मैं इस समय सर्वथा निर्धन हूँ, यद्यपि अपनी शान के सामने मैं राजाओं की शान को हेच समझता हूँ। खूब विचार कर लो, कहीं ऐसे फक्कड़ आदमी से शादी करने से तुम्हें कष्ट न हो।" तो सरला ने उत्तर दिया कि "मैं यह सब कुछ जानती हूँ, मुझे और कुछ नहीं चाहिये। मैं तो भाभी की इच्छानुसार कार्य करना अपना धर्म समझती हूँ।"

चम्पा ने सम्बन्ध की सूचना का एक पत्र माधवकृष्ण को भिज-वाया, जिसमें उसे बेलूर आने को लिखा था। उत्तर में माधवकृष्ण ने केवल इतना ही लिखा—"इस विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। आप जैसा उचित समझें, करें, मुझे वही मंजूर है।"

इन सब बेढंगी बातों से पहले तो चम्पा बहुत घबरा गयी और किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सी हो गयी। परन्तु अधिक विचार के अनन्तर वह इस परिणाम पर पहुंची कि यह सम्बन्ध हो ही जाना चाहिये। सरला ने बड़ी मुश्किल से विवाह के सम्बन्ध में 'नहीं' कहना छोड़ा है। रामनाथ अच्छा आदमी है, और जबर्दस्त भी है। ऐसे दामाद से विरोधियों का सामना करने और जमींदारी को सम्भालने में भी काफी सहायता मिलेगी। इन सब बातों पर चम्पा और रमा में परस्पर परामर्श हुआ। अंत में वे इसी परिणाम पर पहुंचे कि रामनाथ से सरला का विवाह शीघ्र से शीघ्र हो जाना चाहिये। इसमें देर लगना अच्छा नहीं।

जब यह बात उठी कि रामनाथ अपने पिता और अन्य सम्बंधियों से विवाह के सम्बन्ध में अनुमति ले ले, तब पहले तो रामनाथ इस पर आग्रह करता रहा कि किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु चम्पा और रमा के बहुत बल देने पर उसने घरवालों को विवाह की सूचना निश्चित समाचार के रूप में भेजी। लिखा कि "मैंने बेलूर की जमींदारिन श्रीमती चम्पादेवी की सुपुत्री सरलादेवी से विवाह करने का निश्चय किया है। आप लोग लिखिये कि यहां आने की सुविधा कब होगी। यदि सम्भव हुआ तो उसी के अनुसार विवाह की तारीखें नियत की जायेंगी।" रामनाथ के पिता को पहले तो यह पत्र पाकर बहुत रंज हुआ। शादी तय कर ली और हमसे पूछा भी नहीं। यह बात सभी घर वालों को बुरी लगी, परन्तु करते क्या। रामनाथ सदा से ऐसा ही रहा अपनी मनमानी करता रहा। घर वाले भी उसकी स्वच्छन्दता के आदी हो चुके थे। अंत में बहुत-से विचार-चर्वण के पश्चात् रामनाथ को लिखा गया कि 'सम्बन्ध का निर्णय कर लेने से पहिले हमसे पूछ लेते तो अच्छा था। अस्तु अब तुमने निश्चय कर ही लिया है, तो तारीख का निश्चय भी अपनी सुविधा से कर लो और उसकी सूचना भी हमें भेज दो। उस अवसर पर कोई न कोई यहां से पहुंच जायेगा।'

कुल-प्रथा के अनुसार सम्बन्ध की सूचना सुरजानपुर को भी भेजी गयी। वहां से जो उत्तर मिला, उसका आशय यह था कि रामनाथ तिवारी हमारी जाति का नहीं है, उसकी तरह-तरह की बदनामी भी सुनी गयी है। इस कारण हम लोग इस सम्बन्ध से सहमत नहीं हैं। यदि फिर भी यह सम्बन्ध किया गया, तो हम लोग उसमें शामिल नहीं हो सकते।

इस तरह मामला बहुत उलझनदार बन गया। यदि साधारण स्त्री होती तो चम्पा घबरा जाती। परन्तु उसकी कोमल प्रकृति के पर्दे के नीचे जो दृढ़ इच्छा हुई थी, उसने उसे सहारा दिया, वह अपने निश्चय पर जमी रही। विवाह की बातचीत चलने से तीन महीने पश्चात् वेलूर में विवाह सम्पन्न हो गया।

विवाह में कन्या-पक्ष की ओर से जो कुछ करना आवश्यक था, सामान्य रूप से वह सभी कुछ किया गया। ऊपर की धूमधाम और लेन-देन के सब रिवाज पूरे किये गये। परन्तु यह सभी ने अनुभव किया कि उस समारोह के आवरण में छुपा हुआ एक विशेष सूनापन है। कन्या-पक्ष के अधिकतर निकट-सम्बन्धी अनुपस्थित थे। माधवकृष्ण उपस्थित था, परन्तु लगभग दर्शक रूप से। उसके इस रुख को देखकर चम्पा और रमा को भी खेद हुआ। उधर सुरजानपुर वालों का तो सक्रिय असहयोग था—न केवल इतना ही कि वहां से कोई विवाह में सम्मिलित होने के लिए नहीं आया, वहाँ के एजेण्टों ने चम्पा, रमा और रामनाथ के सम्बन्ध में तरह-तरह के अपवाद फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन लोगों ने रिश्तेदारी का हक इतनी अच्छी तरह अदा किया कि सरला को भी अछूता नहीं छोड़ा। उसके बारे में भी तरह-तरह की अफवाहें फैलायीं।

रामनाथ के सम्बन्धियों ने अपनी नाराजगी को निष्क्रिय प्रतिरोध तक ही परिमित रखा। उनकी ओर से एक वृद्ध महाशय, जो बहुत दूर के रिश्ते में रामनाथ के चचा लगते थे, कुछ थोड़ा-सा सामान लेकर

बिवाह के अवसर पर पहुँच गये थे। उनका आना न आने का सूचक और शायद उससे भी बढ़कर नाराजगी का सूचक था। इतना जरूर मानना पड़ेगा कि वृद्ध महाशय ने सुरजानपुर वालों की तरह यज्ञ में बाधा डालने का प्रयत्न नहीं किया।

माधवकृष्ण विवाह से पूर्व ही आ गया था। वह कार्यों में थोड़ा बहुत सम्मिलित होकर घर के बुजुर्ग के स्थान की पूर्त्ति करता रहा, परन्तु रहा कुछ अनमना ही। हम देख चुके हैं कि वह इस सम्बन्ध के पक्ष में नहीं था। जात-पांत का तो उसे बहुत ध्यान नहीं था, परन्तु तिवारी की प्रकृति को वह पसन्द नहीं करता था। रामनाथ की प्रकृति जेष्ठ मास के अन्तिम दिनों जैसी थी। उस में आँधी उठने में देर नहीं लगती थी। माधवकृष्ण ऐसा भी अनुभव करता था कि जब रामनाथ किसी काम के करने पर तुल जाता है, फिर दूसरे की भावनाओं या साधनों की भलाई या बुराई की परवाह नहीं करता। माधवकृष्ण का विचार था कि इस सम्बन्ध से परिवार को सुख नहीं मिलेगा। परन्तु चम्पा की इच्छा और रमा के आग्रह के सामने उसने सिर झुका दिया। इस प्रकार ऊपरी धूमधाम, परन्तु आन्तरिक खोखलेपन से ज्योतिषी की बताई हुई शुभ घड़ी में रामनाथ और सरला का विवाह हो गया।

पाँचवां परिच्छेद

सार्वजनिक जीवन की धूप-छांह

[१]

रामनाथ और सरला का विवाह ईस्वी सन् १९३४ के अन्तिम महीने में हुआ था। ७ वर्ष बाद सन १९४२ के आरम्भ में यह दम्पती बिहार की राजधानी पटना में निवास कर रहा था। विवाह के पश्चात लगभग डेढ़ वर्ष तक रामनाथ बेलूर में ही रहा। विवाह के समय चम्पा की यह भावना थी कि रामनाथ को अपना बड़ा लड़का समझ कर घर में ही रखेंगी। जमींदारी के संभालने और विरोधियों का मुकाबला करने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता थी, रामनाथ में वे पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे। वह चतुर था, दबंग था और चम्पा में सदा अगाध-

भक्ति प्रगट करता था। जैसे अन्धे को चलने के लिये लठिया का सहारा चाहिए, वैसे चम्पा भी एक समर्थ पुत्र का सहारा चाहती थी। तिवारी में उसे वह सब बातें दिखाई दीं, जो एक हितैषी और समर्थ पुत्र में होनी चाहियें। सरला का उससे विवाह करते हुए चम्पा के मन में यही मुख्य विचार था। एक वर्ष तक दोनों ओर से इस भावना का निभाव किया गया। रामनाथ ने डटकर विरोधियों का मुकाबला किया। चम्पा ने भी पूरे भरोसे के साथ सब काम-काज उसके हाथों में सौंप दिया। एक ओर बंटवारे की उलझन थी और दूसरी ओर बिसरामपुर वाले मुकदमे की भाग दौड़। बंटवारे के मामले की देख-भाल माधवकृष्ण के और मुकद्दमे की पैरवी रामनाथ के सुपुर्द थी। यों दोनों ही काम में एक दूसरे की सहायता करते थे। कुछ समय तक तो कार्य भली प्रकार चलता रहा। उसके पश्चात् बीच-बीच में गर्म हवा के झोंके आने लगे। विक्षोभ के दो मुख्य कारण थे। सबसे प्रथम कारण तो रामनाथ का उग्र और चंचल स्वभाव था। वह आषाढ़ के आकाश की तरह परिवर्तनशील था। क्षण-भर में बदली तो क्षण-भर में धूप। अभी कोलाहल-पूर्ण हंसी तो अभी रौद्र चिल्लाहट। जो बात केवल हंसी में कहता था, यदि किसी ने उसका विरोध कर दिया, तो तत्काल उसे जीवन का अटल सिद्धान्त मान कर उस पर अड़ जाता था, और फिर उसके मुंह पर एक ही वाक्य होता था कि 'सत्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः—धीर लोग सत्य से कभी नहीं डिगते। बस फिर तो गांधीजी के सत्याग्रह-सम्बन्धी सब शस्त्रास्त्रों का इस संशोधन के साथ प्रयोग आरम्भ कर देता था कि क्रिया में हिंसा की भावना हो या न हो, वाणी में बहुत उग्र हिंसा आ जाती थी। विक्षोभ का दूसरा कारण यह था कि माधवकृष्ण के मन में रामनाथ के प्रति अविश्वास की भावना बीज रूप में पहिले से बोई गई थी। रामनाथ के लिए यह मानना लगभग असम्भव था कि कोई मनुष्य सामान्यतः उससे बड़ा हो सकता है। किसी को अपने से बड़ा मान ले यह उसकी उदासतापूर्ण दया थी।

कांग्रेस का कार्यकर्त्ता होने से उसे महात्मा गांधी को अपने से बड़ा मानना पड़ता था, परन्तु इसका बदला वह यों चुका लेता था कि उन्हें वह 'महात्माजी' के इस नाम से न याद करके 'गांधीजी' कहता था। माधवकृष्ण रिश्ते में बड़ा था, परन्तु रामनाथ के तिवारी-शास्त्र' में केवल रिश्ते के कारण किसी को बड़ा मानना आवश्यक नहीं था, इस कारण वह समय-समय पर अपने व्यवहार से यह सूचित करता रहता था कि मै यदि तुम से बड़ा नहीं तो बराबर जरूर हूँ। बातचीत में वह प्रायः माधवकृष्ण की बात को काटने की चेष्टा करता था। कब क्या करना चाहिये, इस विषय में भी प्रायः दोनों में मतभेद हो जाता था। स्वभाव-भेद के कारण जो वैमनस्य बीज-रूप में उत्पन्न हुआ था, वह नित्य उठने वाले मतभेदों की सहायता पाकर शीघ्र ही लम्बे चौड़े वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। माधवकृष्ण ने कुछ-एक मामलों में रामनाथ से असहमति प्रकट करने का साहस किया, जिससे बिगड़ कर रामनाथ ने बहुत-सी कड़ी बातें कह डालीं। माधवकृष्ण ने ईंट के बदले में पत्थर न मारकर चम्पा से कहा—

"भाभी, अब प्रबन्ध की देखभाल करना मेरे लिये सम्भव नहीं है। शायद अब मेरी आवश्यकता भी नहीं है। तिवारीजी सब काम संभाल ही रहे हैं, वह मालिक हैं, उन्हें सम्भालना भी चाहिए। इतने दिनों तक जो कुछ बुरा या भला काम हो सका, वह कर दिया, अब मुझे छुट्टी दो।" चम्पा पर मानो वज्र गिरा। वह एक लड़के का सहारा चाहती थी, परन्तु देवर का सहारा खो कर नहीं। उसे यह स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि लठिया का सहारा लेने से पाँव खोने पड़ेंगे। वह अत्यन्त खिन्न होकर बोली—

"यह क्या कहते हो भैया, तुम बुजुर्ग हो। तिवारीजी तुम्हारे बेटे के बराबर हैं। वह तुम्हारी जगह कैसे ले सकते हैं। उनका स्वभाव जरा तेज है, पर दिल बिल्कुल साफ है। उनकी बात का बुरा मानना

ठीक नहीं। यदि उनकी कोई बात बुरी लगी हो तो मेरी और सरला की ओर देखकर क्षमा कर दो।"

यह बात कहने के समय चम्पा की आंखों में आंसू आ गये थे। इस कारण माधवकृष्ण चुप हो गया और बात टल गयी। परन्तु जब थोड़े ही दिनों में रामनाथ ने कई बार माधवकृष्ण का अपमान किया, तो उसने असहयोग के मार्ग का अवलम्बन किया। बंटवारे में उसके हिस्से में जो गांव आये थे, वह उन्हीं में से एक गांव में जाकर रहने लगा। काम के लिए बुलाये जाने पर उसने चम्पा को लिख दिया कि मेरी तबियत अच्छी नहीं है, इस कारण नहीं आ सकूंगा। तिवारीजी तो वहां हैं ही। वे काम की देख भाल कर लेंगे।

माधवकृष्ण के इस उत्तर से चम्पा बहुत दुखी हुई और आंखों में आँसू भरकर रामनाथ से बोली—'तिवारीजी, माधव बाबू तुम्हारी बात से रूठकर दूर जा बैठे हैं। वे अब तुम्हारे लिखने से ही आ सकते हैं। तुम उन्हें एक पत्र लिखकर बुला लो तो बहुत अच्छा हो।'

पहले तो बहुत देर तक रामनाथ पत्र लिखने को राजी नहीं हुआ और कहता रहा कि जब मैंने माधवबाबू को कोई बुरी बात नहीं कही, तो बुलाने के लिए खुशामद क्यों करूं। परन्तु अन्त में चम्पा के बहुत आग्रह करने पर पत्र लिखना स्वीकार कर लिया। जो पत्र लिखा, वह न लिखने से भी बदतर था। उसने लिखा था—'मुझे बतलाया गया है कि आपने मेरी किसी बात से रूठकर बनवास ले लिया है और यहां आने से इन्कार कर दिया है। यह आपकी भूल है। मैं कभी कोई बात बुरे भाव से नहीं कहता। अच्छे भाव से कही गई कड़ी बात को बुरा नहीं मानना चाहिए।' इत्यादि

इधर धीरे धीरे कांग्रेस के लगाव के कारण रामनाथ को बार बार पटना जाना पड़ता था और वहाँ देर तक ठहरना पड़ता था। कभी कभी वह बैलूर से एक-एक मास तक अनुपस्थित रहता था।

विवाह के तीसरे वर्ष अवस्था यह हो गई थी कि रामनाथ सरला को साथ लेकर कांग्रेस के कार्य के लिए पटना अथवा प्रांत के अन्य स्थानों पर जाता था तो कभी कभी महीनों व्यतीत हो जाते थे। चम्पा के लिये यह परिस्थिति बहुत दुखदायी होरही थी। वह बड़े संकट में थी। माधवकृष्ण ने जमींदारी के प्रबन्ध से हाथ खींच लिया था, रामनाथ जमींदारी के काम की देख-रेख में विशेष ध्यान न देकर कांग्रेस की चिन्ता ही में व्यस्त रहता था; और रामनाथ के साथ दौरों में शामिल होने के कारण सरला भी अपनी भाभी की पहले जितनी सहायता नहीं कर सकती थी।

चम्पा स्वभाव से ही बहुत सहनशील थी। फिर जीवन की घटनाओं ने उसे और भी अधिक सहनशील बना दिया था। उसने इस नई संकटमय परिस्थिति को तीन वर्ष तक सहन किया। अंत में तङ्ग आकर उसने रामनाथ के सामने अपनी कठिनाई स्पष्ट शब्दों में रखी। चम्पा ने बात बात में कहा—

'तिवारीजी, तुम लोगों के अधिक समय बाहिर रहने से मुझे बड़ी दिक्कत होती है। जब तुम और सरला दोनों चले जाते हो तब सिवाय इस अनाथ बच्चे के जिसे तुमने पटना से लाकर रखा था, मेरा कोई भी साथी नहीं रहता। जमींदारी के कामों में किसी से सलाह भी नहीं ले सकती। बहुत काम पीछे पड़ गये हैं। क्या तुम लोग ऐसा नहीं कर सकते कि अधिक बार बाहिर न जाना पड़े और जाओ भी तो जल्दी लौट आया करो?'

तिवारी ने इस अपील का जो उत्तर दिया, वह तिवारीपन की तेज बू लिये हुए था। उसने कहा—

'भाभी, यह कैसे हो सकता है कि मैं देश सेवा का कार्य छोड़ दूं। मैं घर-बार का सब कुछ छोड़ सकता हूं, देश का काम नहीं। यदि तुम्हारा जी सरला के बिना घबराता है तो तुम उसे यहां रख लिया

करो। वह कांग्रेस के काम के लिए मेरे साथ न जाया करे, पर यह समझ लेना कि उस दशा में मैं समझूंगा कि सरला मेरे लिए मर गई। मैं चाहता हूँ कि मेरा साथी देश का कार्य मेरी तरह ही करे। मुझे घर-चिपकू स्त्री नहीं चाहिये।'

चम्पा जब कभी आवाज उठाती, ऐसा ही कड़ुवा जवाब मिलता। अब रामनाथ का स्त्रियों के सम्बन्ध में वह पुराना आदर्शवाद समाप्त हो चुका था। अब तो घर का डिक्टेटर बन कर बोलता था, जिसके सामने चम्पा को मौन हो जाना पड़ता था।

सरला के प्रति रामनाथ का व्यवहार भी पूरे तानाशाही रंग पर आगया था। वह सरला को चाहता था क्योंकि उसकी वासना तृप्ति के लिए पुकार रही थी। दिन-भर सरला को पास रखना चाहता था, उसे पुकारना चाहता था, परन्तु साथ ही उसे अपनी इच्छा की बांसुरी पर नचाना चाहता था। सरला अनुभव करती थी कि उसका पति उससे असीम प्यार, बल्कि मोह करता है, परन्तु वह यह भी अनुभव करती थी कि वह प्यार में अपने व्यक्तित्व को नहीं, बल्कि सरला के व्यक्तित्व को खो देना चाहता है।

कुछ समय तक परिस्थिति ऐसी ही संकटमय दशा की ओर लुढ़कती रही। चम्पा की मानसिक शक्ति और चिन्ता निरन्तर बढ़ती गई और सरला अपने वैवाहिक जीवन के इस मेघाच्छन्न प्रथम भाग से किंकर्तव्य विमूढ़-सी होती रही। तीन वर्ष इसी तरह व्यतीत होगये। तीसरे वर्ष के अन्त में एक दिन पुलिस आई और रामनाथ को पटना में दिये गये किसी भाषण के अपराध में गिरफ्तार करके ले गई और अभियोग का एकांकी नाटक पूरा करके २ वर्ष की सख्त जेल की सजा दे दी। रामनाथ के जेल चले जाने पर पटना के काँग्रेसियों का एक शिष्ट-मण्डल बैलूर आया और चम्पा से अनुनय-विनय करके कांग्रेस के आगामी डिक्टेटर पद पर आरूढ़ करने के लिए सरला को माँग ले

गया। सरला अपनी योग्यता, स्वभाव की मधुरता और भाषण-शक्ति के कारण प्रान्त में खूब लोकप्रिय हो गई थी। सरला ने पटना पहुंच कर कांग्रेस की बागडोर हाथ में ले ली और इस सुन्दरता से रथ-संचालन किया कि ६ महीने में ही प्रांत की नौकरशाही सरकार को उसे कारावास के रूप में उज्ज्वल प्रमाण-पत्र देना पड़ा। उसे भी दो वर्ष का कठोर कारावास मिला।

पोने दो वर्ष जेल में व्यतीत करके जब रामनाथ मुक्त हुआ तो उसने कांग्रेस के कार्य की सुगमता के लिए पटना में रहने का ही निश्चय किया। वह पटना के समीप एक सुन्दर-सी बस्ती में छोटा-सा मकान किराये पर लेकर रहने लगा और अपना सम्पूर्ण समय कांग्रेस के कार्य में लगाने लगा।

जब ६ मास के पश्चात् सरला जेल से छूटी तो उसे भी रामनाथ के साथ पटना में ही रहना पड़ा। इस प्रकार विवाह के पांचवे साल में रामनाथ और सरला पटना के समीप घर बना कर रहने लगे। सरला ने उस घर का नाम राम-निवास रखा था।

[२]

रामनिवास छोटा-सा था, पर था सुहावना। नगर के बाहिरी भाग में, एक छोटी सी खुली बस्ती में वह घर था। घर काटेज के ढंग पर बना हुआ था। बीच में एक बड़ा कमरा था, उसके दोनों ओर दो छोटे-छोटे कमरे थे। बीच का कमरा बैठक का काम देने के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार अतिथि-गृह का काम भी देता था। पार्श्व के कमरों में से एक शयनगृह था और दूसरा गोदाम। तीनों कमरों के आगे एक चौड़ा बरामदा था, जिसकी चौड़ाई में चारपाई आ सकती थी। काटेज के सामने काफी खुली भूमि थी, जिसमें सेहन के लिए स्थान छोड़ देने पर भी छोटी बगीची के लिए जगह बच गई थी। बंगले और भूमि के चारों ओर दीवार का एक घेरा बना हुआ था। बंगले के दाहिने

पार्श्व में, चार-दीवारी से लगे हुए चार छोटे-छोटे कमरे थे, जो रसोई, गोदाम, गुसलखाना और लकड़ी-गोदाम का काम देते थे। इन छोटे कमरों के सामने पक्का चबूतरा था। सुबह-शाम उस पर बैठकर रसोई का काम-काज हो सकता था। चबूतरे के सामने, दूसरे पार्श्व पर लीची का एक पेड़ था, जिसकी छाया में बैठने के लिए चारपाई कुर्सी आदि पड़ी रहती थी। वह स्थान रामनाथ के लिए खुले ड्रायंग रूम और दफ्तर का काम देता था।

रामनाथ का रोजगार था भी और नहीं भी था। वह कहने को शहर के रईस बा० श्यामसुन्दरलाल की जायदादों का मैनेजर था, परन्तु असल में उसे कोई विशेष मैनेजरी नहीं करनी पड़ती थी। बा० श्यामसुन्दरलाल पक्के कांग्रेसी थे। उन्होंने रामनाथ की सार्वजनिक सेवाओं से सन्तुष्ट होकर उसे अपनी जायदाद का नाममात्र का मैनेजर बना रखा था। उनका लक्ष्य यह था कि रामनाथ गुजारे की चिन्ता से मुक्त होकर देश-सेवा का कार्य कर सके। रामनाथ को यह सन्तोष था कि वह निर्वाह के लिए १००) मासिक दान के रूप में नहीं पाता, अपितु कमाता है। कभी-कभी दफ्तर का चपरासी आकर दो चार कागजों पर हस्ताक्षर करा ले जाता था और बस। दोनों सन्तुष्ट थे। बा० श्यामसुन्दरलाल को तसल्ली थी कि वह रामनाथ को निश्चिन्त होकर देश-सेवा करने की सहूलियत दे रहे थे और रामनाथ को संतोष था कि वह कमाकर गुजारा कर रहा है, किसी से सहायता नहीं लेता।

सरला इस छोटी सी वाटिका की मालिन थी। वह गृह-कार्य में खूब दक्ष थी। माता के गृह-विद्यालय में जो शिक्षा पाई थी, उसका वह पूरा उपयोग करती थी। घर की प्रत्येक वस्तु को साफ सुथरा और सुन्दर रखने का उसे शौक था। रामनाथ को जो मासिक राशि मिलती थी, वह अधिक नहीं थी। केवल १००) मासिक मिलते थे। सामान्य रूप से वह पर्याप्त नहीं समझे जा सकते थे, परन्तु सरला अपनी मेहनत

और चतुराई से इसे मानों १० गुना बना देती थी। घर सदा स्वच्छ दिखता था; छोटी-सी वाटिका में मौसम की सब्जी और नन्हीं-सी फुलवारी सदा विद्यमान रहती थी; मेहमान किसी भी समय आ जाय, सत्कार की सामग्री जुटाने में देर नहीं लगती थी। बहुत-सा काम तो वह स्वयं अपने हाथ से कर लेती थी। पानी लाने और बर्तन-झाड़ू के काम के लिये पड़ोस की मेहरी आती थी। दोनों समय का भोजन सरला स्वयं ही बनाती थी। इस सारे गृह-राज्य के संचालन में उसकी एक छोटी-सी सहायिका और थी, जिसका नाम था वीणा। वीणा की आयु इस समय लगभग ८ वर्ष की थी। पाठक भूले न होंगे कि उन्होंने ८ वर्ष पूर्व एक दुधमुंही बच्ची का मुंगेर के खंडहरों में से उद्धार होते देखा था। मुंगेर से रामनाथ उसे पटना लाया और वहाँ से बैलूर के शिशु-रक्षा गृह से ले जाकर चम्पा के अर्पण किया। चम्पा और सरला ने उस नन्हीं सी गुड़िया को छाती से लगा लिया और जैसे चिड़िया अण्डे को सेहकर बड़ा करती है, उसी तरह मांस के लोथड़े को पाल-पोसकर एक प्यारी-सी चपल बालिका के रूप में परिणत कर दिया। बालिका का गला बहुत मधुर था। इस कारण सरला के प्रस्ताव पर उसका नाम वीणा रखा गया था। जब सरला बैलूर से पटना जाने लगी, तो वह वीणा को साथ लेती गई। चम्पा पहले तो बच्ची को अलग करने के लिये तैयार नहीं हुई, परन्तु जब सरला ने बहुत आग्रह किया और यह युक्ति दी कि पटना में उसकी पढ़ाई का प्रबन्ध हो जायगा, अन्यथा वह फूहड़ रह जायगी, तो चम्पा राजी हो गई। वीणा तब से सरला के पास ही रहती है। दिन के समय पास के एक कन्या विद्यालय में पढ़ने चली जाती है और सुबह-शाम घर के काम-काज में अपनी दीदी की सहायता करती है। सहायता भी थोड़ी नहीं थी, साधारण से कुछ अधिक ही थी, क्योंकि अपने पारिवारिक-संस्कारों के कारण, उसमें परिश्रम करने की प्रबल-शक्ति थी। जब कभी सरला को कांग्रेस के काम पर घर से बाहर रहना पड़ता

था—और रामनाथ के साथ-साथ उसे कांग्रेस के दौरों पर प्रायः बाहिर रहना पड़ता था—तब वीणा स्कूल से छुट्टी ले लेती और कमर कस करके घर के काम में जुट जाती और यह देखकर सरला को बहुत संतोष और अभिमान होता था कि बहुत से काम वह सरला के समान ही कर लेती थी। वह आठ बरस की बच्ची, घर के काम-काज में शहर की युवतियों को मात करती थी। चम्पा का उससे असीम प्रेम था। वह प्रायः पटना आती जाती रहती थी और जब वीणा को घर में तितली की तरह उड़ती देखती, तब इस डर से कि कहीं नजर न लग जाय, आंखें बन्द कर लेती थी। रामनाथ, सरला को यह कहकर चिढ़ाया करता था कि 'अरे भाई क्या कहें, तुम से तो यह बीनू ही हुश्यार है, जो पानी का भरा हुआ घड़ा सिर पर उठा लेती है, तुमसे तो खाली घड़ा भी नहीं उठता।'

[३]

बेलूर में हर साल वीणा का जन्म-दिन मनाया जाता था। जिसदिन वीणा को लेकर रामनाथ बेलूर पहुँचा था, वही उसका जन्म-दिन माना गया और प्रतिवर्ष उस दिन विशेष भोजन बनता था, वीणा को कपड़ों और फूलों से सजाया जाता था और कुछ दान-पुण्य किया जाता था। पटना में भी यह रिवाज जारी रहा। इस अवसर पर, चम्पा भी रामनिवास में पहुंच जाती और सारा परिवार मिलकर वीणा के जन्म-दिन को एक त्यौहार की तरह मनाता।

आज वीणा का जन्म-दिन है। चम्पा भी आई हुई है। सरला प्रातःकाल से ही तैयारी में लग गई है। एक ओर रसोई में कचौरियों के लिये पिट्ठी पिस रही है, तो दूसरी ओर अपनी बगीची में से फूल इकट्ठे किये जा रहे हैं। सरला का हृदय इस उत्साह से भरा हुआ है कि आज घर में बाहिर के भी पाँच-सात परिचित व्यक्ति खाना खाने आयेंगे। वीणा घर-भर में चहकती फिरती है; कभी भाभी—वीणा भी चम्पा को

भाभी कहकर ही पुकारती थी—की सहायता को जाती है, तो कभी वीणा का हाथ बंटाती है। इतने में घर के सदर-दरवाजे से रामनाथ का गर्जन सुनाई दिया—"सरला, चलो" साथ ही तीव्र-गति से रामनाथ घर में आता दिखाई दिया।

सरला पिट्ठी पीस रही थी; हाथ रोककर बोली—"कहां?"

"पूछती हो, कहां? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि आज ६ बजे काँग्रेस कमेटी की मीटिंग है। उसमें अधिकारियों के अतिरिक्त आल-इण्डिया कांग्रेस कमेटी के सदस्यों का चुनाव भी होगा। उसमें जाना जरूरी है।"

सरला ने हाथों को सिल-बट्टे पर रखे ही रखे उत्तर दिया—

"मीटिंग की बात तो याद है, पर आज उसमें मैं कैसे जा सकूंगी? आज वीणा का जन्म दिन है न? मैं तो आपसे भी कहती हूँ कि आज टाल जाओ, मीटिंग तो हमारे बिना भी हो ही जायेगी।"

रामनाथ तेज होकर बोला—

"फिर तुमने वही औरतों वाली बातें शुरू कर दीं। मैंने तुम्हें हजार बार कह दिया कि चाहे घर को आग लग जाय, मैं कांग्रेस के काम को नहीं छोड़ सकता। मैं चाहता हूँ कि मैं और तुम, दोनों आल-इण्डिया काँग्रेस कमेटी के सदस्य चुने जायं। यह काम दोनों के गये बिना पूरा नहीं हो सकता। यहां का काम भाभी देख लेंगी, तुम झटपट तैयार हो जाओ और मेरे साथ चलो। बातों में अधिक समय न लगाओ।"

यह कहता हुआ रामनाथ तीव्र-गति से कमरे में घुस गया और नहाने की तैयारी में कपड़े तलाश करने लगा। सरला उसकी आवाज और पैरों की गति से समझ गई कि परिस्थिति गम्भीर है, इस कारण रसोई छोड़ कर कमरे में घुसती हुई बोली—

आज बिन्नो रानी का जन्म दिन है। भाभी उसी के लिये आई हुई हैं। आधी तैयारी हो चुकी है। मेरे जाने से तो सब कुछ बिगड़

जायगा। यदि जाना जरूरी है, तो आप चले जायं और जल्दी वापिस आ जायं।"

रामनाथ ने अपना हाथ पास पड़ी हुई छोटी मेज पर जोर से पटका और चिल्लाकर कहा—

"फिर वही नहीं,नहीं। जो काम करने को कहो उससे इन्कार। अरे भाई, आज कांग्रेस की मीटिंग में आल-इण्डिया के लिए चुनाव होगा। मैं भी उम्मेदवार हूँ। मेरे मुकाबले पर यह मरदूद बलधारीसिंह खड़ा हो गया है। तुम्हारा भी वोट है। क्या तुम्हारा यही पति-धर्म है कि मुझे हार जाने दो। उधर देश का काम है और इधर तुम्हारा घरेलू मामला। मैं देश के काम पर सौ घरेलू मामलों को कुर्बान कर सकता हूँ।"

सरला ने दबी जबान से कहा—

"इतना चिल्लाओ मत। भाभी और बिन्नो सुन लेंगी तो घबरा जायेंगी।"

इस पर रामनाथ और भी ऊंचे स्वर से बोला—

"मुझे इसकी परवा नहीं कि कौन सुनता है। जिसे सुनना है कान खोलकर सुन लो कि तुम्हें आज काँग्रेस की मीटिंग में अवश्य चलना होगा। यदि नहीं जाओगी तो मैं इस घर में पांव नहीं रखूंगा। मैं समझ लूंगा कि यहाँ सब मर गये।"

सरला का हृदय दहल गया। उत्तर में कुछ बोलने की हिम्मत न हुई। काँपते हुए हाथों से आंखों में उमड़ते हुए आंसुओं को पोंछने की चेष्टा करने लगी, इस पर रामनाथ ने एक और आवाज कसी—

"अब किसको रोने लगीं। मैं तो अभी जिन्दा हूँ। मीटिंग में चलना हो तो तैयारी करो, नहीं तो साफ कह दो कि तुम मरो या जिओ, मुझे कोई परवा नहीं।"

अब तो सरला के लिये आंसू बहाना भी कठिन हो गया।

बेचारी एकदम कपड़े लेकर गुसलखाने में घुस गई और दरवाजा बन्द करके फूट-फूटकर रोने लगी।

चम्पा ने सब बातचीत रसोई-घर से ही सुन ली थी। वह गत पाँच वर्षों में ऐसे दृश्यों की अभ्यस्त हो चुकी थी। रामनाथ का ज्वालामुखी ऐसे ही, समय-समय पर फूटता रहता था। बेचारी सरला पर जो कुछ बीतती थी, वह उसे कभी हंस कर, कभी चुप रह कर और कभी रोकर सह लेती थी। चम्पा अन्दर ही अन्दर घुटती थी, क्योंकि वह अनुभव करती थी कि सरला को रामनाथ के हाथों में सौंपने की एकमात्र जिम्मेदारी उसी की है। जब रामनाथ सरला के प्रति उग्र-प्रेम का प्रदर्शन करता था, तब चम्पा का मन आशा से हरा हो जाता था, परन्तु जब रामनाथ को अधीरता और क्रोध का दौरा आता था, तब चम्पा का दिल बैठ जाता था। वह सरला के दुःख से दुःखी होती थी, फिर भी सरला को तो यही उपदेश देती थी—"बेटी, वह जैसा भी है, तेरा पति है। और फिर वह तुझे प्यार भी तो बहुत करता है।"

सरला बेचारी अपने धर्म और अपने कुल की मर्यादा का ध्यान करके सब कुछ सह लेती थी। रामनाथ उससे प्रेम करता है, वह यह जानती थी, परन्तु जब वह प्रेम-अधीर तूफान बनकर प्रगट होता था, तब वह कांप जाती थी। कभी-कभी तो उस समय रामनाथ के अपमानजनक व्यवहार से विक्षुब्ध होकर वह सोचने लगती थी कि धरती माता फट जाय तो मैं उसमें समा जाऊं। इस समय तूफान उमड़ा हुआ था, जिसके सामने सिर झुकाकर सरला बह चली। वह नहाई, कपड़े बदले, और हाथ में खद्दर का झोला लेकर आंगन में खड़ी होगई। रामनाथ लीची के पेड़ के नीचे कुर्सी पर बैठा उस दिन का अखबार पढ़ रहा था। सरला को तैयार देखकर वह मुस्कराता हुआ खड़ा हो गया, और बोला—

"वाह, आज तो तुम बिल्कुल लीडर मालूम हो रही हो—क्या

ठिकाना जो आज की मीटिंग में तुम सूबा कमेटी की प्रधान ही बना दी जाओ।"

सरला का दिल बहुत दुःखी था। वह त्रिन्नो के जन्म-दिन को छोड़कर जा रही थी, यह सोचकर वह अन्दर ही अंदर रो रही थी, परन्तु कहीं पतिदेव फिर न बरस पड़ें, इस डर से मौन खड़ी रही।

रामनाथ इस मौन पर भी अधीर हो उठा। आगे बढ़कर झोले को झटका देकर बोला—

"खड़े-खड़े मातम क्या मना रही हो। चलो, मीटिंग में देर हो रही है।"

आगे-आगे रामनाथ और पीछे-पीछे सरला, व्यथित चम्पा और त्रस्त वीणा को घर में छोड़कर कांग्रेस की मीटिंग के लिए चल पड़े।

[४]

रामनाथ और सरला जब कांग्रेस के कार्यालय में पहुंचे, तब कार्य आरम्भ होने में अभी थोड़ी देर थी। इन लोगों के वहाँ पहुंचने पर सभा में चहल-पहल होगई। रामनाथ के भक्त आवभगत के लिए उठ खड़े हुए और 'तिवारीजी आगये' 'वन्देमातरम् तिवारी जी' 'नमस्ते बहिन जी' के नारों से भवन गूँज उठा। बलधारीसिंह और उनके साथी सहम से गये।

रामनाथ सभा में न बैठकर अलग कमरे में चला गया, जहाँ उसके स्वयंसेवक साथी इकट्ठे हो गये। चुनाव के सम्बन्ध में देर तक मशविरा होता रहा। चिन्ता की यह बात थी कि अपनी सम्मतियों के अधिक होते हुए भी यह खतरा था कि किसी न किसी अच्छे पद पर बलधारीसिंह का चुनाव हो जायगा, जो रामनाथ और उसके संगियों को सर्वथा अप्रिय था। बहुत सोच-विचार के बाद निश्चय किया गया कि कांग्रेस कमेटी के प्रधान पद के लिए सरला का नाम पेश किया जाय। सरला को जहां रामनाथ के व्यक्तित्व की पूरी सहायता प्राप्त थी, वहाँ

स्वयं अपने सौम्य स्वभाव और परोपकारी व्यवहार के कारण उसकी लोकप्रियता रामनाथ से भी बढ़ी-चढ़ी थी। रामनाथ की उग्रता से कभी-कभी उसके साथी भी घबरा उठते थे, परन्तु सरला की शान्ति और शिष्टता अटूट थी। वह सभाओं में जब कभी बोलती थी, तब श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध-सा कर देती थी। उसका भाषण बहुत मार्मिक और भावुकतापूर्ण होता था। यह निश्चय था कि सरला का नाम पेश होने पर बलधारीसिंह प्रधान पद के लिए या तो खड़ा ही नहीं होगा, होगा भी तो हार जायगा। तब आल-इण्डिया की सदस्यता के लिए रामनाथ और बलधारीसिंह की बराबर की टक्कर रहेगी। रामनाथ-दल को निश्चय था कि बलधारीसिंह उस टक्कर में चकनाचूर हो जायगा।

सभा का कार्य आरम्भ हुआ। समाप्त होने वाले वर्ष के मन्त्री की हैसियत से बलधारीसिंह ने गत वर्ष का कार्य-विवरण सुनाया। रामनाथ-दल ने कार्य विवरण पर ही गोलाबारी आरम्भ कर दी। मन्त्री को पग-पग पर रोका जाने लगा। भांति-भांति के प्रश्न उठाये गये और उन पर व्यंग-पूर्ण तालियां बजाई गईं। इस किस्से के लम्बा हो जाने पर जब बलधारीसिंह ने क्षोभ प्रकट किया तो रामनाथ ने एक जोरदार लम्बा व्याख्यान शांति और अहिंसा के सम्बन्ध में दिया, जिसमें मन्त्री महोदय को शांत रहने का उपदेश दिया गया था।

रिपोर्ट समाप्त हुई—ज्यों त्यों करके। अब नया चुनाव आरम्भ हुआ। वर्तमान वयोवृद्ध सभापति को बलधारीसिंह ने समझा दिया था कि आगामी वर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण और सम्भवतः भीषण रहेगा, इस कारण किसी युवक व्यक्ति को कमेटी का प्रधान बनाना आवश्यक होगा। वयोवृद्ध सभापति इशारे को समझ गये। राजनीतिज्ञों के सत्संग से वह नीति की भाषा को समझने लगे थे। उन्होंने अपने प्रारम्भिक भाषण में गत वर्ष के सफल कार्य पर सदस्यों को बधाई दी, अपनी प्रधानता में सहायक होने के लिए धन्यवाद दिया और अन्त में प्रस्ताव कर दिया

कि 'आगामी वर्ष जाति के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होगा, शायद स्वराज्य की अन्तिम लड़ाई करनी पड़े, इस कारण मैं उचित समझता हूँ कि आप सर्व-सम्मति से वर्तमान मन्त्री श्री बलधारीसिंह को कमेटी का प्रधान बनायें। आप योग्य भी हैं और समर्थ भी। मैं सभापति पद से उनका नाम इस आशा के साथ पेश करता हूँ कि आप बिना किसी विरोध के सर्वसम्मति से उसे स्वीकार करें।'

प्रस्ताव करके सभापति महोदय बैठ गये और आशा करने लगे कि उनकी आशा पूरी होगी, परन्तु उन्हें निराश होना पड़ा। एक स्वयं-सेवक सदस्य ने खड़े होकर प्रस्ताव कर दिया कि 'कमेटी के सभापति-पद के लिए मैं बहिन सरलादेवी का नाम पेश करता हूँ। वह योग्य भी हैं और समर्थ भी। साथ ही वह अजातशत्रु हैं। सारे प्रान्त में उन का कोई विरोधी नहीं। मेरी सम्मति में उन्हीं को आगामी वर्ष के लिए सभाध्यक्षा चुना जाय।'

इस प्रस्ताव से बलधारीसिंह बड़ी दुविधा में पड़ गया। वह जानता था कि रामनाथ आल-इण्डिया का सदस्य बनना चाहेगा, इस कारण उसने अपने लिए प्रधान पद चुन लिया था; परन्तु सरला का नाम आ जाने से उसका प्रधान बनना असम्भव हो गया। सरला स्त्री थी, उसका सभी लोग मान करते थे और फिर रामनाथ का सारा दल उसका समर्थन कर रहा था। जब बलधारीसिंह ने देखा कि वह बड़े संकट में पड़ गया है, तो उसने उद्धार का यही उपाय समझा कि परिस्थिति के सामने सिर झुका दे। उसने खड़े होकर सरला की जी खोलकर प्रशंसा की। प्रशंसा में इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि बहिन सरलादेवी का स्वभाव बहुत शान्त है और वह किसी से द्वेष नहीं करतीं। भाषण के अन्त में बलधारीसिंह ने सरला के पक्ष में अपना नाम वापिस ले लिया। इस प्रकार सर्वसम्मति से तालियों की गड़गड़ाहट में सरलादेवी कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षा चुनी गईं।

इस चुनाव से जिस व्यक्ति को सब से अधिक प्रसन्नता होनी चाहिये थी, वह रामनाथ था, परन्तु बात ऐसी नहीं हुई। जहां रामनाथ को बलधारीसिंह की पराजय से अपार हर्ष हुआ, वहाँ दो चीजों से बहुत दुःख हुआ। एक तो यह कि बलधारीसिंह ने सरला की जितनी बार प्रशंसा की उतनी बार ही रामनाथ को ऐसा भान हुआ, मानो व्यंग्य द्वारा उसकी निन्दा की गई हो। उसका अनुमान निर्मूल भी नहीं था। बलधारीसिंह ने अपनी कानूनी पढ़ाई से पूरा उपयोग लेकर भाषा की रचना ऐसे ढंग से की थी कि सरला के शांत स्वभाव और अजातशत्रुता के विषय में कहा गया प्रत्येक शब्द रामनाथ के उग्र-स्वभाव और कलह-प्रियता पर छींटा समझा जाय। रामनाथ के लिये दूसरी दुखदायी बात यह हुई कि सरला के सर्वसम्मत चुनाव का असाधारण उत्साह से स्वागत किया गया। प्रगट में तो रामनाथ ने भी चुनाव पर हर्ष प्रकट किया और जोर की करतल-ध्वनि की, परन्तु दिल में कांटा-सा चुभता रहा और मुंह का स्वाद बिगड़-सा गया। सरला की जीत उसे अपनी जीत न होकर, सरला के व्यक्तित्व और बलधारीसिंह की धूर्तता की जीत प्रतीत हुई। उसका मन खिन्न-सा हो गया।

अन्य अधिकारियों तथा कार्यकारिणी के अधिकारियों के चुनाव में कोई विशेष हलचल नहीं हुई। थोड़े से परिवर्तन हुए, शेष चुनाव गत वर्ष की भांति ही हो गया। जब आल-इण्डिया के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अवसर आया तब अखाड़ा फिर गर्म हुआ। दो प्रतिनिधियों के चुनाव में विशेष संघर्ष था। रामनाथ के पक्षपाती बलधारीसिंह के नाम को गिराना चाहते थे, और बलधारीसिंह का दल रामनाथ को नीचा दिखाना चाहता था। वोट लगभग बराबर के तुले हुए थे। एक दिक्कत की बात यह हुई कि प्रधान पद का चुनाव हो जाने पर इस समय का सभापतित्व भी सरला को ही करना पड़ा। इससे रामनाथ का एक वोट कम हो गया। नाम उपस्थित होने के समय

भारतीय सभाओं में जो लम्बा वादविवाद और गुलगपाड़ा हुआ करता है, उसमें भी रामनाथ-दल को कुछ हानि उठानी पड़ी। कारण यह कि सरला का भावुक हृदय यह नहीं चाहता था कि उससे कोई पक्षपात हो जाय, इस कारण वह बलधारीसिंह के पक्षपातियों को कुछ अधिक छूट दे रही थी और रामनाथ-दल पर कड़ा नियन्त्रण कर रही थी। अन्त में राय ली गई, तो नई उलझन पड़ गई। दोनों उम्मेदवारों के लिए बराबर-बराबर वोट आगये, मानो चुनाव में गांठ पड़ गई।

अब क्या हो? गांठ कैसे खुले? विधान में इस संकट का एक यही उपाय है कि सभापति अपना मत पासंग के रूप में डाल कर एक पक्ष को भारी बना दे। सरला के सामने बड़ा भारी धर्म-संकट उपस्थित हो गया। वह क्या करे? रामनाथ उसका पति है और बलधारीसिंह ने उसके पक्ष में प्रधान-पद के चुनाव के समय अपना नाम वापिस लिया है। इसके अतिरिक्त सरला यह भी अनुभव कर रही थी कि दोनों प्रमुख पदों का एक ही घर में चला जाना और वह भी उसकी सम्मति से, औचित्य से गिरा हुआ माना जायगा। उसने अपने मन ही मन में कुछ देर तक किङ्कर्तव्यता पर विचार किया। उसकी दृष्टि में एक ओर प्रेम था, दूसरी ओर कर्तव्य। व्यक्तियों या व्यक्तियों की योग्यता पर भी उसका विशेष ध्यान नहीं गया। उसने स्त्री-हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार औचित्य का अनुभव किया कि उसे सार्वजनिक कार्य में अपने पति का पक्षपात नहीं करना चाहिए और बलधारीसिंह के पक्ष में सम्मति दे दी। सभा-भवन फिर दूसरी बार साधुवाद की करतलध्वनि से गूँज उठा। बलधारीसिंह के पक्षपातियों ने 'महात्मा गांधी की जय' के साथ-साथ 'बहिन सरला देवी की जय' के नारे भी लगाये गये। वह करतल-ध्वनि बेचारे रामनाथ के हृदय पर वज्र की तरह पड़ी। वह ऊपर से मुस्कराता दिखाई दिया, परन्तु उसके हृदय में अपमानजन्य रोष का दावानल धधक रहा था।

[५]

कमेटी की बैठक समाप्त होने पर जब रामनाथ और सरला घर की ओर चले तो दोनों ही एक दूसरे से खिंचे हुए थे। कुछ दूर तक तो दोनों चुपचाप चलते रहे, फिर रामनाथ ने कहा—

'तुम्हें बधाई है। तुम कमेटी की प्रेजीडेण्ट चुनी गई हो।'

सरला ने उत्तर दिया—

'बधाई तो आपको है। आपने ही मुझे प्रधान बना दिया। मैं तो चाहती भी नहीं थी।'

रामनाथ ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में खोखली मुस्कराहट के साथ कहा—

'मैंने तुम्हें प्रधान बनाया? प्रधान तो तुम्हें बलधारीसिंह ने बनाया, जिसके पक्ष में राय देकर तुमने उसके प्रति कृतज्ञता भी प्रकट कर दी। कलियुग के सतीधर्म का तुमने खूब पालन किया।'

सरला के सिर पर मानों वज्र गिरा। वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि उसके प्रधान चुने जाने और पूरक सम्मति देने का ऐसा कटु परिणाम होगा और उसके सतीत्व पर भी संदेह किया जायगा। वह दुःख से कांपते स्वर से बोली—

'मैंने तो यह समझ कर बलधारी.......'

बस, सरला इतना ही बोल सकी। रामनाथ ने अत्यन्त तिरस्कार से चिंघाड़ते हुए उसे रोक दिया—

'बस रहने दो इस सफाई को। खसम को मार के सती होना इसी को कहते हैं। मैंने सब कुछ अपनी आंखों से देखा और कानों से सुना। मैं धोखे में नहीं आसकता। बेवकूफ बनने वाले और होते हैं।'

उस समय वे दोनों बाजार में से गुजर रहे थे। आस-पास के लोगों ने जब चिल्लाहट सुनी तो उधर देखने लगे। उस समय सरला मारे लज्जा के पानी-पानी हो गई। मन में आया कि धरती फट जाय

तो उसमें समा जाऊँ। ये लोग क्या कहेंगे। सोचेंगे, यह बहुत ही कुलटा स्त्री है। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे, जिन्हें वह रुमाल से पोंछकर चुपचाप चलते जाने की चेष्टा करने लगी। सरला के मौन से और भी अधिक विक्षुब्ध होकर रामनाथ बड़बड़ाता गया।

'अब आँसू बहाकर तिरिया-चरित्र दिखाने से क्या लाभ ? मैं समझ गया कि अब तुम्हारा जो कुछ है, बलधारी ही है। वह वकील भी तो है ? और उसका अपना मकान भी है। मैं ठहरा गरीब। जमींदार की बेटी, भला गरीब से क्या संतुष्ट रह सकती थी.......'

अभी न जाने रामनाथ की वाणी डाकगाड़ी की तरह बराबर चलती ही जाती, जब तक घर का जङ्क्शन स्टेशन न आ जाता, या बीच में रुकती, पर बाजार में, चौक में उनके एक दोस्त मिल गये, जो चुनाव का परिणाम जानने के लिए उतावले हो रहे थे। वे देखते ही रामनाथ के कन्धे पर बाँह डालते हुए बोले—'कहो तिवारी भय्या, इन्तिख़ाब में क्या हुआ ?'

रामनाथ ने सिद्धहस्त सूत्रधारकी भांति एकदम चेहरा और मोहरा बदलते हुए उत्तर दिया—

'खूब हुआ दोस्त, उस बलधरिया को खूब मात दी। कमेटी का प्रधान बनना चाहता था—उसे चारों खाने चित किया गया। कमेटी की प्रधान सरला चुनी गई हैं और वह भी सर्वसम्मति से।'

रामनाथ के दोस्त ने झुककर फ़र्शी सलाम देते हुए सरला को मुबारिकबाद दी—'बहिन मेरी ओर से मुबारिकबाद मंजूर फरमाइये। इस गद्दी के लायक आप ही थीं। सारा बिहार आपकी लियाकत का क़ायल है।'

सरला ने लज्जित-सी होते हुए कहा—

'भाईजी, यह तो आप लोगों की कृपा है कि मुझे प्रधान बना दिया। मैं क्या योग्यता रखती हूँ। मैंने तिवारीजी की आज्ञा का

पालन किया है। मैं तो प्रधान बनकर घबरा रही हूँ। समझ में नहीं आता कि इस बोझ को कैसे उठा सकूँगी?'

दोस्त ने दिलासा दिया—घबराने की क्या बात है, बहिन, सब कुछ कर लोगी। बोझ-ओझ सब यह तिवारी भय्या उठा लेगा, तुम तो काम करती जाना।

सरला ने साभिप्राय आँखों से रामनाथ की ओर देखा। वह जानना चाहती थी कि उसके मन का क्या भाव है? रामनाथ ने बड़े उत्साह से उत्तर दिया—

'अरे सरला, इसमें घबराने की क्या बात है? तुम चिन्ता क्यों करती हो? तुम्हें डर किसका है?'

सरला ने सरलता से उत्तर दिया। वह रामनाथ के चेहरे के भाव और भाषण से सन्तुष्ट हुई थी—

'डर तो किसी का नहीं, पर ये लोग जो आपसे द्वेष रखते हैं, इनसे घबराती हूँ।'

इस पर छाती तानकर रामनाथ बोला—'अरे भाई, तुम भी अजीब भीरू प्राणी हो। ये लोग तुम्हारा क्या बिगाड़ सकते हैं? यदि यह तुम्हारी ओर आंख भी उठायेंगे तो उनकी आंखें फोड़ दूंगा। यह जानते नहीं कि इनका तिवारीजी से वास्ता पड़ा है।'

सरला, रामनाथ के मुँह की ओर एकटक देखने लगी। वह आश्चर्यचकित होकर सोच रही थी कि इनकी अन्तरात्मा की आवाज कौनसी है? वह जो अब सुन रही हूँ, या वह जो पांच मिनट पहले सुनाई दे रही थी।'

दोस्त के मिलने से यह लाभ हुआ कि बदली उड़ गई और दोनों जने विशुद्ध आकाश में घर के द्वार पर जा पहुँचे।

[६]

बदली तो उड़ गई, परन्तु वायु-मण्डल पर अपना असर

गई। रामनाथ के हृदय पर एक धब्बा-सा पड़ गया, जो साफ न हो सका। रामनाथ तत्काल की प्रतिक्रियाओं पर चलने वाला व्यक्ति था। किसी विषय पर गहरा या देर तक विचार करना; या अन्तर्दृष्टि होकर देखना उसके लिए सम्भव नहीं था। उस पर प्रत्येक घटना की प्रतिक्रिया तुरन्त और उग्र होती थी। कभी-कभी तो वह प्रतिक्रिया क्षणिक होती थी, परन्तु कभी-कभी विशेषतः जब उसके आत्मसम्मान को चोट लगे, तब वह अपना प्रभाव छोड़ जाती थी। चुनाव की घटना ने रामनाथ के हृदय को गहरा आघात पहुंचाया था। वह चुनाव में परास्त हो गया और सरला चुनी गई—यह बात उसके दिल में कील की तरह चुभ गई—चुनाव से पहले उसका क्रोध बलधारीसिंह पर था, चुनाव के पश्चात् उसका निशाना सरला बन गई। ऊपर से शान्त हो जाने पर भी उसके अन्दर से यही आवाज उठती रही कि इस अपमान, असफलता के लिए सरला ही जिम्मेवार है। बेचारी सरला का इसमें क्या दोष था? इस प्रश्न पर गम्भीरता से रामनाथ ने विचार नहीं किया, क्योंकि गम्भीरता से विचार करना उसकी प्रकृति में नहीं था। देर तक या अधिक सोचने वालों को वह 'सुस्त' 'पत्थर' 'कपटी' आदि विशेषणों से याद किया करता था।

ऊपर से घर की दिनचर्या पहले की भांति चलने लगी। घर में रामनाथ का काम था दिन चढ़े उठना, उठ कर ताजा अखबार लेकर लीची के पेड़ के नीचे कुर्सी पर बैठ जाना, अखबार पढ़ते जाना और बीच बीच में घर में होने वाली घटनाओं पर जोरदार टिप्पणियां करते जाना। सरला प्रातःकाल से ही घर के काम-काज में लग जाती थी। जब प्रातःकाल की चाय तैयार हो जाती, और सूचना मिलती कि चाय तैयार है, तो रामनाथ उठ कर टट्टी जाता और फिर हाथ-मुंह धोकर चाय लेता। चाय ली और दोस्तों से मिलने के लिये बाहर चल दिये। वह समय दोस्तों से मिलने का भी था और राजनीतिक कन्वेंसिंग का भी। दोस्त भी उसी समय बनते थे और वोटर भी।

जब इस दौरे से रामनाथ लौटकर आता था, तो सरला भोजन तैयार कर चुकी होती थी। यदि उचित समझा, तो स्नान करके अन्यथा वैसे ही भोजन से निवृत्त होकर और कपड़े बदल कर रामनाथ दफ्तर चला जाता था और सरला घर के कपड़े धोने में लग जाती। वीणा स्कूल चली जाती थी, तब घर के कामों से निवृत्त होकर और नहा धोकर सरला भोजन करती थी।

सायंकाल को रामनाथ के लौटने का कोई नियम नहीं था। दफ्तर तो नाम-मात्र का ही था, उसका दिन शहर में लोगों से मिलने-जुलने और कांग्रेस के कामों में ही गुजरता था। शाम को यदि किसी दोस्त के घर जा बैठे, या कोई सार्वजनिक-कार्य हुआ तो रात हो जाती थी और रामनाथ दिया बले पश्चात् ही घर पहुंचता था। इधर सरला शाम के समय चाय की नियम-पूर्वक तैयारी कर लेती थी। समय पर रामनाथ आगया तो चाय हो गई, नहीं आया तो पड़ी रही। वह रामनाथ के आये बिना चाय नहीं पीती थी। जब रामनाथ घर आकर देखता कि चाय पड़ी पड़ी ठण्डी हो गई है, तो सरला पर बहुत बिगड़ता था और कहता था कि अरे भाई, तुम्हारी मनहूसियत से तो मैं परेशान हो गया हूँ, मेरे लिए ठहरने की क्या जरूरत है। तुम समय पर चाय ले लिया करो। खाने-पीने की चीजों का नाश करने से क्या लाभ?

रोज-रोज ऐसी झाड़ खाने से तंग आकर एक दिन सरला ने पति की आज्ञा का पालन कर लिया। चाय तैयार करके वीणा को पिला दी, और स्वयं भी पी ली। कोई आध घण्टे बाद रामनाथ लौट कर आया। सरला ने झटपट पानी गर्म करके ताजा चाय तैयार की और रामनाथ के सामने रख दी। रामनाथ ने नित्य की तरह कहा—'तुम भी आओ।' सरला ने उत्तर दिया 'आज मैंने आपकी आज्ञा पालन करके चाय ले ली है। आप पीजिये।' बस, इतना सुनना था कि रामनाथ का पारा १०८ डिग्री पर पहुँच गया। उसने पहला काम तो यह किया कि एक

जोर की ठोकर मेज पर लगाई, जो चाय के सब साजो-सामान के साथ लुढ़कती-पुढ़कती दूर जा पड़ी। प्याले और तश्तरी टूट फूट गये, शेष नीचे बिखर गये। यह प्रारम्भिक प्रक्रिया पूरी करके रामनाथ उठ खड़ा हुआ और निम्नलिखित सम्मति इतने ऊंचे स्वर से प्रदान की कि सड़क पर जाने वाले लोग भी भली प्रकार सुन लें—

'कम्बख्त कहीं की। अपनी जूठी चाय मुझे पिलाती है। फिर मुझ से कहती है, मैं तो सती हूँ। अरे सतियें इस तरह की हुआ करती हैं। कांग्रेस कमेटी की प्रेसीडेंट क्या बनी है, दिमाग ही खराब हो गया है। अब तेरा घर में दिल नहीं, कहीं और ही है।। तूने मेरा जीवन जहर से भर दिया है'—

अभी रामनाथ का धाराप्रवाह चल ही रहा था कि बाहिर से आते हुए तीन चार देहाती सज्जन दिखाई दिये, जिन्होंने दरवाजे से ही हाथ जोड़ कर ऊंचे स्वर से 'वन्देमातरम्, तिवारीजी' का नारा लगाया। नारे से रामनाथ का दिमाग ठिकाने आ गया और वह शान्त होकर बोला—

'अरे सरला, उठाओ भई इन चीजों को। क्या कहें, ऐसी ठोकर लग गई कि यह प्यारा प्यारा टी सेट बरबाद हो गया। देखो, ये पं० लक्ष्मण पाण्डे देहात से आये हैं। इनके लिये चाय तैयार करो। चार आदमियों के लिये। कुछ नमकीन हो तो वह भी ले आओ। तैयार न हो तो ताजा पकौड़ी बना लाओ। भाई, ये हमारे बहुत मेहरबान हैं।'

सरला आगन्तुकों को देखकर एकदम वहां से चली गई थी और गुसलखाने में जाकर आंसू पोंछ रही थी। रामनाथ की आवाज सुनकर मुंह धोया, पोंछा और सावधान होकर होठों पर यत्न-संचित मुस्कराहट लिये हुए बाहिर आई और आगन्तुकों को नमस्कार करके टूटी हुई पिर्च प्यालियों को इकट्ठा करने लगी।

[७]

लगभग आधे घण्टे में पुरतकल्लुफ चाय तैयार होगई। इस समय वीणा भी स्कूल से आगई थी। उसने भी जीजी का हाथ बंटाया। ताजा पकौड़िया तैयार की गईं; कुछ फल पड़े थे, वह काटकर तश्तरियों में रख दिये गये, वीणा भाग कर गई और दूकान से कुछ मिठाई ले आई। चाय तो थी ही। बड़े कमरे में दो मेजों पर मेजपोश डाल कर सब सामान सजा दिया गया, तब सरला ने पेड़ के नीचे जाकर, हाथ जोड़ कर कहा—

'चलिये, चाय तैयार है।'

रामनाथ का पारा उतर चुका था। प्रसन्न होकर बोला—'चलो भाई, चाय पियें। देखें, हमारी प्रेसीडेण्ट साहिबा ने कैसी चाय तैयार की है।'

सब लोग अन्दर आकर कुर्सियों पर बैठ गये, तो पाण्डेजी ने कहा—'बहिनजी, आप भी तो आइये।'

सरला रसोई में चली गई थी। वहीं से उत्तर दिया—

'आप पीजिये, मैं परोसूंगी।'

इस पर रामनाथ ने ऊंचे स्वर से कहा—

'सरला, आ आओ। परोसने का काम बिन्नो कर लेगी। सब लोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। भाई, ये लोग अपनी प्रधाना से पहिले चाय कैसे पी सकते हैं ?

यह कहकर रामनाथ ठहाका मारकर हंसा।

सरला रसोई से उठकर उन लोगों के पास आकर खड़ी हो गई और कहा 'आप लोग चाय पीजिये। मुझे भी अपने में शामिल ही समझिये।'

इस पर अभ्यागत लोग कुछ कहते लगे तो रामनाथ ने दखल दिया—

'आपकी इस आदत को मैं पसन्द नहीं करता। जब वह हम लोगों के साथ चाय पीना पसन्द नहीं करतीं तो आप लोग आग्रह क्यों करते हैं। भाई, प्रेसीडेण्ट साहिबा मेम्बरों के साथ कुर्सी पर कैसे बैठ सकती हैं।'

सरला बेचारी इस तीर से आहत हो गई, परन्तु मेहमानों के सामने क्या कहे। बेचारी आंसुओं को थामकर एक कुर्सी पर बैठ गई और वीणा को भी अपने पास बुलाकर आधी कुर्सी पर बिठा लिया। बैठ तो गई, पर कुछ खा-पी न सकी। थोड़ी देर बैठकर यह कहती हुई उठ गई—'ओह, मैं पानी के गिलास रखना भूल ही गई। आप लोग जारी रखिये, मैं अभी आती हूँ।'

इधर बात-चीत का सिलसिला चल रहा था। कभी कहीं, तो कभी कहीं। सब दुनिया भर के विषयों की चर्चा होते-होते अन्त में कांग्रेस कमेटी के चुनाव की बात छिड़ी तो गांव के एक सज्जन ने कहा—

'पाण्डेजी, तिवारीजी को उस दिन की बात सुनाओ न, जो बलधारीबाबू से हुई थी।'

पाण्डे ने उत्तर दिया—'जाने भी दो उसे, वह क्या कहने की बात है?

'क्या बात है?' रामनाथ ने उत्सुकता से पूछा।

'अजी कुछ भी नहीं। वह तो गलसण्डा आदमी है। जो मुंह में आया बक दिया। हम उस बात को मुंह से नहीं निकाल सकते।' पाण्डे ने उत्तर दिया।

रामनाथ की उत्सुकता और बढ़ी। उसने पाण्डे का हाथ पकड़कर आग्रहपूर्वक कहा—'देखो पाण्डे, यदि तुमने वह बात मुझे न बताई तो मेरी तुम्हारी जीवन-भर के लिये लड़ाई हो जायगी। इतना ही नहीं, शायद मुझे भूख-हड़ताल भी कर देनी पड़े। याद रखो ब्रह्महत्या का पाप तुम्हें लगेगा।'

पाण्डे घबरा गया। बेचारा दोस्ती टूटने की धमकी से उतना नहीं डरा, जितना ब्रह्महत्या के पाप से। रामनाथ के घुटने पकड़ कर बोला—

'यह क्या कहा तिवारीजी। ऐसा मत करना भय्या। मैं तो बिल्कुल मर जाऊंगा।'

'तो सुनाओ सारी बात। बलधारीसिंह ने क्या कहा था? सच-सच कहना—मेरे सिर की कसम खाकर।' रामनाथ ने पाण्डे के हाथ को झटका देकर कहा।

पाण्डे ने सुनाया—'तो सुनो, चुनाव के तीसरे दिन हम लोग बलधारीबाबू के घर गये थे। वहाँ जब बहिनजी के चुनाव की चर्चा चली और हमने चुनाव पर सन्तोष प्रगट किया तो बलधारीबाबू ने कहा कि 'अजी इसमें सन्तोष की क्या बात है। सरला जी में प्रधान बनने की योग्यता तो अणुमात्र भी नहीं, वह तो केवल तिवारी का मोहरा है, मोहरा।' रामनाथ का ज्वालामुखी भड़क उठा। ऊंचे स्वर से बोला—

'उस बलधरिया की यह हिमाकत कि सरला को नालायक कहे, जिसके जूते साफ करने की लियाकत भी उसमें नहीं है। उसने मुझे समझा क्या है? क्या मैं सरला का अपमान चुपचाप सह लूंगा। मैं तो उसका सिर फोड़ दूंगा और उस बदतमीज को जहन्नुम पहुँचा दूंगा। मैं अभी जाकर देखता हूँ, उसमें कितनी लियाकत है।'

यह कहता हुआ रामनाथ खड़ा हो गया, आस्तीन चढ़ालीं और यह कहते हुए कमरे से बाहिर निकल गया कि तुम लोग यहीं बैठो, मैं अभी उस बदतमीज की बत्तीसी निकालकर आता हूँ।

सरला रामनाथ की चिंघाड़ सुनकर रसोई में से भागी आई और मेहमान कुर्सियां छोड़कर बाहिर निकल आये और चाहा कि रामनाथ को पकड़ लें, पर वह क्षण-भर में घर के बड़े दरवाजे से निकल कर दूर तक जा चुका था। सरला के पांव कांप रहे थे, वह दरवाजे का सहारा

लेकर खड़ी हो गई और जिस रास्ते से रामनाथ गया था, उस ओर ताकती रह गई। चारों मेहमान अपने-अपने थैले संभालकर तेज गति से उधर ही को चल दिये, जिधर रामनाथ गया था।

[८]

सरला कुछ देर तक तो किङ्कर्तव्य-विमूढ़-सी होकर किवाड़ से लगी खड़ी रही, परन्तु शीघ्र ही उसके मन में यह विचार उठा कि उसका पति उसके ही आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अपने को खतरे में डाल रहा है, तो वह विचलित हो गयी और झटपट अन्दर जा और कमरे का ताला लगाकर वीणा से यह कहती हुई बाहर हो गई कि 'बिन्नो बहिन, तू घबराना मत। रसोई में जाकर देखभाल करती रहना। सब्जी जल न जाय। आटा भी गूँथ रखना। मैं अभी आती हूँ।'

सरला ने रामनाथ के अन्तिम वाक्य सुन लिए थे। उसने अनुमान लगाया कि वह बलधारीसिंह की तलाश में ही गया है। सरला अपने पति की उग्र और अद्भुत तबियत को जानती थी। वह जेठ के अन्तरिक्ष की सी थी। कब सघन वातावरण हो जाय और कब तमतमाती लू चलने लगे, इसका कोई ठिकाना नहीं था। उग्र दशा में रामनाथ क्या कर बैठे, यह समझना भी कठिन ही था। यद्यपि आज तक उसने कभी किसी पर शारीरिक बल का प्रयोग नहीं किया था, न कभी किसी को मारा-पीटा और न गुत्थमगुत्था ही हुआ, परन्तु उसके शब्दों में और चेहरे पर इतनी जबर्दस्त हिंसा आ जाती थी कि मारपीट की आशंका सौ फीसदी हो जाती थी। यह आकस्मिक सौभाग्य था या यह भी रामनाथ के स्वभाव का एक अंग ही था कि उसकी हिंसा केवल शब्दों तक परिमित रहती थी और कभी क्रिया तक नहीं आती थी। यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या थी। यह आश्चर्यजनक बात थी कि रामनाथ वास्तविक और क्रियात्मक हिंसा के अवसरों को बड़ी कुशलता से टाल जाता था, जिससे उन लोगों की आशंकायें सर्वथा निर्मूल सिद्ध होती थीं, जो उसके झगड़ालू स्वभाव के कारण सदा अनहोने परिणामों की सम्भावना किया करते थे।

यह तो हुई मनोवैज्ञानिक समस्या; परन्तु बेचारी पति-परायणा सती हिन्दू-स्त्री मनोवैज्ञानिक आश्वासन पर कैसे चैन से बैठ सकती थी। वह पति के अनिष्ट की आशंका से एकदम विचलित हो गई और इस वेग से बलधारीसिंह के घर की ओर चली, मानो अपने पति की रक्षा के लिए अक्षौहिणी सेना लेकर चली हो।

बलधारीसिंह का मकान सरला के मकान से काफी दूरी पर था। सरला तीव्र-गति से चलकर लगभग २० मिनिट में पहुंची। वहा पहुंचने पर नौकर ने सूचना दी कि 'घर पर इस समय कोई नहीं है। बाबू किसी मित्र के यहां चाय पर गये थे, अभी तक नहीं लौटे और मालकिन किसी काम से बाजार गई हैं, वे भी न जाने कब तक लौटेंगी।' उसने यह भी बतलाया कि तिवारीबाबू थोड़ी देर हुई यहाँ आये थे, ईश्वर जाने क्यों बहुत तेजी में थे। वह भी बाबू की बाबत पूछ कर चले गये। कहां गये, ये मुझसे नहीं कह गये।'

सरला की चिन्ता और भी बढ़ गई। अब तक वह समझती थी कि बलधारीसिंह के यहां पहुंचकर मामले को सुलझा देगी, परन्तु अब तो कुछ पता ही नहीं कि कौन कहाँ है? नौकर मित्र का नाम नहीं जानता, बलधारीसिंह की घरवाली घर में नहीं है कि कुछ सहायता मिल सके। सरला का जहाज दिग्दर्शक-यन्त्र के बिना मानों समुद्र के मध्य में लड़खड़ाता रह गया। वह द्वार के बाहर खड़ी होकर सोचने लगी कि क्या करे?

अभी वह किसी निश्चय पर नहीं पहुंची थी कि पीछे से किसी ने पुकारा, 'बहिनजी, वन्दे' सरला ने लौट कर देखा तो बलधारीसिंह का छोटा भाई रणवीरसिंह था। उसने हाथ जोड़ते हुए कहा—'बहिन जी, आप यहां क्यों खड़ी हैं, अन्दर चलकर बैठिये न।'

सरला ने उत्तर दिया—मैं तो आपके बड़े भाई (कुछ रुककर) तिवारीजी को देखने आई थी। वे यहां नहीं हैं, मैं घर जा रही हूँ।'

सरला के शब्दों में कुछ घबराहट झलकती थी। रणवीर उससे कुछ आश्चर्यित-सा हुआ, परन्तु आश्चर्य को प्रकट न करते हुए बोला—'भाईजी तो म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन साहिब के यहां चाय-पार्टी में गये थे, अब लौटते ही होंगे। तिवारीजी यहां आये या नहीं, यह मैं पूछकर बताता हूँ, आप अन्दर बैठिये।'

'मैंने पूछ लिया है, तिवारीजी यहां आकर चले गये हैं। मालूम नही कहां गये हैं। अब मैं जाती हूँ।'

यह कहकर सरला जाने लगी तो रणवीर ने आग्रह किया, 'बहिन जी यदि विशेष घबराहट की बात हो, तो मैं अभी भाईजी को बुला लाऊँ या आपके साथ चलूँ।'

सरला नहीं चाहती थी कि उसकी घबराहट या घबराहट के कारणों का कुछ आभास भी किसी दूसरे को मिले। यह उसे अपने कुल-गौरव से गिरी हुई बात प्रतीत होती थी। वह केवल इतना कह कर वहां से चल दी कि 'आपका धन्यवाद। कोई विशेष बात नहीं। मैं घर जा रही हूँ। तिवारीजी वहीं गये होंगे।'

सरला चली तो घर के रास्ते पर, परन्तु दूर तक पाँव उधर नहीं बढ़े। कुछ दूर जाकर रास्ता बदल दिया और म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन के बंगले की ओर चलने लगी। बंगले पर जाकर क्या करेगी, यह पूछे जाने पर कि 'कहिए क्या काम है?' क्या उत्तर देगी, यदि वहां रामनाथ न मिला तो फिर कहां जाना होगा, इस प्रकार के सब प्रश्न उसके मस्तिष्क में बरसाती नालों की तरह बड़े वेग से चक्कर काट रहे थे, परन्तु उसके निकलने का रास्ता बन्द था।

वह इसी अर्ध-निद्रा की दशा में चली जा रही थी कि सामने से बलधारीसिंह आता दिखाई दिया। उसने अकेली सरला को इस तरह तीव्र-गति से उधर आते हुए देखा तो बहुत आश्चर्यित हुआ; क्योंकि सरला शहर से अकेली बहुत कम जाती थी। सार्वजनिक अवसरों पर

रामनाथ और सरला प्रायः इकट्ठे ही जाया करते थे। लोगों को उनके इकट्ठा देखने की आदत-सी पड़ गई थी। बलधारीसिंह ने प्रश्नसूचक स्वर में कहा—

'बहिन सरलाजी, कहिए, किधर जा रही हैं? तिवारीजी कहाँ हैं?'

सरला पर से मानो पहाड़ का बोझ उतर गया। उसे तसल्ली हो गई कि अभी दोनों प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे से भिड़े नहीं। वह मुस्कराहट के साथ बोली—

'अच्छा, आप हैं? वन्दे। वे तो आप से ही मिलने आये थे। क्या यहाँ नहीं आये?'

'मुझ से मिलने? नहीं, यहाँ तो नहीं मिले? क्या काम था, कहिये।' बलधारीसिंह ने पूर्ण शिष्टाचार के साथ उत्तर दिया।

सरला उत्तर देने में कुछ सटपटा गई। क्या उत्तर दे? कुछ रुक कर बोली—

'काम का तो कुछ पता नहीं मुझे। शायद मेरा भ्रम ही हो, किसी दूसरी जगह गये हों। अच्छा तो मैं घर जाती हूँ।'

और चलने लगी, तो बलधारीसिंह ने उनके साथ चलते हुये कहा—

'तो चलिये मैं आपको घर पहुँचा आऊं। आप अकेली अंधेरे में कैसे जाएंगी? मेरी गाड़ी ऊधर सड़क पर खड़ी है, आपको पहुंचा भी दूंगा और तिवारीजी से भेंट भी करता आऊंगा। कई दिनों से मिलना नहीं हुआ।'

अब तो सरला बड़े चक्कर में पड़ी। बलधारीसिंह को क्या कह कर रोके? सरला का सरल दिमाग इस प्रकार का नहीं था कि झटपट कोई सुन्दर बहाना ढूंढकर बलधारीसिंह को टरका सकती। वह इतना ही कह सकी—

'नहीं, आपके कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं, मैं चली जाऊंगी।'

चतुर बलधारीसिंह ने सूंघ लिया था कि दाल में कुछ न कुछ काला अवश्य है। वह हंसते हुए बोला—

'वाह बहिनजी, यह आपने क्या कहा ? आपको घर तक ले जाने में कष्ट कैसा ? आप जैसी पूजनीया बहिन की सेवा तो भाइयों का धर्म है। चलिये, बैठिये गाड़ी पर।'

गाड़ी पास ही खड़ी थी। सरला गाड़ी में न बैठने का कोई बहाना तलाश न कर सकी और बैठ गई। बलधारीसिंह शिष्टाचार के नियमों का पालन करते हुए गाड़ी के कोचवान के पास जा बैठा। रास्ते में कोई कुछ नहीं बोला। सरला परिस्थिति से सर्वथा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई थी। घर जाकर क्या होगा ? यदि वे न मिले तो फिर कहाँ-कहाँ तलाश करूंगी ? यदि मिल गए तो क्या परिणाम होगा ? कहीं गाड़ियों की भयङ्कर भिड़न्त तो न हो जायगी ? इन्हीं सब प्रश्नों की तरङ्गों में गोते खाती हुई सरला घर की ओर जा रही थी। बलधारीसिंह ने भाँप लिया था कि सरला का मन बहुत घबराया हुआ है, ऐसी दशा में अधिक बातचीत न करना ही उचित समझकर वह रास्ते भर मौन रहा।

[६]

दोनों ने तिवारी-निवास के सामने पहुंचकर जो कुछ देखा, वह बिल्कुल ही असम्भावित था। सरला और बलधारीसिंह ने आश्चर्य से देखा था कि हरिकेन लालटेन हाथ में लिये रामनाथ आगे-आगे और बलधारीसिंह की पत्नी निर्मला देवी पीछे-पीछे मुख्य द्वार से निकल रहे हैं। घोड़ागाड़ी को देखकर वे दोनों रुक गये। जब उन दोनों ने गाड़ी की सवारियों को पहिचाना, तब वे भी अचम्भे से आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। चारों पर इस आकस्मिक मिलन की जो प्रतिक्रिया

हुई, वह भिन्न-भिन्न थी। सरला के सिर पर से मानों टगी हुई नंगी तलवार हट गई। रामनाथ को सुरक्षित देखकर और निर्मलादेवी को उपस्थित पाकर उसे बड़ा आश्वासन मिला। एकदम किसी कलह की आशंका दूर हो गई।

बलधारीसिंह को यह देखकर बहुत ही अधिक आश्चर्य हुआ कि उसकी पत्नी रामनाथ के पास कैसे और क्यों पहुँच गई? वह तो उसे घर पर छोड़कर गया था? रामनाथ और निर्मला सरला की तलाश में जाने को उद्यत थे, अतः सरला के स्वयं ही आ जाने से काफी उलझन दूर हो गई, इससे उन्हें सन्तुष्ट ही होना चाहिये था, पर वैसा नहीं हुआ। सरला को बलधारीसिंह के साथ देखकर रामनाथ की भंवें तन गईं और आखों में जैसे खून उतर आया। उधर निर्मला एकदम भयभीत हो गई। उसे यह अनुमान भी नहीं था कि वह रात के समय अपने घर से बाहिर किसी दूसरे व्यक्ति के साथ इस तरह पायी जायगी। बिहार का पर्दा मशहूर है। थोड़े से अपवादों को छोड़कर राष्ट्रीय-जागृति और समाज सुधार ने भी वहाँ के महिला-समाज को अभी बन्धन मुक्त नहीं किया था। बलधारीसिंह राजनीतिक कार्यकर्ता तो था, पर सुधारक नहीं था। निर्मलादेवी घर में चर्खा कातती थी, खद्दर पहिनती थी और कभी-कभी काग्रेस की सभाओं में व्याख्यान सुनने भी जाती थी, परन्तु वह झोला लटकाकर घूमने वाली लीडर-श्रेणी की स्त्री नहीं थी, दिन-भर घर के काम-काज में लगी रहती थी। आज अकस्मात् ऐसी नई और अद्‌भुत परिस्थिति में देखी जाकर वह सहम-सी गई। उसने एक बार बलधारीसिंह की ओर कातर-दृष्टि से देखा और फिर नीचे मुह करके उसके पीछे-पीछे तिवारी-निवास में प्रविष्ट होगई।

सरला अपने सन्तोष को प्रगट करने के लिये मुस्कराते हुए चेहरे के साथ रामनाथ की ओर बढ़ी, तो रामनाथ ने मुंह फेर लिया और लम्बे-लम्बे डग धरता हुआ घर के अन्दर चला गया। सरला बेचारी अप्रतिभ-सी होकर पहले तो दरवाजे पर ही खड़ी रह गई, फिर

'नहीं, आपके कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं, मैं चली जाऊंगी।'

चतुर बलधारीसिंह ने सूंघ लिया था कि दाल में कुछ न कुछ काला अवश्य है। वह हंसते हुए बोला—

'वाह बहिनजी, यह आपने क्या कहा? आपको घर तक ले जाने में कष्ट कैसा? आप जैसी पूजनीया बहिन की सेवा तो भाइयों का धर्म है। चलिये, बैठिये गाड़ी पर।'

गाड़ी पास ही खड़ी थी। सरला गाड़ी में न बैठने का कोई बहाना तलाश न कर सकी और बैठ गई। बलधारीसिंह शिष्टाचार के नियमों का पालन करते हुए गाड़ी के कोचवान के पास जा बैठा। रास्ते में कोई कुछ नहीं बोला। सरला परिस्थिति से सर्वथा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई थी। घर जाकर क्या होगा? यदि वे न मिले तो फिर कहाँ-कहाँ तलाश करूंगी? यदि मिल गए तो क्या परिणाम होगा? कहीं गाड़ियों की भयङ्कर भिड़न्त तो न हो जायगी? इन्हीं सब प्रश्नों की तरङ्गों में गोते खाती हुई सरला घर की ओर जा रही थी। बलधारीसिंह ने भाँप लिया था कि सरला का मन बहुत घबराया हुआ है, ऐसी दशा में अधिक बातचीत न करना ही उचित समझकर वह रास्ते भर मौन रहा।

[६]

दोनों ने तिवारी-निवास के सामने पहुंचकर जो कुछ देखा, वह बिल्कुल ही असम्भावित था। सरला और बलधारीसिंह ने आश्चर्य से देखा था कि हरिकेन लालटैन हाथ में लिये रामनाथ आगे-आगे और बलधारीसिंह की पत्नी निर्मला देवी पीछे-पीछे मुख्य द्वार से निकल रहे हैं। घोड़ागाड़ी को देखकर वे दोनों रुक गये। जब उन दोनों ने गाड़ी की सवारियों को पहिचाना, तब वे भी अचम्भे से आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। चारों पर इस आकस्मिक मिलन की जो प्रतिक्रिया

हुई, वह भिन्न-भिन्न थी। सरला के सिर पर से मानों टगी हुई नंगी तलवार हट गई। रामनाथ को सुरक्षित देखकर और निर्मलादेवी को उपस्थित पाकर उसे बड़ा आश्वासन मिला। एकदम किसी कलह की आशंका दूर हो गई।

बलधारीसिंह को यह देखकर बहुत ही अधिक आश्चर्य हुआ कि उसकी पत्नी रामनाथ के पास कैसे और क्यों पहुँच गई? वह तो उसे घर पर छोड़कर गया था? रामनाथ और निर्मला सरला की तलाश में जाने को उद्यत थे, अतः सरला के स्वयं ही आ जाने से काफी उलझन दूर हो गई, इससे उन्हें सन्तुष्ट ही होना चाहिये था, पर वैसा नहीं हुआ। सरला को बलधारीसिंह के साथ देखकर रामनाथ की भंवें तन गई और आखों में जैसे खून उतर आया। उधर निमला एकदम भय-भीत हो गई। उसे यह अनुमान भी नहीं था कि वह रात के समय अपने घर से बाहिर किसी दूसरे व्यक्ति के साथ इस तरह पायी जायगी। बिहार का पर्दा मशहूर है। थोड़े से अपवादों को छोड़कर राष्ट्रीय-जागृति और समाज सुधार ने भी वहाँ के महिला-समाज को अभी बन्धन मुक्त नहीं किया था। बलधारीसिंह राजनीतिक कार्यकर्ता तो था, पर सुधारक नहीं था। निर्मलादेवी घर में चर्खा कातती थी, खद्दर पहिनती थी और कभी-कभी कांग्रेस की सभाओं में व्याख्यान सुनने भी जाती थी, परन्तु वह झोला लटकाकर घूमने वाली लीडर-श्रेणी की स्त्री नहीं थी, दिन-भर घर के काम-काज में लगी रहती थी। आज अकस्मात् ऐसी नई और अद्भुत परिस्थिति में देखी जाकर वह सहम-सी गई। उसने एक बार बलधारीसिह की ओर कातर-दृष्टि से देखा और फिर नीचे मुह करके उसके पीछे-पीछे तिवारी-निवास में प्रविष्ट होगई।

सरला अपने सन्तोष को प्रगट करने के लिये मुस्कराते हुए चेहरे के साथ रामनाथ की ओर बढ़ी, तो रामनाथ ने मुंह फेर लिया और लम्बे-लम्बे डग धरता हुआ घर के अन्दर चला गया। सरला बेचारी अप्रतिभ-सी होकर पहले तो दरवाजे पर ही खड़ी रह गई, फिर

जब यह ध्यान आया कि घर में दो मेहमान आये हुए हैं, तो इच्छा शक्ति का पूरा बल लगाकर मन को संभाला और घर के अन्दर जाकर अभ्यागतों के बैठने के लिये कुर्सी आदि की व्यवस्था करने लगी। रामनाथ पहले तो पांव पटकता हुआ घर के अन्दर चला गया, फिर टोपी चारपाई पर फेंककर बाहिर निकल आया और कुशल सूत्रधार की भांति त्योरी बदलकर खिलखिला पड़ा और बलधारीसिंह से बोला—

'वाह भाई बलधारीसिंह, तुम भी अजीब बेढंगे आदमी हो। जब तुम्हें आनेरेबुल प्रेसीडेंट साहिबा के साथ गरीब की कुटिया में पधारना था, तो पहले सूचित तो कर दिया होता। इस गरीबखाने को सजाकर आप लोगों के स्वागत के योग्य बना दिया जाता। अब तो मैं बहुत दिक्कत में पड़ गया हूं। न बैठने का प्रबन्ध है और न खाने-पीने का। अकेला तिवारी; बेचारा क्या-क्या करे।'

'अरे तिवारीजी, क्या कहते हो? बेचारी सरलाजी तो तुम्हें शहर में खोजती फिरती थीं, मैं उन्हें यहाँ तक पहुंचाने चला आया हूँ और एक तुम हो कि व्यंग्य बाण कस रहे हो और भय्या, तुम ही क्या अकेले थे, श्रीमती निर्मलादेवीजी तो यहाँ विद्यमान थीं।' यह कहकर बलधारीसिंह ने व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से निर्मला की ओर देखा। रामनाथ ताली पीटकर हंसता हुआ बोला—

'अरे भाई, अगर बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। आज अचानक यह जो अदला-बदली होगई, कुछ बुरी तो नहीं हुई। चलो देवियों का परिवर्तन हो जाय। कुछ दिनों तक तुम हमारी भार्या को यहां छोड़ दो और सरला वहाँ रह आय। क्यों भाभी, तुम्हारी क्या सम्मति है?'

यह कह रामनाथ फिर ठहाका मारकर हंसने लगा। निर्मला बेचारी लज्जा के मारे मानो जमीन में गड़ी जा रही थी।

[१०]

रामनाथ से निर्मला का मिलाप इस तरह हो गया कि जब जोश

में भरा हुआ रामनाथ घर से तीव्रता के साथ बलधारीसिंह के घर पहुंचा तो मालूम हुआ कि बलधारीसिंह कहीं बाहिर गया है। घर पर यह पता नहीं चल सका कि कहाँ गया है। निर्मला बाजार गई थी। इस तरह पहले आक्रमण में निराश होकर बलधारीसिंह को कोसता और मन ही मन धमकियां देता हुआ वहाँ से बाजार की ओर कुछ ही कदम गया होगा कि सामने से निर्मला आती हुई दिखाई दी। रामनाथ ने उसके 'तिवारीजी, वन्देमातरम्' का उत्तर भी न देते हुए विक्षुब्ध स्वर में पूछा—'कहाँ गये हैं बलधारी बाबू।' 'एक मित्र के यहाँ पार्टी में गये हैं। कहिये, क्या काम है?'—निर्मला ने स्वाभाविक स्वर से उत्तर दिया। रामनाथ बोला—'कौन से मित्र के यहाँ गया है वह बदतमीज? जल्दी से बताओ, मुझे उससे हिसाब चुकाना है।' निर्मलादेवी का ध्यान अब तिवारी की क्रोधित दशा की ओर गया। वह बेचारी पति के अनिष्ट की आशंका से घबराकर बोली—

'तिवारीजी मुझ से कहिये न, क्या बात है? आप किस कारण रुष्ट हैं। चलिये घर पर, वे आते ही होंगे।'

तिवारीजी इस समय हवाई घोड़े पर सवार थे, घर जाने को कैसे राजी होते? ऊंचे स्वर से बोले—

'उसके घर नहीं जाऊंगा। निर्मला जी, उसने सरला के लिए अपमानयुक्त बातें कही हैं। वह अपने को समझता क्या है। वकील होगा तो अपने घर का। मैं तो उसे एक चमार के बराबर भी नहीं समझता। मैंने उसके दांत न तोड़ दिये तो तिवारी कहलाना छोड़ दूंगा।'

निर्मला ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा—

'तिवारीजी, आप बड़े हैं, हम लोगों के लीडर, मैं आपको क्या समझाऊं, पर आप देखेंगे कि किसी ने आपको बिल्कुल झूठी बात बतलाई है। वह तो सदा सरलादेवीजी का बड़े आदर-सत्कार से

नाम लेते हैं और उनकी योग्यता की प्रशंसा करते हैं। आपको भी बड़े भाई मानते हैं।'

रामनाथ कुछ ठण्डा हुआ। अपनी प्रशंसा—और फिर एक स्त्री के मुख से—दोनों से प्रभावित होकर नर्म होकर बोला—

'निर्मलाजी, मुझे जिस आदमी ने रिपोर्ट दी है, वह विश्वास-पात्र है। फिर यदि मैं आपकी बात को मान भी लूं, तो बलधारी बाबू से पूछताछ करना तो जरूरी है। आप मुझे इतना बतला दें कि वह किस मित्र के यहाँ गये हैं?'

निर्मला इतना ही तो बतलाना नहीं चाहती थी। उसकी मंशा थी कि इस समय वे दोनों न मिलें। बोली—

'तिवारीजी, विश्वास कीजिये कि मुझे पता नहीं। पता होता तो बतला देती। पर एक बात तो सुनिये। आप वहाँ आज उनसे जो कुछ कहेंगे, मुझ से ही कह दीजिये। सरलादेवीजी को मैं अपनी बड़ी और पूज्य बहिन मानती हूँ। यदि उन्होंने कोई ऐसी बात कही भी हो, जिससे बहिनजी का दिल दुःखा हो, तो मैं बहिनजी के पांव पकड़कर क्षमा मांग लूंगी। चलिये अपने घर, मैं आपके साथ चलती हूँ। मुझे आशा है, बहिनजी मुझे अवश्य माफ कर देंगी।'

रामनाथ पर निर्मला का अजीब असर हो रहा था। वह असर उसके मधुर व्यक्तित्व का था या पति के प्रति वफादारी का था यह कहना कठिन है, परन्तु रामनाथ इन थोड़े से मिएटों में परास्त-सा हो गया था। निर्मला द्वारा घर जाने का प्रस्ताव सुनकर सन्तुष्ट स्वर से बोला—

'निर्मलाजी, आप अद्भुत व्यक्ति हैं। आपने तो कुछ ही बातों में मुझे हरा दिया। अच्छा तो चलिये, मेरे घर। सरला से बातचीत कर लीजिये। उसे भी मालूम हो जायगा कि आप कैसी अच्छी हैं।'

निर्मला रामनाथ के इन शब्दों से कुछ घबरा सी गई, परन्तु

फिर यह सोचकर कि पति पर से संकट टालने का यही उत्तम उपाय है, रामनाथ के साथ उसके घर चली गई।

वहां पहुंच कर देखा कि सरला नहीं है। अब तो निर्मला बहुत घबराई। रात के समय अकेले लौटना भी कठिन था। इधर रामनाथ का पारा एकदम ११० डिग्री पर पहुँच गया। जब वीणा ने बतलाया कि 'जीजी आपको ढूंढने गई हैं' तो रामनाथ चिल्ला उठा—

'मैं तो जानता ही हूं कि सरला का मेरे ऊपर जरा-सा भी विश्वास नहीं है। क्या मैं दूध-पीता बच्चा हूं कि रास्ता भूल जाऊंगा, या कोई बदमाश हूं कि शराबखाने में चला जाऊंगा। मैं जरा देर के लिए घर से बाहिर गया कि मेरे पीछे या तो हरकारे दौड़ने लगते हैं, या देवीजी खुद तहकीकात के लिए निकल पड़ती हैं। यह तो न हुआ कि घर पर रह कर रसोई तैयार करती, मेरे पीछे पुलिस के इन्स्पेक्टर की तरह चल दी। भाई मैं तो ऐसी देवीजी से भरपाया।'

इसी तरह बक-झक कर अन्त में तिवारी ने निर्मला के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि वह साथ जाकर निर्मला को उसके घर तक पहुँचा आवे। घर जाने के लिए दरवाजे से निकले ही थे कि सामने बलधारीसिंह की घोड़ा-गाड़ी दिखाई दे गई।

रामनाथ ने बलधारीसिंह से फक्कड़पन की जो बात कही, उससे निर्मला एकदम लज्जित होकर मानो कपड़ों में सिमट गई। सरला रसोई से उनकी बातें सुन रही थी, वहां उठकर आई और रामनाथ से बोली—

'आप यह कैसी बातें कर रहे हैं। क्या स्त्रियों से ऐसी हंसी मजाक करना भले मनुष्यों का काम है? बहिन निर्मलाजी, आप इनकी ऐसी बातों का बुरा न मानें। इनका मतलब कुछ नहीं होता, मजाक करने की इनकी आदत है।'

निर्मला बेचारी तो कुछ न बोली, पर बलधारीसिंह चुप न रह सका। उसने सरला से कहा—

'सरला बहिन, आप चिन्ता न करें। हम लोग तिवारीजी को खूब जानते हैं। हम इनकी बातों का बुरा नहीं मानते।' रामनाथ बीच ही में बोल उठा—

'वाह जनाब, बात को टालने का यह वकीली ढंग आपने खूब निकाला। यों आप नहीं बच सकते। सीधे कहिये! मेरा प्रस्ताव आप को मन्जूर है या नहीं?' बलधारीसिंह हंस कर बोला—

'भाई, इस प्रस्ताव के मानने से तुम घाटे में रहोगे। सरलाजी, जैसी पत्नी खुशकिस्मती से मिलती हैं।'

'तो भाई कुछ दिन तक तुम ही खुशकिस्मत बन लो। हम निर्मला भाभी की बनाई रोटी से ही गुजारा कर लेंगे।' रामनाथ ने जोर देकर कहा।

बेचारी सरला मारे लज्जा के जमीन में गड़ी जारही थी। कुल के संस्कारों और शिक्षा के प्रभाव से वह रामनाथ की इन बातों को शिष्टता से और औचित्य से सर्वथा गिरा हुआ समझ रही थी। अब तक केवल इसलिए चुप थी कि टोकने से रामनाथ अधिक न भड़क उठे। पर अब उसे सीमा का अतिक्रमण करते देखकर वह न रुक सकी और बोली—

'आप क्या कहे जा रहे हैं? आप देखते नहीं कि निर्मला बहिन इन बातों से कितनी दुःखित हो रही हैं।'

रामनाथ की आग पर मानो तेल पड़ा। चटककर बोला—

'और तुम खुशी के मारे फूली नहीं समाती हो, क्योंकि तुम्हें मुझ से छुटकारा मिलेगा। बहुत अच्छा प्रधाना जी, आपकी राजी में मेरी राजी। आप इच्छानुसार जिसके साथ चाहें, इस घर से तशरीफ ले जा सकती हैं। मैं स्वयं आप से थक चुका हूं।'

ये शब्द रामनाथ ने इतने उग्र और तिरस्कार भाव से कहे कि सरला बर्दाश्त न कर सकी और बहते हुए आंसुओं को कपड़े से रोकने की चेष्टा करती हुई घर के अन्दर चली गई। वीणा भी, जो डरकर सहमी सी खड़ी थी, अपनी जीजी के पीछे कमरे में चली गई।

बात बढ़ती देखकर बलधारीसिंह और निर्मला चुपचाप उठकर गाड़ी में जा बैठे और घर की ओर रवाना होगये। मैदान में अकेला रामनाथ विजयी सांड की तरह अकड़ता और फुंकारता हुआ खड़ा रह गया।

छठा परिच्छेद

बलिदान

[१]

उस संध्याकाल की घटना ने सरला के मन और शरीर दोनों को सर्वथा विचलित कर दिया। कई वर्षों से रामनाथ के ज्वालामुखी स्वभाव के कारण सरला बहुत परेशान थी। वह कुल के संस्कारों से, शिक्षा से और निजी स्वभाव की मृदुता के कारण इतनी कठोरता को सहन करने की शक्ति नहीं रखती थी। रामनाथ मनमौजी आदमी था। जब चाहता, अतिशय प्यार करने लगता और जब चाहता रौंद कर रख देता। वह सरला को अपना समझता था—और अपने की व्याख्या वह करता था कि जब चाहे हँसा दे, जब चाहे रुला दे। सरला सब कुछ सहकर भी शील को नहीं छोड़ सकती थी। यह उसकी प्रकृति का हिस्सा था। आँखों में आंसू आते थे, तो उन्हें पलकों में दबाने का प्रयत्न करती थी। रोने को जी चाहता था, तो मुँह में कपड़ा देकर

केवल सिसकती थी और भाभी से मन की कोई बात कहने को जी चाहता था, तो किसी काम का बहाना करके उठ जाती थी कि कहीं सहसा मुँह से कुछ निकल न जाय। विवाह सेपहले का रामनाथ विवाह के सायकाल ही मानो मर गया था और नया रामनाथ उत्पन्न हो गया था। नया रामनाथ असली रामनाथ था, उसमें विनय और शालीनता का अत्यन्ताभाव था। वह सरला को अपनी मौज पर ऐसे नचाना चाहता था, जैसे कलन्दर बन्दर को नचाता है। सरला मनुष्योचित विशेपताओं से युक्त एक हिन्दू नारी थी। वह सह सकती थी, पर नाच नहीं सकती थी। अब तक सरला सहती रही, पर उस संध्या की घटना ने उसकी सहिष्णुता का बांध तोड़ दिया। वह सिरहाने पर मुँह रखकर रात भर सिसक सिसक कर रोई। कटोरों आंसू बहाये और सैकड़ों बार अपने मृत पिता और भाभी को स्मरण किया।

बेचारी वीणा ने अपनी जीजी का घर में आकर बिस्तर पर पड़ते देखा था। वह भी पीछे ही पीछे जाकर चुपके से जीजी के पास बैठ गई और देर तक गले में बांह डालकर चुप कराने का प्रयत्न करती रही। बाल-बुद्धि ने चुप कराने के जितने उपाय सुझाये, उसने उन सभी से काम लिया। 'मेरी जीजी, रो मत' कहकर दिलासा देती, तो कभी 'मैं जीजाजी से बहुत लड़ूंगी। वह मेरी जीजी को बुरी-बुरी बातें कह कर रुलाते रहते हैं। जीजी तू रो मत, मैं जीजाजी से कभी नहीं बोलूँगी' आदि वाक्यों द्वारा जीजाजी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करती थी। पहले कभी ऐसा काण्ड होता तो सरला थोड़ी देर में ठंडी हो जाती और वीणा को छाती से लगाकर सो जाती थी, परन्तु आज वह वैसा न कर सकी। सारा दुःख और अपमान से भरा दृश्य, उसके हृदय की पूरी गहराईमें कील की तरह घुस गया था; जिससे वह रात-भर तड़पती रही। वीणा को आधी रात के बाद नींद आगई, पर सरला प्रातःकाल तक आंखें बन्द न कर सकी।

और रामनाथ ?

जब सरला आंसू पोंछती हुई कमरे में चली गई और बलधारी-सिंह और निर्मला गाड़ी पर जा बैठे, तो कुछ क्षण तक रामनाथ जहां का तहां खड़ा रहा। बलधारीसिंह के साथ सरला को घोड़ागाड़ी से उतरता देखकर उसके असंस्कृत मन में ईर्ष्या की जो भयंकर ज्वाला उत्पन्न हुई थी, वह अब तक शान्त नहीं हुई थी। मनुष्य का हृदय यदि विवेक से अलग होकर चले तो वह बहुत मोटी सचाई को भी नहीं देख सकता। जिस समय रामनाथ ने सरला को बलधारीसिंह के साथ गाड़ी से उतरते देखा, उसी समय यदि वह एक बार अपनी ओर देख लेता तो उसे मालूम हो जाता कि वह भी अकेला नहीं है। निर्मला उसके पास खड़ी है। यदि निर्मला का उसके पास खड़ा होना आक-स्मिक परिस्थिति का परिणाम था, तो बलधारीसिंह का सरला के साथ गाड़ी से उतरना भी आकस्मिक परिस्थिति का फल था। पर वह तो तब दीखता यदि विचार की आंखें खुली होतीं। अत्यन्त भावुक और अनघढ़ व्यक्तियों की भांति रामनाथ की यह विशेषता थी कि ज्यों ही उसके हृदय की गति तीव्र होती, त्योंही उसकी बुद्धि के कपाट बन्द हो जाते थे। वह बहुत जल्दी विक्षुब्ध हो जाता था और विक्षोभ की दशा में विवेक से सर्वथा शून्य हो जाता था, उसकी भावनाओं का वह उफान या तो समय पाकर शान्त होता था अथवा किसी नई घटना की ठोकर खाकर बेठ जाता था और रक्त का प्रवाह दूसरी दिशा में होने लगता था। सरला और बलधारीसिंह के एकदम मैदान छोड़ जाने से जो अकेलापन हो गया, उसने रामनाथ को एक हल्की-सी ठोकर लगाई। उसने अनुभव किया कि कोई ऐसी बात होगई, जो नहीं होनी चाहिए थी। मानों बिगड़ी को बनाने के लिए उसने ऊँचे स्वर से आवाज दी—सरला······

पर सरला नहीं बोली। उसने सुना भी नहीं। वह फूट-फूट कर

रो रही थी। उस का आज दो बाहिर के व्यक्तियों के सामने जो अपमान हुआ, वह उसे सहन नहीं कर सकी। क्या उसकी शालीनता और पति-परायणता का यही इनाम था? क्या रामनाथ का किया हुआ व्यवहार उसके योग्य था? क्या इस खुले अपमान के पीछे वह बलधारीसिंह और निर्मला के सामने कभी खुले मुंह जा सकेगी? इन और ऐसे ही अन्य विचारों ने उसके धैर्य के बांध को तोड़ दिया था। वह सुनने या सुन कर उत्तर देने की शक्ति खोकर केवल रो रही थी।

कुछ क्षण तक रामनाथ ने उत्तर की प्रतीक्षा की। जब कोई उत्तर न मिला तो चिल्लाता और पांव पटकता हुआ साईकिल उठा कर घर से बाहिर चला गया और ऊंचे स्वर से कहता गया, 'बिन्नो, अपनी जीजी से कह देना कि अब मैं इस घर में नहीं आऊंगा। अगर उसकी शान इतनी बढ़ गई है कि मुझसे बोल भी नहीं सकती तो मैं भी इतना जलील नहीं कि इस घर में पड़ा रहूँ और इससे बेइज्जत होता रहूँ।'

यह तो मालूम नहीं कि रामनाथ की यह युद्ध-घोषणा सरला या बिन्नो ने सुनी या नहीं, हां अड़ौस-पड़ौस के रहने वालों ने अवश्य सुनी और सुन कर एक दूसरे से कहा—'बेचारी सरला—यह बकरी भेड़िये के योग्य तो न थी।'

[२]

सरला रात-भर नहीं सोई। रोती रही, सिसकती रही। जब प्रातःकाल सूर्य के प्रकाश ने उसकी आंखों का स्पर्श किया, तब सरला का माथा दुख रहा था और शरीर मानो थकान से चूर हो रहा था। वह उठने लगी तो अनुभव किया कि हल्का-सा बुखार है। दोपहर होते-होते जोर का ज्वर चढ़ गया, जिससे सरला को लाचार होकर चारपाई पकड़नी पड़ी। पहले तो उसने यत्न किया कि घर के काम-काज में दिल लगाकर मन और शरीर की थकान को भुला दे, परन्तु बुखार का आवेग हो जाने पर वह अशक्त हो गई। बेचारी वीणा अकेली ही कभी घर के

काम को भागती थी, तो कभी जीजी के पास बैठकर परिचर्या करती थी। कभी पानी पिलाती तो कभी पैर दबाती थी। मेहरी आई तो देखा कि रसोई ठण्डी पड़ी है। हाल-चाल पूछकर और सुबह दूधिये के यहां से आया हुआ दूध गर्म करके चली गई। वीणा ने भी उस दिन थोड़ा-सा दूध ही पिया और वह भी सरला के बहुत आग्रह करने पर। इसी तरह दोपहर गुजर गई और सन्ध्याकाल आ गया, परन्तु रामनाथ घर लौटकर न आया।

सरला को जब होश आती तब वह वीणा से पूछती—"बिन्नो तेरे जीजा आये या नहीं ?"

बिन्नो बेचारी सीधा इन्कार करके जीजी के दिल को ठोकर नहीं पहुँचाना चाहती थी। "देखती हूं जीजी" कहकर बाहिर जाती और बड़े दरवाजे से लौटकर कहती—

"अभी तो नहीं आये, पर जीजी घबराओ नहीं, आते होंगे।"

"वे अब नहीं आयेंगे। मैंने ही बिगड़कर उन्हें नाराज कर दिया बिन्नो। मैं बहुत बुरी हूं।"

इतना कहकर सरला रोने लगती और फिर देर तक बेहोशी की हालत में रहती।

जब सांझ होगई और रामनाथ न आया तो वीणा का जी बहुत घबराने लगा। छोटी-सी बच्ची ने दिन बड़े धैर्य से व्यतीत किया, परन्तु इधर सरला की बुरी हालत और उधर अकेलापन, वीणा व्याकुल हो गई और जब थोड़ी देर के लिये सरला की आंख लगी तो भागकर साथ वाले मकान में गई और रमा की मां से बोली—

"चाचीजी, जीजी बहुत बीमार हैं। मैं घर में अकेली हूँ। तुम चल के देख लो न" यह कहते कहते वीणा की आंखों में आंसू आगये।

रमा की मां अधेड़ स्त्री थी। शरीर भारी था और चलने-फिरने में आलसी थी, परन्तु दिल की अच्छी थी। वीणा के सिर पर हाथ

फेरती हुई बोली "अरी तू रो क्यों रही है। घबराया नहीं करते बेटा। क्या तिवारीजी घर में नहीं है?"

"वे घर में नहीं हैं। रात से नहीं हैं। कल रात चले गये थे, फिर नहीं आये। जीजी इसी दुःख में बीमार हो गईं। बेहोश पड़ी हैं। मैं क्या करूं? तुम चलो चाची।" यह कहती हुई वीणा फूट-फूटकर रोने लगी।

अब तो रमा की मां से भी न रुका गया और वह चारपाई से उठकर चलने को उद्यत हो गयी। इतने में रमा के पिता बा० कुशल-पालसिंह भी बाजार से लौट आये। बा० कुशलपाल जाति के कायस्थ थे और सरकारी दफ्तर में हैडक्लर्क थे। रमा की मां बोली —

"देख लो अपने तिवारीजी की माया। सरलाजी बीमार पड़ी हैं और वह शहर के दौरे पर हैं। क्या इसी का नाम देश-सेवा है?"

रमा के मां बाप में सरला और तिवारीजी के विषय को लेकर प्रायः बहस हुआ करती थी। कुशलपाल रामनाथ का प्रशंसक था— जैसे दासता के उन दिनों में सरकारी नौकर दफ्तरों में बैठकर गिरफ्तारी के वारंट तैयार करते और घरों में जाकर प्रायः कांग्रेस के नेताओं की प्रशंसा किया करते थे। रमा की मां सरला और रामनाथ के गृहस्थ का हाल-चाल जानती थी। रामनाथ जरा जरा सी बात में बिगड़कर सरला पर जो कठोरताएं बरसाता था, रमा की मां उनसे परिचित थी। रामनाथ की दहाड़ प्रायः पड़ौसियों के आंगन तक सुनाई दिया करती थी। रामनाथ की वर्तमान रुखाई को अपने पक्ष में एक और ताजा प्रमाण समझकर ही रमा की मां ने उपर्युक्त वाक्य कहे थे। कुशलपाल ने युक्ति की तलवार को उपहास की ढाल पर लेते हुए उत्तर दिया —

"माया किसकी है, यह कौन जाने। यदि माया-मृग हो सकता है तो क्या मायारोग नहीं हो सकता।"

रमा की मां इस उत्तर से तमककर बोली—

"यह बेचारी बुखार से बेहाल हो रही है और तुम्हें मजाक सूझ रहा है। तभी तो कहा है कि मर्दों के दिल नहीं होता।"

यह कहती हुई वह वीणा का हाथ पकड़े सरला के घर की ओर चल दी। कुशलपाल रामनाथ का मित्र था और सरला में भी आदर बुद्धि रखता था। वह भी पीछे-पीछे चला।

जाकर देखा तो दोनों सन्नाटे में रह गये। सरला को बहुत तेज बुखार चढ़ा हुआ था। शरीर अंगारे की तरह तप रहा था। सरसाम की दशा थी। आधे होश में आंखें खोले पड़ी थी। रमा की मां ने जब माथे पर हाथ रखा, तो सरला उसकी ओर देख कर बोली—

"आप आगये। अच्छा किया। मैं बुरी हूं आपको दुःख दिया।" यह कहते-कहते सरला की आंखों से आंसू बहने लगे और जीभ अकड़ गई। वह बहुत शक्ति लगाकर बोली—"पानी—दो घूंट पानी।"

वीणा भागकर गिलास में पानी ले आई। रमा की मां चारपाई के पास कुर्सी पर बैठ गई और सरला के मुंह में पानी डालती हुई अपने पति की ओर देख कर बोली—

"देख लो अपनी आंखों से, खड़े क्यों हो—जाकर उस देशभक्त को बुलाकर लाओ न? आकर देख तो ले, उनके घर की लक्ष्मी किस तरह तड़प रही है।"

कुशलपाल ने देर न लगाई। जाकर कपड़े बदले और कांग्रेस कमेटी के दफ्तर की ओर चल दिया। वहाँ जाकर पूछताछ करने पर समाचार मिला कि रामनाथ रात में वहाँ सोया था। सुबह उठकर कहीं चला गया है। अब कुशलपाल बहुत चक्कर में पड़ा कि कहाँ जाये। वहाँ जो स्वयंसेवक विद्यमान थे, उनसे पूछताछ करने पर भी कोई विशेष बात मालूम नहीं हो सकी। केवल इतना ही पता चला कि वह जिला काँग्रेस कमेटी के सदस्य मुस्तफाखाँ से मिलने की बातें कर रहा था। कुशलपाल ने उसी सूत्र का अनुगमन किया और मुस्तफाखाँ के

घर पहुँचा। वहाँ पता चला कि रामनाथ वहाँ प्रातःकाल के समय पहुंचा था। दोपहर तक वहीं रहा। मुस्तफाखाँ छोटा-मोटा जमींदार था। जमीन की कमाई पर गुजर होती थी। और किसी रोजगार की आवश्यकता नहीं समझता था, और जैसे कि प्रायः ऐसे व्यक्तियों की दशा होती है, समय काटने के लिए ताश का सहारा लेता था। घर के बाहर जो बैठक थी उसमें दिन भर ताश पिटती थी। ताश से जो समय बचता था, वह काँग्रेस के काम में लगता था।

रामनाथ मुस्तफा के यहाँ प्रातःकाल ही पहुंच गया था। अभी वहाँ ताश नहीं जमी थी। मुस्तफा इतनी सुबह अकस्मात रामनाथ को घर आते देखकर आश्चर्यित हुआ। इससे पहले कि वह कुछ पूछता, रामनाथ ने घोषणा की—

'सुनो भाई मुस्तफा, आज मैं घर से रूठ कर आया हूं। अभी तक चाय भी नहीं ली। जल्दी चाय तैयार करवाओ मियाँ, मेरी ओर क्या ताक रहे हो।'

घर से रूठने की बात पर मुस्तफा कुछ पूछना चाहता था, परन्तु रामनाथ ने उसे मौका ही नहीं दिया। उसके होंठ हिलने से पहले दूसरी घोषणा की—

'बात पीछे करना बाबू, पहले चाय बनने का हुक्म दो। नहीं देते तो मैं अभी अन्दर जाकर भाभीजान से तुम्हारी शिकायत करता हूँ। फिर रोते फिरोगे कि शिकायत की।'

बेचारा मुस्तफा हुक्के की नली छोड़, 'हुजूर का जो हुक्म' कहता हुआ घर के अन्दर गया और चाय का आदेश देकर बाहर आगया।

तब तक रामनाथ थैला पलङ्ग पर रखकर आराम कुर्सी पर आसन जमा चुका था और हुक्के की नली होठों में लेकर कश लेने की तैयारी कर रहा था। मुस्तफा आकर पलङ्ग पर बैठ गया और बोला—

'क्या बात है, तिवारी, घर से रूठने की क्या वजह हुई? हमारी भाभी साहिबा तो फरिश्ता हैं। तुम्हारा ही कोई कसूर होगा?'

रामनाथ का खून अब तक बहुत ठण्डा हो चुका था। वह मन ही मन सोच रहा था कि घर से इस तरह निकल आना अच्छा नहीं हुआ। सुबह जब समय पर चाय न मिली, तब तो उसे सरला बहुत ही याद आई। दो-एक बार सोचा भी कि घर वापिस चला जाय पर अहङ्कार ने न जाने दिया। सोचने लगा कि घर जाऊंगा तो हार हो जायगी। सरला समझेगी कि आखिर झख मारकर आना पड़ा। फिर भी मन में यह विचार चक्कर काटने लगा था कि घर वापिस जाने का कोई रास्ता निकल आये तो अच्छा है। ऐसे विचारों से उसके हृदय की भूमि सुलह की बातचीत के लिए तैयार हो रही थी कि मुस्तफा का वाक्य उस पर ओले की तरह पड़ा। वह फरिश्ता है यानी मैं शैतान हूँ? यह थी मुस्तफा के कथन की प्रतिक्रिया, जो रामनाथ के मन पर हुई।

थोड़ी देर में चाय आ गई। फिर घण्टों तक ताश चली। दोपहर के समय खाना हुआ। इस बीच में जितनी बातचीत हुई उसका सारांश बतला देना ही पर्याप्त है। रामनाथ ने सरला की बदमिजाजी और बददिमागी का जी खोलकर बखान किया। मुस्तफा ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा कि औरतों की जात ही ऐसी है। देखने में फरिश्ता और अन्दर से शैतान—यही औरत जात की खासियत है।

खाना खाने के पश्चात् रामनाथ ने मुस्तफा से विदा ली और यह सोचे बिना ही कि किधर जायगा, बाजार की ओर चल पड़ा। कुछ दूर जाकर वह मुहल्ला आया, जिसमें बलधारीसिंह का मकान था। रामनाथ उसी मकान में घुस गया। मन में विचार आया कि इस समय बलधारीसिंह अदालत गया होगा, घर में निर्मला होगी, बेचारी बहुत ही मीठे और नम्र स्वभाव की नेक औरत है, चलो उससे मिलते चलें। रामनाथ की यही विशेषता थी कि उसके क्षणिक विचार और क्रिया में बहुत कम अन्तर था। वह वर्तमान में जीवित रहता था--भविष्य की

कम सोचता था। मन में विचार आया और रामनाथ बलधारीसिंह के मकान के अन्दर जा पहुंचा।

[३]

रामनाथ का अनुमान ठीक ही निकला। बलधारीसिंह अदालत गया था और बच्चे अभी स्कूल से नहीं लौटे थे। निर्मला अन्दर ही बैठक में एक कौच पर बैठी छोटी बच्ची उर्मिला से दिल बहला रही थी। उर्मिला को मेज पर बिठा रखा था और स्वयं कुर्सी पर बैठकर उससे कहला रही थी—"बापू, आजा। मेरा जी नहीं लगता। नहीं आओगे तो मैं रोऊंगी।" उर्मिला कह रही थी—"पापू आजा। मेला जी नईं लगता। नईं आयगा तो लोऊंगी।" रामनाथ ने बैठक में घुसते हुए अपने आने की सूचना दी—"भाभी मैं अंदर आ सकता हूँ।"

निर्मला यद्यपि बिल्कुल पुराने ढंग की पर्दानशीन स्त्री नहीं थी, तो भी ठेठ बिहारी स्त्री की भावना के अनुसार उसमें लज्जा और सकोच की मात्रा पर्याप्त थी। एकदम रामनाथ को अन्दर घुसते देखकर वह हड़बड़ा उठी और सिर का कपड़ा सम्भालती हुई बोली—

"अच्छा आप हैं तिवारीजी! वह तो अभी अदालत से नहीं लौटे।"

रामनाथ निर्मला के वाक्य के अन्तर्गत भाव की उपेक्षा करके एक कौच पर निःसंकोच भाव से बैठता हुआ बोला—

"यह तो मैं समझ ही गया निर्मलाजी कि वह घर पर नहीं हैं, अन्यथा, आप अकेली यहां कैसे बैठी होतीं! पर आप तो हैं; क्या उनके न होने पर यदि घर पर कोई ब्राह्मण आ जाय तो उसके चाय-पानी का प्रबन्ध नहीं होता।"

निर्मला काफी जटिल परिस्थिति में पड़ गई थी। इस तरह अकेले में रामनाथ के साथ बैठकर बातें करना और विशेषरूप से गत रात्रि की घटना के पीछे—उसे बहुत ही अखर रहा था। रामनाथ ने

चाय-पानी का प्रस्ताव करके उसे संकट से निकलने का रास्ता दिखा दिया। उर्मिला को गोद में लिया और रसोई की ओर जाती हुई बोली—

"ओह, मैं इतनी बात तो भूल गई थी कि आप हमारे पूज्य ब्राह्मण हैं। आप बाहिर की बैठक में बैठिये, मैं अभी चाय भेजती हूँ।"

रामनाथ वहाँ न बलधारीसिंह से मिलने आया था और न चाय पीने। वह तो केवल निर्मला से मिलने आया था। उसने कल से पहिले भी सार्वजनिक-सभाओं में निर्मला को कई बार देखा था; परन्तु कभी अपने सार्वजनिक-जीवन के विरोधी की पत्नी से अधिक कुछ नहीं समझा। कल के सान्निध्य से उसपर निर्मला के मधुर-व्यक्तित्व का अद्भुत असर हुआ। वह उधर बड़े वेग से आकृष्ट होगया। जब निर्मला ने रसोई की ओर जाने का निमित्त बना कर वहां से खिसकने की योजना बनाई, तो रामनाथ ने सहसा हार मानने से इन्कार कर दिया। उसने कौच पर से उठते हुए कहा—

"वाह भाभी, हमारे साथ चालाकी करती हो। घर में कई नौकर हैं। एक को आवाज देकर चाय बनाने को कह दो और तुम यहां बैठो। यह कहाँ की सभ्यता है कि अभ्यागत ब्राह्मण तो दीवारों को ताका करे और मालकिन चूल्हे से बातें करे।"

निर्मला फिर भी न रुकी। यह कहती हुई अन्दर चली गई कि "अभी आती हूँ तिवारीजी, जरा ठीक प्रबन्ध करा आऊं। तब तक बैठिये।"

निर्मला रसोई-घर में चली गई, तो रामनाथ को अपनी स्थिति भद्दी प्रतीत होने लगी। उसे हल्की-सी ठेस लगी। वह निर्मला से बातें करने आया है और वह उसके पास बैठना नहीं चाहती, न बात करना चाहती है। यह चीज उसे कुछ अटपटी-सी जंची और तब एकदम मन में विचार आया; जैसे अकस्मात बादलों में बिजली चमक उठती है कि जैसे मैं बैठक में अकेला रह गया हूं, उसी तरह सरला बेचारी भी बत

से घर में अकेली पड़ी होगी। यह विचार मन में आते ही वह उठ खड़ा हुआ और बैठक से बाहिर निकल आया। वहां उसे घर का एक नौकर दिखाई दिया। रामनाथ उसे यह कहता हुआ मकान से बाहिर हो गया कि 'अपनी मालकिन से कह देना कि आज तिवारीजी घर चले गये हैं, चाय पीने फिर कभी आयेंगे।'

रामनाथ दरवाजे से निकला तो सामने से कुशलपाल आता दिखाई दिया। कुशलपालसिंह देखते ही बोला—

"अरे तिवारीजी, तुमने तो गजब कर दिया। तुम यहाँ घूम रहे हो और बेचारी सरलाजी घर पर बुखार में भुन रही हैं। जब से तुम आये हो, चारपाई पर से नहीं उठीं। क्या उनके मरने पर ही घर आओगे ?"

रामनाथ के दिल पर गहरा आघात हुआ। वह सरला से रूठना या बिगड़ना तो सर्वथा उचित समझता था—उसे वह पुरुष का जन्म-सिद्ध अधिकार मानता था; परन्तु सरला न रहे, यह बात उसे सह्य नहीं थी। सरला में उसकी अपनावट थी। झगड़ना या चिल्लाना उसे अपनावट का ही एक अंग प्रतीत होता था। परन्तु जब सरला के घर से कहीं बाहिर जाने या न रहने की सम्भावना भी मन में आती थी, तो वह उद्विग्न हो जाता था। उसके मन में प्रश्न उठता था कि यदि सरला न रहेगी तो मैं किस पर बिगड़ूंगा, किससे रूठूंगा और किस पर नखरा करूंगा। उसकी आंतरिक-वासना, जिसका विवेक से कोई सम्बन्ध नहीं था, यह थी कि क्योंकि सरला मेरी है, मैं उससे बहुत प्रेम करता हूँ, इस कारण उसे सदा मेरे समीप और मेरे सामने रहना चाहिए। मेरी चिल्लाहट को प्रेम का आविष्कार और कठोर-व्यवहार को शिक्षा मानना चाहिये। सरला की उग्र बीमारी और मृत्यु की सम्भावना का समाचार सुनकर रामनाथ आमूलचूल विचलित होगया। अब उसे एक क्षण का विलम्ब भी सहन नहीं था। उसने सामने आई हुई सबसे पहली घोड़ा-

गाड़ी को पुकार कर बुलाया और किराया तय किये बिना ही सवार होकर घर की ओर हाँकने का आदेश दिया।

सरला का रोग बहुत गहराई तक चला गया था। वह केवल शारीरिक न रहकर मानसिक हो गया था। कई वर्षों के निरन्तर आघातों से उसके जो ज्ञानस्नायु निर्बल होरहे थे, वे अपमान की गहरी चोट खाकर विदीर्ण से हो गये। तीव्र ज्वर और उन्माद के चक्र में पड़ी हुई सरला लगभग एक मास तक चारपाई पकड़े रही।

इस मास में रामनाथ ने रोगी की चिकित्सा में कोई कसर नहीं उठा रखी। यह बात सभी दर्शकों को स्वीकार करनी पड़ी कि रामनाथ ने न रुपये की पर्वा की और न परिश्रम की। रात और दिन एक कर दिये। छोटे डाक्टर से लेकर सिविल सर्जन तक सभी को बुलाया और फीस दी। वह सरला को मृत्यु से बचाने के लिए पागल-सा हो गया था। खुशामद करना उसकी तबीयत के विरुद्ध था, पर सरला को बचाने के लिये उसने सिविल सर्जन के सामने झोली तक पसार दी थी। उस दिन सरला की तबियत बहुत खराब थी। ज्वर १०५ डिग्री से ऊपर चला गया था और सरसाम जोर पर था। सिविल सर्जन को बुलाया गया। उसने देखकर गम्भीरता से सिर हिलाते हुए कहा—"क्राइसिस है। आज रात तक गुजर जायगा। दवा मंगा लीजिये।" यह कहकर और नुस्खा लिखकर डाक्टर जाने लगा तो रामनाथ ने बरामदे में उसका रास्ता रोक लिया और तौलिये की झोली सामने फैलाकर कहा—'डा० साहिब, मैंने आज तक जिन्दगी-भर में किसी से कुछ नहीं मागा। आज सरला का जीवन मांगता हूं। इसे क्राइसिस से निकालकर जाइये। तब तक यहीं रहिये' उस समय रामनाथ की आखों में आँसू थे। अंग्रेज डाक्टर सहृदय था, बोला—"मि० तिवारी, इतने समय तक मेरा रुकना मुमकिन नहीं; क्योंकि मुझे अस्पताल में कई आपरेशन करने हैं; पर मैं वहां से निबटकर सीधा यहाँ आऊंगा और मिसेज तिवारी के पास

रहूँगा, जब तक वह खतरे में से न निकल जायं।" इस वायदे पर रामनाथ ने सिविल सर्जन को जाने दिया। सायंकाल के समय जब सिविल सर्जन आया तब उसकी मेम भी साथ थी।

अस्पताल पहुंच कर डाक्टर ने अपनी पत्नी को टेलीफून द्वारा सूचना दी कि आज मैं चाय पर न आ सकूंगा क्योंकि मुझे एक महिला मरीज को देखने जाना है, जिसकी हालत खतरनाक है। साथ ही डाक्टर ने रामनाथ की पल्ला फैलाने वाली बात भी सुना दी। मेम का स्त्री-हृदय उस वृत्तांत से द्रवित होगया। उसने अपने पति से कहा कि 'मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी और मिसेज तिवारी को खतरे से निकालने में तुम्हारा साथ दूंगी।'

सिविल सर्जन के आने तक रोग उतार पर जा चुका था और भय की रेखा दूर हो चुकी थी। डाक्टर अपने साथ दवा लाया था; उसके प्रयोग और उसकी पत्नी की सहानुभूतिपूर्ण परिचर्या ने चार-पाँच घन्टों में सरला को खतरे से सर्वथा बाहिर कर दिया।

बीमारी के तीसरे ही दिन वीणा ने चम्पा को एक कार्ड डाल दिया था, उसमें लिखा था—

'पूज्य भाभी, प्रणाम!

जीजी बहुत रोगी हैं। तुम्हें रात-दिन याद करती हैं। पत्र को तार समझकर आ जाओ। देर न करना।

तुम्हारी बिटिया
बिन्नो'

चम्पा ने पत्र को तार से भी अधिक आवश्यक समझा और दूसरे ही दिन आ पहुंची।

चिकित्सा और परिचर्या से सरला का रोग धीरे-धीरे क्षीण होने लगा, परन्तु प्रारम्भ में वह एकदम इतना बढ़ गया था कि सरला के सर्वथा नीरोग होने में एक मास लग गया। शारीरिक दृष्टि से रोग-मुक्त होते हुए भी चिकित्सा और परिचर्या के ये चार सप्ताह सरला के विवा-

हित-जीवन में सबसे सुखी सप्ताह थे। भाभी, जिसे वह संसार में सबसे अधिक प्यार करती थी और जिसकी मानसिक सन्तुष्टि के लिये इच्छा न रहते भी उसने रामनाथ से विवाह करना स्वीकार कर लिया था, उसके पास थी। वीणा उसके लिये छोटी बहिन भी थी और बच्चा भी। उसकी शांत और मौन सेवा सरला के मन को हरा देती थी। वीणा असाधारण रूप से भोली और समझदार लड़की थी। वह सरला की इच्छाओं को खूब समझती थी। यदि सरला चारपाई पर लेटी-लेटी अल्मारी की ओर देखती थी तो वीणा झट समझ जाती थी कि जीजी अल्मारी में रखे हुए थर्मामीटर को मंगाना चाहती है। झटपट उठती और थर्मामीटर धोकर हाथ में दे देती थी। यदि सरला की दृष्टि दरवाजे की ओर जाती तो वीणा भांप जाती थी कि जीजी भाभी को बुलाना चाहती है। वह भागकर जाती और भाभी को बुला लाती थी। इन दो सुखों के अतिरिक्त सरला को उन दिनों एक तीसरा सुख यह था कि रामनाथ का पारा नार्मल से ऊपर बहुत कम जाता था। कभी जाता भी तो चम्पा या वीणा के यह कहने पर शान्त हो जाता था कि बीमार के पास चिल्लाना अच्छा नहीं। यदि क्षोभ अधिक होता था तो रामनाथ वहां से उठकर चला जाता था—और बाहिर जाकर किसी कुर्सी को गिराकर या किताब को मेज पर जोर से पटककर रक्त के आवेग को ठण्डा कर लेता था। रोगी की परिचर्या में परिवार को रमा की माँ से भी समय-समय पर सहायता मिलती रही।

[४]

जिस दिन डाक्टर ने यह निर्णय दे दिया कि अब मिसेज तिवारी सर्वथा रोग-मुक्त हो गईं, उससे अगले प्रातःकाल चम्पा ने छोटा-मोटा उत्सव मना डाला। सरला को स्नान करने से पहले देवता का पूजन कराया। स्नान के पश्चात् बीमारी में पहने हुए सब कपड़े तथा बिस्तर गरीबों को दे दिये, पण्डित को बुलाकर यज्ञ कराया और

परिचितजनों तथा ब्राह्मणों को सहभोज कराया। पूजन और यज्ञ में रामनाथ शामिल नहीं हुआ क्योंकि वह धर्म को केवल ढोंग समझता था। बुलाये जाने पर उसने कहा — 'मैं क्या आऊंगा, मेरी राय में तो ऐसी फजूल चीजों में किसी को भी शामिल न होना चाहिए। परन्तु इस समय मैं कुछ नहीं कहूंगा, क्योंकि सरला की सेहत के लिए ईश्वर को थोड़ी-सी रिश्वत देने में कोई हर्ज नहीं। तुम लोग रिश्वत दे लो, मैं ठहरा गांधीजी का शिष्य, मैं ऐसे जुर्म में शामिल नहीं हो सकता।'

भोजनादि से निवृत्त होकर जब चम्पा और सरला आराम करने के लिए चारपाइयों पर लेटीं, तो चम्पा ने कहा —

'ले सरलो, यह कार्य तो पूर्ण हो गया। भगवान् ने मुझ अभागी पर दया करके तुझे नीरोग कर दिया। अब मुझे छुट्टी दे दे तो मैं बेलूर चली जाऊं। वहां जमींदारी का काम पीछे पड़ा जा रहा है।'

सरला भाभी के जाने की बात सुनकर कांप-सी गई। रामनाथ के साथ अकेला रहने का विचारमात्र आने से उसका हृदय धक-धक करने लगा। रामनाथ का वह भयंकर रूप उसकी आंखों के सामने नाचने लगा, जो उस रात देखा था, जब वह रामनाथ की तलाश में पटना के गली-कूचों में मारी-मारी फिरी थी। वह कांपते हुए स्वर से बोली —

'सच भाभी, तुम जाओगी?'

'हां सरलो, अब जाना ही पड़ेगा। काम है न' — चम्पा ने उत्तर दिया। 'क्या मुझे भी साथ ले चलोगी?' सरला ने साग्रह पूछा।

चम्पा ने कुछ सोचकर उत्तर दिया — 'अभी तू कमजोर है। सफर करने योग्य नहीं। कुछ दिन पीछे तिवारीजी के साथ आ जाना।'

'तब तो तुम भी कुछ देर ठहर जाओ, भाभी। जब मेरी सेहत सफर के योग्य हो, तब चली जाना। मै भी साथ चलूंगी। मै तुम्हारे पाव पड़ती हू; मुझे अकेली छोड़कर मत जाओ।' सरला का गला आसूओ से भर रहा था। चम्पा उसके करुणा भरे स्वर से प्रभावित और विचलित होकर चारपाई से लेटे से बैठी हो गई और सरला के मुंह की ओर बड़े ध्यान से देखती हुई बोली —

'यह क्या कह रही है तू बिटिया। पति के पास रहोगी तो अकेली कैसे हुई? तिवारीजी तो तुझे बहुत प्यार करते हैं न?'

सरला की आखो से आसुओ की धार बहने लगी। कुछ देर तक तो वह कुछ न बोल सकी, फिर रुक-रुककर कहने लगी —

'भाभी, इस विषय मे तुम मुझ से कुछ मत पूछो — पूछोगी तो मुझे ऐसी बाते याद करनी और कहनी पड़ेंगी जिन से मेरा दिल फट जायगा। इतना कहे देती हू कि यदि तुम मुझे छोड़ कर चली जाओगी तो फिर शायद जीवित न देखोगी।'

बस, इससे अधिक सरला न कह सकी। चम्पा भी इससे अधिक नही सुन सकती थी। सरला के इतने ही शब्दों से उसने अपनी प्यारी बेटी की अन्तर्वेदना का अनुमान लगा लिया था। बोली —

'बस रहने दे इन बातों को। सीधा कह कि चलना चाहती है, तो चली चल। तिवारीजी आयें तो उनसे पूछ ले।'

सरला ने प्रकम्पित स्वर में कहा —

'तुम्हीं पूछ लो भाभी। मुझे तो पूछते भी डर लगता है।'

'अच्छा मैं ही पूछ लूंगी। अब तू आराम कर ले।' सरला को शान्त करने के लिए चम्पा ने कहा और स्वयं भी चुपचाप लेट कर सरला की मानसिक-व्यथा पर विचार करने लगी। वह रामनाथ के तूफानी-स्वभाव से तो काफी परिचित हो चुकी थी परन्तु यह नहीं

जानती थी कि सरला के कोमल-हृदय पर उस तूफान ने इतनी गहरी और स्थिर चोटें पहुंचाई हैं। इस थोड़ी-सी बातचीत से सरला के दिल की जो तीव्र-वेदना प्रकट हुई, उससे चम्पा बहुत उद्विग्न होगई और तरह-तरह की चिंताओं के भंवर में पड़ गई।

जब अभ्यागत लोग विदा हो गये तो रामनाथ अन्दर आया। वह प्रसन्न था क्योंकि अभ्यागत लोगों ने उसकी भरपूर प्रशंसा की थी। सबने एक स्वर से कहा था कि 'यह तिवारीजी की मेहनत और सेवा का ही फल था कि सरलाबी ऐसी खराब बीमारी के चक्कर से निकल गईं।' 'अहम्' रामनाथ की प्रवृत्ति का केन्द्र-बिन्दु था। प्रशंसा से 'अहम्' की तृप्ति के कारण वह बहुत सन्तुष्ट था। दरवाजे में घुसते ही बोला —

'लाओ भाभी, ब्राह्मण की दक्षिणा। ब्राह्मण भी ऐसा-वैसा नहीं। साक्षात् दामाद देवता।'

चम्पा ने बैठते हुए कहा —

'तुम्हें क्या दक्षिणा दूं तिवारीजी! मैं तो तुम्हारे लिए भगवान् से यही प्रार्थना करती हूं कि तुम सौ साल तक जीओ और सदा सुखी रहो।'

रामनाथ ताली पीट कर हंसता हुआ बोला —

'वाह भाभी बातों ही बातों में टालना चाहती हो। ऐसी सस्ती छुट्टी नहीं मिलेगी। ब्राह्मण को पूरी दक्षिणा देनी पड़ेगी। मधुर-मधुर भोजन, सुन्दर-सुन्दर कपड़े और सफेद-सफेद मुद्रायें ब्राह्मण को भेंट करनी पड़ेंगी।'

चम्पा ने मुस्कराते हुए कहा —

'क्यों नहीं तिवारीजी, चलो, बेलूर कुछ दिन आराम करना और जी चाहे ले लेना। मैं देने वाली कौन हूं। तुम्हीं लोगों की तो सब कुछ है।'

"अभी तो नहीं चल सकूंगा, यहां कांग्रेस का बहुत-सा काम

है। अगले महीने हम लोग बेलूर पहुंचेंगे, और तब सारा हिसाब चुकता करवा लूंगा भाभी"— रामनाथ ने उत्तर दिया।

अवसर अच्छा देखकर चम्पा ने प्रस्ताव किया —

'तुम अगले महीने आओगे तो ऐसा करो तिवारीजी, सरला और बिन्नो को मेरे साथ भेज दो। मेरा आज बेलूर लौटने का विचार है। गांव की हवा से सरला की सेहत को भी लाभ पहुंचेगा।'

रामनाथ सरला के जाने का प्रस्ताव सुनकर एकदम बिगड़ उठा—"यह कैसे हो सकता है भाभी कि सरला आज ही यहां से चली जाय। मैं बिल्कुल अकेला रह जाऊंगा, तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती।"

चम्पा बोली—

'मैं तो सालों से अकेली रहती हूं। सोचकर देखो मेरे पास कौन है? सरला और बिन्नो यहां रहती हैं। मुन्ना पढ़ाई के लिए होस्टल में रहता है और रमा भी आजकल बहुत कम आती है। अब कुछ समय तक सरला और बिन्नो मेरे पास रह जायेंगे। महीने-भर में तुम भी वहां आ जाओगे, तो सब इकट्ठे रह लेंगे। तुम लोगों पर मेरा भी कुछ अधिकार है या नहीं?'

रामनाथ ने तेजी से उत्तर दिया—

'अधिकार की बात मत छेड़ो भाभी, सरला पर से तो तुमने उसी दिन अधिकार छोड़ दिया, जिस दिन मुझ से शादी करके मेरे हाथ में हाथ दे दिया। बिन्नो अपनी जीजी के पास रहती है। और रहा मैं, सो मुझ पर किसी का अधिकार नहीं, क्योंकि मैं तो अपने ऊपर अपने बाप का भी अधिकार नहीं मानता। अब तो मैं सरला को तुम्हारे साथ इसलिए भी नहीं भेजूंगा कि इससे मेरे अधिकारों में कमी आ जायगी। सरला पर तो मेरा पूरा अधिकार है।'

सरला अब तक सब बातचीत चुपचाप सुन रही थी। अब वह चुप न रह सकी। बोल उठी —

'आप यह क्या कह रहे हैं। भाभी का तो मुझ पर और आप पर दोनों पर ही पूरा अधिकार है।'

रामनाथ मानों पूरे जोर से बरसने के लिए सरला के बोलने की प्रतीक्षा ही कर रहा था। बिगड़ कर गरजा—

'अच्छा, अन्त में आप सामने आगईं। मैं तो पहले से ही समझ रहा था कि भाभीजी की ओट में सरलादेवी शिकार खेल रही हैं। तो अब आप यहां जाना चाहती हैं। मेरी ड्यूटी थी, आपकी सेवा-शुश्रूषा कर देने की। अब आप रोग-मुक्त हो गईं। बस, अब मेरे पास रहने से क्या लाभ?' सरला बेचारी इस आकस्मिक और जोरदार आक्रमण के लिए तैयार नहीं थी। बिल्कुल प्रतिभाहीन सी होकर रुवाने से स्वर में बोली—

'मैंने तो कोई बात ऐसी नहीं कही, जो आपको बुरी लगती। मैंने तो केवल इतना ही कहा था कि भाभी का हम पर पूरा अधिकार है। आप व्यर्थ में ही नाराज होने लगे।'

रामनाथ झल्लाकर बोला—

'भाई, मुझे माफ करो। यह बदतमीजियां मुझ से नहीं सही जातीं। पहले परेशान करना — फिर रोकर डराना। इन चाल-बाजियों से थक चुका हूँ। सीधी तरह कहो कि अब मेरे पास नहीं रहना चाहती, जाना चाहती हो ताकि उन लोगों से खुली तरह मिल-जुल सको, जो मेरे शत्रु हैं।'

सरला के लिए यह अग्निबाण सर्वथा असह्य था। अभी वह पूरी तरह स्वस्थ भी नहीं हुई थी। वह तकिये पर मुंह डाल कर सुबकियों से रोने लगी। चम्पा इस सारे काण्ड से बहुत दुःखी हुई। वह सरला को शान्त करने के लिए उठी तो रामनाथ ने अन्तिम सूचना दी, और पैर पटकता हुआ बाहर चला गया—

'भाभी, तुम अपनी बेटी को समझा लो कि इस तरह मुझे सताया न करे, मेरी तबियत बहुत बेढब है। मैं इन बेहूदगियों का

अधिक नहीं सह सकता। पहले दुखी करना, फिर रोना, यह कहाँ की भलमनसाहत है।'

रामनाथ चला गया तो चम्पा सरला को शान्त करने का यत्न करने लगी। सरला ने रोना तो बन्द कर दिया पर यह आग्रह करती रही कि मुझे घर ले चलो। चम्पा ने उसे समझाया कि "जब तिवारी नहीं चाहते तो मैं तुझे घर कैसे ले चलूं। पति की इच्छा के विरुद्ध घर ले जाने से पीछे से बहुत बुराइयां पैदा हो जाती हैं। लड़की के माँ बाप को दोष आता है। यह सम्बन्ध ही ऐसा है। दामाद की चित भी है पट भी। उसे बिगाड़ना अच्छा नहीं।"

अन्त में सरला यह कह चुप होगई कि 'अच्छा भाभी, तुम्हारी मर्जी। संसार का रिवाज अटूट रहना चाहिए। अब के तो की सो की, आगे से ऐसी भूल कभी न करूंगी। मेरा यही धर्म है कि इन दहलीज को धर्म की रेखा मानूं और इनका उल्लङ्घन न करूं। मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहती जिससे तुम्हें दोष आये।'

अगले दिन प्रातःकाल चम्पा बैलूर को विदा होगई। चम्पा का हृदय चिन्ता और आशङ्का से भरा हुआ था, और सरला ? उसने तो सारी इच्छाशक्ति का संग्रह करके अपने आपको थामा हुआ था। उसका सिर चक्कर खा रहा था, और दिल टूटा जारहा था। चम्पा को छोड़ने रामनाथ स्वयं गया था। उनके चले जाने पर सरला चारपाई पर गिर पड़ी, और बहुत देर तक रोती रही।

[५]

अगले कुछ दिन भारत के इतिहास में विशेष महत्त्वपूर्ण थे। क्रिप्स मिशन के दिन थे। उन दिनों में वह विष-वृक्ष बोया गया था, जो पीछे से देश के विभाजन रूप में सफल हुआ। सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत को स्वराज्य देने की योजना तैयार करने आया था, परन्तु उसने योजना की जो रूपरेखा उपस्थित की वह भारतवासियों को अच्छी नहीं लगी।

देश के नेताओं को क्रिप्स-योजना के पर्दे में छिपा हुआ एक ऐसा बम का गोला दिखाई दिया, जो फूट कर देश भर का नाश कर सकता था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत के नेताओं ने क्रिप्स मिशन की विष-कथा को अपनाने से इन्कार कर दिया।

रामनाथ स्वभाव-सिद्ध सिपाही था। जब डंके पर चोट लगती थी, तब उसका खून खौल उठता था। उस समय वह अनुभव करने लगता था कि बस मैं इसी काम के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। 'उत्तेजना' उसके जीवन की प्रेरिका शक्ति थी। ज्यों ही काँग्रेस के प्रधान केन्द्र से तैयारी का बिगुल बजा, त्यों ही रामनाथ दीन दुनिया को भूल कर राज-नीतिक कार्य में कूद पड़ा।

सरला के सामने विकट समस्या आगई। वह काँग्रेस कमेटी की प्रधाना थी। उसके हृदय में देशप्रेम का जो बलबला उठता था, उसकी आवाज चाहे कम हो, परन्तु जोर कम नहीं था। इधर उसका स्वास्थ्य अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था। शरीर की कमजोरी के साथ साथ दिमाग की कमजोरी भी आगई थी, जिसके कारण वह किसी विचार-णीय विषय पर शीघ्र ही अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सकती थी, और जब पहुंच भी जाती तो उसे कार्यरूप में परिणत करने योग्य इच्छाशक्ति का सँग्रह नहीं कर सकती थी, और जरा सी आवाज या हलचल से घबरा जाती थी। तबियत का यह हाल था, और देश भर में आन्दोलन की अग्नि प्रचण्ड होरही थी। सरला उलझन में पड़ गई।

उस उलझन में से सरला को रामनाथ ने निकाल दिया। काँग्रेस का चपरासी काँग्रेस कमेटी की विशेष बैठक की सूचना लेकर आया तो रामनाथ ने सरला को आवाज देकर बाहर बुलाया और पेड़ के नीचे बैठकर इस प्रकार चर्चा आरम्भ की—

'सरला, कांग्रेस कमेटी की एक विशेष महत्वपूर्ण बैठक होने वाली है। बैठक कल सायङ्काल ५ बजे होगी, उसमें क्रिप्स मिशन की

निष्फलता से उत्पन्न हुई परिस्थिति पर विचार होगा और उस सत्याग्रह-संग्राम की तैयारी का कार्यक्रम बनाया जायगा, जो शीघ्र ही देश भर में आरम्भ होने वाला है। तुम काँग्रेस कमेटी की प्रधाना हो। यद्यपि तुम्हारी सेहत अभी बिलकुल ठीक नहीं हुई, तो भी तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि तुम कल की बैठक में चलो। कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है।'

'मेरी इच्छा ? मेरी इच्छा का तो इसमें कोई प्रश्न ही नहीं है। मेरा कर्त्तव्य है, वही पर्याप्त है। यदि कर्त्तव्य पालन के काम न आया, तो शरीर से क्या लाभ ? मैं कल अवश्य चलूंगी।'

सरला ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। उसे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि रामनाथ ने इतिकर्त्तव्यता के निश्चय का बोझ उस पर नहीं डाला।

दूसरे दिन दोनों कांग्रेस कमेटी की बैठक में गए। सरला ने बड़ी चतुरता से सभाध्यक्षा के कार्य का सम्पादन किया। निश्चय हुआ कि बम्बई में होने वाले आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी के अधिवेशन में निर्वाचित प्रतिनिधियों के अतिरिक्त कांग्रेस कमेटी का एक विशेष प्रतिनिधि भी भेजा जाय। प्रतिनिधि के निर्वाचन के समय सरला का नाम सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ; परन्तु जब सरला ने स्वास्थ्य की निर्बलता के कारण बम्बई जाने में असमर्थता प्रकट की तो निश्चय हुआ कि पं० रामनाथ तिवारी कमेटी के विशेष प्रतिनिधि के तौर पर बम्बई जांय। बम्बई की बैठक के सामने महात्मा गांधी का 'भारत छोड़ो' (Quit India) प्रस्ताव आने वाला था। उसके सम्बन्ध में स्थानीय और ग्राम-प्रचार के लिए जो समिति बनाई गई, उसकी अध्यक्षा और कार्य सञ्चालिका सरला को बनाया गया। सेहत की निर्बलता रहते भी सरला कर्त्तव्य-बुद्धि से इस कार्यभार को उठाने से इन्कार न कर सकी।

बम्बई की बैठक में अभी दो सप्ताह की देर थी, इस कारण रामनाथ भी प्रचार कार्य में सरला के साथ जुट गया। वह स्वभाव से योद्धा था। युद्ध का बिगुल बजने पर उसकी सम्पूर्ण शक्तियाँ जाग्रत हो

उठती थीं। युद्ध उसकी नस-नस में इस बुरी तरह व्याप्त था कि जब वास्तविक सङ्घर्ष न हो तो वह घर में ही सङ्घर्ष की रचना करने लगता था। इस समय तो असली युद्ध सामने आगया। रामनाथ की चेतना पूरी तरह जाग्रत हो उठी और उसने स्वयंसेवक और स्वयंसेविकाओं का सङ्गठन करके प्रचार की धूम मचा दी। वह और सरला प्रायः एक साथ ही प्रचार के दौरे पर जाते थे। जब कभी एक समय में दो जगह सभाएं करनी होती थीं, तब अलग-अलग भी जाना पड़ता था। किसी किसी दिन तो एक ही समय में कई कई स्थानों पर सभाओं की योजना की जाती थी, तब मोटर की सहायता से भाग-दौड़ करके उनका भुगतान किया जाता था।

सरला का स्वास्थ्य अभी कच्चा था। पांच छः दिनों की भाग दौड़ और वक्तृताओं ने उसे थका दिया। उसे अपने शरीर और मस्तक में खोखलापन सा अनुभव होने लगा। छठे दिन रात के समय जब वह घर लौटी तो बिलकुल चूर हो चुकी थी। रात भर थकान के मारे सो नहीं सकी। प्रातःकाल जब बिस्तर से उठी तो पैरों में खड़ा होने और मस्तक में सोचने की शक्ति क्षीण हो गई थी। चक्कर खाकर फिर चार-पाई पर बैठ गई।

थोड़ी देर के बाद रामनाथ सोकर उठा, और झटपट नित्य कर्मों से निवृत्त हो हाथ में झोला लेकर सरला को साथ लेने के लिए कमरे में गया तो देखा कि सरला हाथों पर सिर रखे चारपाई पर बैठी है। रामनाथ गांव जाने के लिए तैयार खड़ा है और सरला अभी चारपाई पर बैठी है — यह बात रामनाथ को कैसे सहन हो सकती थी, उसका पारा एक दम चढ़ गया। कोई दूसरा पक्ष भी हो सकता है। यह रामनाथ के मन में आ ही नहीं सकता था। वह चिल्लाहट के स्वर में बोला—

'अजी प्रधानाजी, बन्दा गांव जाने के लिये हाजिर होगया है। कब उठियेगा?'

सरला आधी होश में बैठी थी, चौंक उठी और पथराई हुई सी आंखों से रामनाथ की ओर देखने लगी। रामनाथ का क्षोभ और भड़क उठा। वह और ऊंचे स्वर से बोला –

'अरे भई, तुमने तो बेहियाई की हद कर दी। सारा दिन पति-भक्ति की रट लगाती हो, यह तुम्हारी पति-भक्ति है कि मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ और तुम रानी की तरह चारपाई पर बैठी हो ?'

सरला ने सब कुछ सुना, और कुछ-कुछ समझ भी लिया परन्तु उत्तर में केवल इतना ही कह सकी—'मेरी तबीयत आज अच्छी नहीं है, आप ही हो आइये।'

रामनाथ ने अधीर होकर कहा—

'देखो सरला, यह नखरे मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं हैं। तुम जब काँग्रेस कमेटी की प्रधाना बनी हो, तो तुम्हें अपनी ड्यूटी भी पूरी करनी चाहिए। देश के सामने सबसे बड़ा सत्याग्रह-संग्राम आरहा है और तुम कमरे में दुबकी बैठी हो। यह कैसे हो सकता है। तुम्हें चलना ही पड़ेगा।'

'पर मेरे तो खड़े होने में पांव लड़खड़ाते हैं, क्या करूं'। सरला ने खड़े होने की चेष्टा करते हुए उत्तर दिया।

रामनाथ झल्लाकर बोला—

'पांव लड़खड़ाते हैं तो लड़खड़ा कर चलो। आज गांव के जल्से में तुम्हें जाना ही होगा।'

सरला ने करुण-स्वर में कहा—

'कहीं ऐसा न हो कि आज जाने से मैं फिर देर तक के लिये पड़ जाऊं।'

'पड़ जाओगी तो कौन-सा अंधेर आ जायगा। काँग्रेस के काम में मर भी जाओगी तो मुझे पर्वाह नहीं। बस, अब अधिक बहानाखोरी मत करो और सीधी तरह चल दो। अगर काम के समय भागना था तो प्रधाना क्यों बनी थीं ?'

रामनाथ ने गर्जकर कहा।

इससे आगे सरला कुछ न कह सकी। भगवान् का नाम लेकर और माता-पिता का ध्यान करके सम्पूर्ण इच्छा-शक्ति का संग्रह किया और उठकर खड़ी हो गई। जैसे चाबी लगने से कोई मशीन चल रही हो, ऐसे सरला उठी, गुसलखाने में गई नहाई धोई, कपड़े बदले और कुछ नाश्ता लाकर रामनाथ के सामने रख दिया। अब तक रामनाथ का ज्वालामुखी बहुत शान्त होचुका था। वह नाश्ता लेने लगा और सरला जाने की तैयारी करने लगी। रामनाथ ने अपनी नाश्ता करने की धुन में इस ओर ध्यान नहीं दिया कि सरला ने मुंह में कुछ भी नहीं डाला केवल एक गिलास पानी पिया और रामनाथ के साथ हो ली।

[६]

उस दिन सरला पूरे होश में नहीं रही। मानो सब कुछ स्वप्न में कह रही हो। जैसे-जैसे रामनाथ करता गया, वह करती गई। यहाँ तक कि जब रामनाथ ने डाँट कर कहा—'सरला, क्या तुम सो रही हो। तुम्हारे भाषण का समय आ गया, खड़ी हो जाओ।' तब सरला खड़ी होकर भाषण देने लगी।

जब दोनों घर लौट कर आये तो साँझ हो चुकी थी; वीणा पाठ-शाला से आकर रसोई के काम में लग गई थी। मेहरी चूल्हे में आग जला कर घर की सफाई कर रही थी। रामनाथ ने आते ही नारा लगाया—

'अरे बिन्नो – अभी तक चाय तैयार हुई या नहीं ?'

'अभी होती है जीजा जी' कह कर बिन्नो जीजी को मिलने के लिये भागी। सरला उस समय कमरे की दहलीज के पास पहुंच चुकी थी। वहां पहुँच कर मानो चाबी समाप्त होगई। सरला का शरीररूपी यन्त्र प्रेरिका शक्ति के अभाव से डगमगा गया और वह पछाड़ खाकर दहलीज पर गिर पड़ी। सरला बेहोश हो गई। गिरते हुए उसका सिर

किवाड़ से जो टकराया तो जोर की रगड़ लग गई। जिससे रक्त की बूंदें टपकने लगीं।

वीणा ने जीजी को गिरते देखा तो चिल्लाई—

'जीजाजी, जल्दी आओ जीजी गिर गई।'

रामनाथ दौड़ता हुआ अन्दर आया, तो सरला की हालत देख कर स्तब्ध रह गया। उसके हृदय में सरला के प्रति अपनावट का अभाव नहीं था। उसे ममता के नाम से पुकारें या प्रेम के नाम से, यह हम निश्चय नहीं कर सकते। वह सरला को वैसे ही अपना समझता था जैसे हम अपने घर को, अपने बाग को या अपनी गुड़िया को अपना समझते हैं, अर्थात् उसमें ममता रखते हैं। हम अपना अधिकार समझते हैं कि उन्हें अपनी इच्छानुसार बनायें या बिगाड़ें। उन्हें और कोई बिगाड़े या आंख उठाकर भी देखे, यह हम नहीं सह सकते, स्वयं चाहे तो उन्हें उखाड़-पछाड़ कर नष्ट भी कर सकते हैं। रामनाथ की सरला में ऐसी ही ममता थी। उस समय सरला के सिर से रक्त की बूंदें गिरती देखकर रामनाथ उद्विग्न हो गया और तत्काल परिचर्या में लग गया। सरला को गोद में उठाकर चारपाई पर लिटाया, फिर रक्त को पोंछकर चोट को साफ किया और साथ ही मुंह में पानी डालकर होश में लाने की चेष्टा करने लगा। उसने वीणा को कुशलपाल के घर भेजकर सरला के अस्वस्थ होने की खबर भेजी, इसके सुनते ही पति-पत्नी दोनों तत्काल रामनाथ के घर आए और रोगी की सेवा में लग गए। रामनाथ ने कुशलपाल को डाक्टर बुलाने के लिए भेजा। रमा की मां सरला को पंखा करके सचेत करने का यत्न करने लगी और रामनाथ तथा वीणा गिरे हुए रक्त को साफ करने में लग गये।

हवा लगने और मुंहमें पानी जानेसे सरला थोड़ीही देरमें होशमें आगई। डाक्टर का घर समीपही था। वह लगभग २५ मिनटमें आपहुँचा। घाव बहुत गहरा नहीं था; थोड़ासा मांस छिला था। पट्टीबांध देनेसे रक्त

बहना बन्द होगया। डाक्टर ने सरला को गर्म दूध पिलाने का आदेश दिया। अव्यवस्था के कारण घर में उस समय दूध नहीं था। रमा की मां ने वीणा को भेजकर अपने यहां से दूध मंगवाया और गर्म करवाकर सरला को पिलाया तो उसमें बैठने की शक्ति आगई और वह चारपाई पर उठकर बैठ गई। उस समय रामनाथ को याद आया कि सरला ने सुबह प्रातराश नहीं लिया था। जब जलसे वाले गांव में सब अभ्यागतों को खाना खिलाया गया तब भी सरला ने यह कह कर टाल दिया था कि 'मुझे भूख नहीं है'। प्रातःकाल से बिल्कुल भूखी-प्यासी रामनाथकी आज्ञाओं का पालन करती रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि बिना तेल के बत्ती बुझने पर आगई। इस विचार को रामनाथ ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया—

'सरला, देख लो अपनी जिद्दी तबियत का परिणाम। सुबह से कुछ खाया-पिया नहीं, बिल्कुल महात्मा गांधी बनने की ठान ली है। नतीजा यह हुआ कि सिर फड़वा बैठी। मुझ से सबक सीखो। देखो सुबह से उठकर खा रहा हूँ और काम कर रहा हूँ। अभी कहो तो रातभर इसी तरह काम में जुटा रहूँ।'

सरला बेचारी यह झाड़ सुनकर लज्जित-सी हो गयी। वीणा को जीजी की बुराई सुनकर बहुत दुःख हुआ, परन्तु जब श्रोताओं ने रामनाथ की इस चटकीली फबती की प्रशंसा करते हुए कहा—"तिवारीजी तुम्हारा क्या कहना है, तुम तो सिपाही आदमी हो। सरलाजी को भूखा नहीं रहना चाहिये था" तो इस पर रमा की माँ ने कहा—"तुम बड़े कठोर हो तिवारीजी! यह बेचारी सुबह से भूखी है—और तुम इन्हें सभाओं में घसीटते फिरो। धिक्कार है तुम्हारी ऐसी लीडरी को।"

इस डाँट को सुनकर रामनाथ ठठाकर हंसा और बोला—

'ओहो भाभीजी, तुम भी स्त्री ही निकलीं। स्त्री का पक्षपात किये बिना न रहीं। यह भी स्त्रियों की एक खासियत है। सदा अपनी

जाति का पक्ष लेती हैं। काश कि मेरा कोई दोस्त भी ऐसा होता जो मेरी सच्ची-झूठी सब बातों की हिमायत किया करता। अरे भाई कुशलपाल, तुम तो बिल्कुल फिसड्डी हो, मेरी वकालत में एक भी शब्द नहीं कहते। मालूम होता है, भाभी ने बहुत डरा रखा है।'

इस पर सब हंस पड़े। बेचारा कुशलपाल झेंप गया। तिवारीजी वाक् प्रतियोगिता में विजयी होकर प्रसन्न हुए और घर के आगन में आकर बीड़ी पीने लगे।

दूसरे दिन सरला से परामर्श करके रामनाथ ने चम्पा को पत्र लिखा, जिसमें बीमारी की खबर देते हुए पटना आने का आग्रह किया।

उस दिन शाम को परिस्थिति पर विचार करने और सरकार की ओर से गिरफ्तारिया होने पर इति कर्त्तव्यता के सम्बन्ध में विचार करने के लिये कॉंग्रेस कमेटी की विशेष बैठक हुई। उसमें अन्य निश्चयों के अतिरिक्त यह भी निश्चय किया गया कि आल-इंडिया कांग्रेस कमेटी में सम्मिलित होने वाले सज्जन कल पटना से रवाना हो जायं, ताकि बम्बई की परिस्थिति से निरन्तर परिचित रहें और आवश्यकता होने पर तार द्वारा या आदमी भेजकर इति कर्त्तव्यता की सूचना दे सकें। रामनाथ बम्बई जाने वाली पार्टी का नेता बनाया गया और संयोजक बनाया गया बलधारीसिंह। रेल के टिकिट लेने और सीटों का प्रबन्ध आदि करने का काम संयोजक के सुपुर्द किया गया।

कमेटी की बैठक से आकर रामनाथ ने सभा का वृत्तान्त सरला को सुनाया। जब सरला ने सुना कि बम्बई जाने वाली मण्डली कल चली जायगी तो उसका जी घबरा गया। उसके सिर का घाव अभी हरा था, मस्तक खाली था और शरीर में खड़ा होने की शक्ति नहीं थी। हल्का-हल्का बुखार भी हो गया था। सरला ने पूछा—

'आप तो कल नहीं जायेंगे?'

रामनाथ ने उत्तर दिया—

'जाऊंगा क्यों नहीं? कॉंग्रेस की आज्ञा है, पालन करनी ही होगी।'

'पर मेरी तबीयत तो बिल्कुल खराब है। मेरा जी घुट रहा है। आपके पीछे मेरा क्या होगा?' सरला ने करुण-स्वर में कहा।

रामनाथ बोला—

'तुम्हारे लिये मैंने भाभी को लिख दिया है। वह दो-एक दिन में आ जायेंगी। तब तक रमा की मां देखभाल करती रहेंगी।'

सरला को बीमारी और मानसिक बेचैनी ने बहुत निर्बल बना दिया था; वह अभ्यर्थना के स्वर से बोली—

'मालूम नहीं भाभी, कब तक आये। आप उनके आने तक बाहिर न जायं। मुझे बुरे-बुरे सपने आते हैं और जी डरा-डरा रहता है।'

रामनाथ पर अभ्यर्थना का असर उलटा ही हुआ। अपनी इच्छा का विघात उसे असह्य था। वह उग्र होकर बोला—

'क्या वाहियात बुजदिलों की-सी बातें कह रही हो सरला! मैं तुम्हारी इस कायरता के कारण अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं हो सकता। मैं तो कल अवश्य जाऊंगा।' सरला के हृदय पर गहरा आघात पहुंचा। रोती हुई बोली—'मैंने आज तक कभी आपको इच्छानुसार कार्य करने से नहीं रोका और न कुछ मांगा ही है; आज मैं आपसे इतना ही माँगती हूँ कि आप तब तक मेरे पास रहें, जब तक भाभी नहीं आतीं। मुझे अनुभव हो रहा है कि यदि आप मुझे अकेला छोड़कर चले गये तो फिर जीवित न देख सकेंगे।'

सरला के हृदयद्रावक आग्रह से रामनाथ का हृदय पसीजने की जगह और अधिक कठोर हो उठा। वह चिल्लाहट के स्वर में बोला—

"उतर आईं न तुम तिरिया-चरित्र पर। रोकर मुझे देश के काम से रोकना चाहती हो। तुम्हारी मरने की धमकी से मैं जरा भी

नहीं डरता। तुम जैसी औरतों को मैं देशसेवा पर कुर्बान कर सकता हूँ। मैंने तुमसे यह समझ कर शादी की थी कि तुम देशसेवा में मेरी साझीदार बन सकोगी; पर मैं देखता हूँ कि तुम मेरे रास्ते का रोड़ा बन रही हो। पग-पग पर मेरी देशसेवा और प्रतिष्ठा में बाधा डालना ही तुम्हारा काम हो गया है, यहाँ तक कि तुम मेरे दुश्मनों की बढ़ती देखकर सुखी होती हो। तुम मेरे पीछे मर जाने की बात करती हो, यह भी अच्छा ही होगा। मेरे रास्ते का एक कांटा निकल जायगा।"

रामनाथ न जाने कब तक इसी तरह बकझक करता रहता, यदि उसका ध्यान सरला की आँखों पर न चला जाता। सरला की आँखें बद थीं और उसका सिर तकिये से नीचे लुढ़क गया था। वह बेहोश हो गई थी।

[७]

दूसरे दिन सुबह से ही रामनाथ अपना बिस्तर और बक्स लेकर कांग्रेस कमेटी में चला गया। जाता हुआ रमा की मां से कह गया कि जब तक भाभी न आये, तब तक सरला की देखभाल करती रहना। वीणा बेचारी बहुत देर तक अपने जीजा के पीछे फिरती रही और कहती रही कि जीजा जी, तुम मत जाओ। जीजी बीमार है। वह बहुत रोती है और कुछ खाती-पीती नहीं है। रामनाथ ने वीणा की अभ्यर्थना का केवल इतना उत्तर दिया—'तेरी जीजी मूर्खा है। उसे तुम समझा देना कि रोना बुरा काम है।'

सरला रात की बात के पश्चात् न चारपाई से उठी और न कुछ बोली। चुपचाप पड़ी रामनाथ के अंतिम शब्दों को मन-ही-मन दुहराती रही। रामनाथ ने कहा था — 'तुम्हारी मरने की धमकी से मैं जरा भी नहीं डरता। तुम जैसी सौ औरतें मैं देश-सेवा पर कुर्बान कर सकता हूं।' सरला सोचने लगी — "उन्होंने समझा है कि उन्हें जाने से रोकने के लिए मैं धमकी दे रही हूँ। वस्तुतः मेरी

तबियत खराब नहीं। मैं उनके देश-सेवा के काम में बाधक बन रही हूं। तभी तो उन्होंने कहा था कि मैं उनके रास्ते का रोड़ा बन रही हूं। मेरे कारण उनकी मान-प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचता है। धिक्कार है मेरे जीवन को। मुझ से वह क्या आशा रखते थे और मैंने उन्हें कितना निराश किया। वे यहां तक समझते हैं कि मैं उनके दुश्मनों को बढ़ता देखकर प्रसन्न होती हूं। ओह कितना पतित समझते हैं वह मुझे। वह मुझे मानवी नहीं राक्षसी समझते हैं।"

फिर वह सोचती—'क्या सचमुच मैं ऐसी पतिता हूं?' अंदर से उत्तर मिलता—'नहीं, मैं ऐसी पतिता तो नहीं हूं। मैं तो उनकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझती हूं। उन्हें सुखी देखकर सुखी रहती हूं और उनके जरा से कष्ट में घबरा जाती हूं। यथाशक्ति उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने में तत्पर रहती हूं। फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा? वे मुझे झूठी, मक्कार और कुलटा क्यों समझते हैं। मैं उनकी राह का कांटा हूं?'

इस विचारधारा में बहते-बहते सरला वेदना के गम्भीर जल में गोता खाने लगी। आत्मग्लानि और दुःख के आवेग से उसका गला भर आया। आखों से आंसू बहने लगे और फूट-फूट कर रोने लगी।

जब उसे विदित हुआ कि रामनाथ उससे मिले बिना ही सामान लेकर कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में चला गया है, तो उसे असह्य वेदना हुई। उसका मस्तिष्क बेकार-सा हो गया और हृदय तिलमिला उठा। उस समय सरला के मन में रामनाथ के अंतिम शब्द गूंजने लगे—

'तुम मेरे पीछे मर जाने की बात कहती हो। यह भी अच्छा ही होगा। मेरे रास्ते का एक कांटा निकल जायगा।'

जब वे मुझे इतना पतित समझते हैं, मुझसे इतने परेशान हैं तो क्या यह अच्छा न होगा कि मैं उनके पीछे मर जाऊं, मैं सदा उनकी इच्छाओं को पूरा करने का यत्न करती रही, क्या यह उत्तम न होगा कि मैं उनकी इस इच्छा को भी पूरा कर दूं।

और सब विचार तो बरसाती बादलों की तरह सरला के चित्तरूपी आकाश पर आते और उड़ जाते रहे परन्तु यह अन्तिम विचार चित्त में आकर कील की भांति गढ़-सा गया। जब वे मुझ से इतने दुःखी हैं, तो क्या मेरा संसार में न रहना उचित नहीं है? शब्दों द्वारा और फिर जाते हुए न मिल कर व्यवहार द्वारा रामनाथ ने सरला का जो घोर तिरस्कार किया था, उससे बेचारी सरला का हृदय चूर-चूर होगया था। उसे अपना जीवन घृणित और हेय प्रतीत होने लगा था। इस कारण जब एकबार रामनाथ के शब्दों ने उसके मन में स्वयं मर जाने की भावना को उद्बुद्ध कर दिया तब वह उस भावना से ओत प्रोत हो गई। उसका सम्पूर्ण विचार-प्रवाह आत्म-बलिदान की ओर प्रचण्ड वेग से बह चला।

[८]

रामनाथ घर से बिस्तर और सन्दूक लेकर कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में पहुंचा, तो मालूम हुआ कि बम्बई जाने वाली मण्डली दोपहर बाद की गाड़ी से रवाना होगी। उसने सामान कमेटी के कार्यालय में रख दिया, और सीधा बलधारीसिंह के घर का रास्ता लिया। जब से उस दिन सायकाल के समय निर्मला से उसकी भेंट हुई है, तब से रामनाथ का हृदय उसकी ओर बुरी तरह आकृष्ट होगया है। उसकी लज्जाशील सौम्यमूर्ति रामनाथ के मन में बस गई है। वह मूर्ति छाया की तरह निरन्तर उसकी अन्तरात्मा के दायें-बायें घूमती रहती है। यह ठीक है कि निर्मला की ओर से रामनाथ की वासना के साथ अणुमात्र भी सहानुभूति प्रकट नहीं कीगई, परंतु इससे रामनाथ को क्या? वह इतनी-सी बात से रुकने वाला व्यक्ति

नहीं था। उसका जी निर्मला के समीप होने को चाहता था इस कारण वह बलधारीसिंह के घर जाने का बहाना मिलते ही उधर चल देता था। इस वासना ने बलधारीसिंह के प्रति उसकी प्रतिस्पर्धा की भावना को भी पीछे डाल दिया था। वह अब बलधारीसिंह से अनुद्घोषित सुलहनामा करने को उद्यत हो गया था। बस शर्त इतनी ही थी कि बलधारीसिंह सरला के आस-पास कहीं दिखाई न दे। जब कभी मिलने पर बलधारीसिंह रामनाथ से सरला के स्वास्थ्य का वृत्तान्त पूछ लेता, तब रामनाथ अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन कर राख हो जाता और कोई जला कटा उत्तर देकर टालने की चेष्टा करता। इसके अतिरिक्त आजकल वह बलधारीसिंह से मित्रभाव ही प्रगट करता था।

जब रामनाथ बलधारीसिंह के मकान पर पहुंचा तो पति पत्नी में बम्बई-यात्रा के सम्बन्ध में बात-चीत हो रही थी। बलधारीसिंह कह रहा था—

'बड़ा अच्छा अवसर है। चलो तुम भी बम्बई की सैर कर आओ। देश के सभी बड़े-बड़े नेता एकत्र होंगे। बम्बई भी देख लोगी और महापुरुषों के दर्शनों का भी लाभ प्राप्त हो जायगा। सात-आठ दिन में लौट आयेंगे।'

निर्मला अनिच्छा प्रकट कर रही थी। उसका कथन था कि 'आप तो काम से जा रहे हैं। मैं यों ही पीछे-पीछे फिरूंगी, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। फिर यहां बच्चों के पास केवल चाची जी हैं। उनका बूढ़ा शरीर है—चार बच्चों को कैसे संभालेंगी? इस समय तो आप ही हो आइये; सैर करने के लिए बम्बई फिर कभी चलेंगे।' इस बीच में रामनाथ आ पहुंचा। उसने बैठते ही बातचीत में हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया, बोला—

'भाभी जी, आप भी अजीब स्त्री हैं। क्या आपको मालूम नहीं कि शायद इस बार बम्बई में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के

सब सदस्य गिरफ्तार हो जायेंगे। क्या ऐसे अवसर पर आप बलधारीजी को अकेले ही भट्टी में झोंक देंगी? यह भी सुनते हैं कि गोली चले। उस समय इन्हें कौन बचायेगा? आप तो कहती हैं न कि स्त्री मर्द की ढाल है। आप ढाल होकर ऐसी लड़ाई के समय सरकना चाहती हैं। आपको बम्बई अवश्य चलना चाहिए।'

इस जोरदार वकालत में रामनाथ का जो लक्ष्य था, वह पाठकों से छिपा नहीं रहा होगा। उसके लिए मुख्य प्रलोभन था कि सारी यात्रा में निर्मला के समीप रहने का अवसर मिलेगा।

बहुत देर तक वाद-विवाद चलता रहा। अन्त में बलधारी की प्रेरणा और रामनाथ के शाब्दिक दाव पेच में सफलता हो गई और दोपहर बाद जो मण्डली बम्बई की गाड़ी से सवार हुई उसमें निर्मला भी शामिल थी। मण्डली का प्रबंधक बलधारीसिंह था और नेता रामनाथ तिवारी।

रामनाथ के जीवन में वह सप्ताह मानो स्वप्न का सप्ताह था। उसके उग्र भावुकतापूर्ण हृदय के लिए यह अनुभूति शराब के नशे का काम दे रही थी कि वह निर्मला के समीप है और जब चाहे उसे देख सकता है और बात कर सकता है। यों निर्मला बहुत सावधान रहती थी; जब पास बैठने का अवसर आये तो वह अपने और रामनाथ के बीच में सदा बलधारीसिंह को डाल लेती थी। सीधी बात करने से भी कतराती थी, परन्तु रामनाथ का निःसंकोच और उग्र स्वभाव रास्ते की खाइयों को पार करके समीप पहुंचने में सफल हो ही जाता था।

बलधारीसिंह उग्र-स्वभाव का व्यक्ति नहीं था, परन्तु उसे ठूंठ भी नहीं कह सकते। वह एक ठण्डी तबियत का चतुर और महत्वाकांक्षी मनुष्य था। प्रारम्भ में तो उसे रामनाथ के व्यवहार में विनोदप्रियता के अतिरिक्त कुछ दिखाई न दिया, परंतु एक दो दिन के पश्चात् ही

यह रामनाथ के व्यवहार के अनौचित्य को समझने लगा था, तो भी उसने अपने व्यवहार में कोई भेद नहीं आने दिया। उसे निर्मला पर इतना विश्वास था कि उसके मन में कोई चिंता नहीं हुई।

रामनाथ ने बड़ी चतुराई से काम लिया। यात्रा के आरम्भ से ही बलधारीसिंह को 'भाईसाहिब' और निर्मला को 'भाभीजी' रटना शुरु कर दिया था।

बम्बई के दिन स्वप्नों की भांति व्यतीत हो गए। बहुत-सा समय आल-इण्डिया कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में व्यतीत होता था, शेष आपसी परामर्शों व कार्यकर्त्ताओं की बैठकों और सार्वजनिक सभाओं से भरा रहता था।

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का यह अधिवेशन भारत की स्वाधीनता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। १९४२ के अगस्त मास की आठवीं तारीख, १९४७ के अगस्त मास की पन्द्रहवीं तारीख से कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं समझी जायगी। ८ अगस्त १९४७ के दिन भारत के स्वाधीनता-युद्ध का अन्तिम बिगुल बजाया गया था। बजाने वाले थे भारत के अमर बापू मोहनदास कमचन्द गांधी और बिगुल में से जो सन्देश सुनाई दिया, उसके दो रूप थे। अंग्रेजों के लिये उसका रूप था—'भारत छोड़ो' और भारतवासियों के लिये उसका रूप था—'करो या मरो'। भारत के प्रतिनिधि अपने सेनापति का आदेश सुनने के लिए बम्बई में एकत्र हुए थे। ग्वालिया मैदान के विशाल पण्डाल में उन्होंने जो आदेश सुना, वह मुर्दों में भी जीवन संचार करने की सामर्थ्य रखता था। उनके वयोवृद्ध तपस्वी सेनानी ने आदेश दिया था—

"कुछ लोग कहते हैं कि अपनी तैयारी क्या है? भले ही मेरी तैयारी, मेरा लश्कर और मैं भी कच्चा क्यों न होऊं, मुझे ईश्वर पर भरोसा कर उसका हुक्म पूरा करना है। वह मेरी पीठ पर है।

अब बीच से समझौता नहीं। यह संघर्ष नमक बनाने की सुविधाएं लेने के लिए नहीं है। अब तो मैं एक ही चीज लेने जा रहा हूँ, और वह है आजादी। मैं वह गांधी नहीं, जो कुछ चीज लेकर बीच ही से लौट आयेगा। आपको तो मैं एक मन्त्र 'करो या मरो' दे रहा हूँ। जेल को आप भूल जायं। आप यह सदा याद रखें कि मैं खाता हूँ, पीता हूँ, सांस लेता हूं, तो केवल इसलिए कि मुझे दासता की जंजीर तोड़नी है। मरना जानने वाले ही जीने की कला सीख सकते हैं। स्वाधीनता कायरों के लिये नहीं है। जिनमें मरने की हिम्मत है, वही जीवित रह सकते है। हम चींटी नहीं हैं। हम हाथी और शेर से भी बढ़कर हैं।"

आदेश के अन्त में सेनापति ने कहा था—'स्वाधीनता कल नहीं आज ही आनी चाहिए। इसलिए कांग्रेस से मैंने आज यह बाजी लगवाई है कि वह या तो देश को स्वाधीन करेगी अथवा स्वयं फना हो जायगी। 'करो या मरो' हमारा मूल-मन्त्र होगा।'

जिस समय बूढ़े सेनापति का यह तेजोमय आदेश देश-भर में फैला, उस समय क्रांति की ऐसी प्रचण्ड-अग्नि प्रज्वलित हुई जिसमें भूगोलव्यापी ब्रिटिश-साम्राज्य की अभिमान से पूर्ण पताका जलकर राख होगई। ब्रिटिश-केसरी के दांत और नख झड़ गये और उसे ब्रिटिश-साम्राज्य नामक जेल के दरवाजे खोल देने पड़े। लगभग १० सदियों से पराधीन भारत स्वाधीनता की ओर बढ़ चला।

वह जीवनदायी सन्देश रामनाथ ने भी सुना। उसका भावुक हृदय युद्ध में कूदने के लिए मचल उठा। वह सब कुछ भूल गया। सरला को तो बम्बई जाते हुए ही भूल गया था, अब निर्मला को भी भूल गया। अब तो उसे केवल एक ही चिंता हुई कि कब अधिवेशन समाप्त हो और वह कब पटना लौट कर क्रांति की आग प्रज्वलित करे।

अधिवेशन समाप्त हो गया तो सब सदस्य और प्रतिनिधि अपने अपने स्थानों पर लौट कर युद्ध जारी करने की योजना बनाने में लग गये। ८ अगस्त की रात के १२ बजे तक सारे कांग्रेस-शिविर में युद्ध का डंका बजता रहा।

इधर स्वाधीनता की सेनाएं शान्तिमय युद्ध के लिए तैयार हो रही थी और उधर नौकरशाही उसे अशांत रूप देने की योजना बना रही थीं। ६ अगस्त का सूर्य उदित होने से पहले ही सरकार ने आक्रमण कर दिया। महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्य ६ अगस्त को ब्राह्म-मूहूर्त में ही पकड़ लिये गये और अहमदनगर के किले में बन्द करने के लिये रवाना कर दिये गये।

६ अगस्त का दिन बम्बई के लिए विप्लव का दिन था। दिन-भर शहर के भिन्न-भिन्न भागों में जनता और सरकार की मुठभेड़ होती रही। बाहिर से आये हुए प्रतिनिधि अपने नेताओं से आदेश और सन्देश लेते रहे।

६ तारीख की सांयकाल से शहर के लोग अपने-अपने ठिकानों को लौटने लगे। जिसे जो गाड़ी मिली, उसीसे चल दिया। इधर सरकार की योजना पहले से तैयार थी। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के सदस्य अपने प्रांत में प्रवेश करने पर और कहीं कहीं तो उससे भी पहले पकड़ लिये गये। उन्हें घरों तक जाकर 'करो या मरो' का संदेश सुनाने का अवसर ही नहीं दिया गया। बलधारीसिंह और आल-इण्डिया कांग्रेस के अन्य बिहारी सदस्य भी रास्ते में ही घेर लिये गये। वे पटना नहीं पहुँच सके। निर्मला बेचारी अन्य बहुत से पकड़े गये देशभक्तों के परिजनों के साथ जब पटना स्टेशन पर गाड़ी से उतरी तब उसकी दशा ऐसे पक्षी की सी थी, जिसके पर कट गये हों।

रामनाथ ने बड़ी चतुराई से काम लिया। वह रास्ते में ही एक छोटे से स्टेशन पर उतर गया और पुलिस वालों से आंखें बचाकर कुछ रास्ता घोड़ागाड़ी से और कुछ पैदल तय करता हुआ १२ अगस्त को प्रातःकाल उस समय घर पहुंचा, जिसे ब्राह्म मूहूर्त का समय कहते हैं। अभी अन्धकार के दुर्ग में अरुण के हाथों की अंगुलियों के अगले पोरे ही प्रविष्ट हुए थे; केवल मुर्गा बोल रहा था, अन्य पक्षियों का चहचहाना आरम्भ नहीं हुआ था।

[६]

कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को सार्वजनिक कार्यों में रामनाथ तथा सरला को साथ-साथ देखने का अभ्यास-सा होगया था। जब रामनाथ अकेला ही बंधा हुआ बिस्तर लेकर बम्बई जाने के लिए कार्यालय में पहुंचा, तब साथियों ने पूछा कि 'क्या बहिनजी बम्बई नहीं चलेंगी?' रामनाथ ने उत्तर दिया—'सरला की तबियत अच्छी नहीं, इस कारण वह नहीं जा सकेगी।' बम्बई जाने वाली मण्डली को धूमधाम से रेलगाड़ी में बिठाकर जब कार्यकर्ता शहर की ओर लौटे, तो उनमें से कई सरला के स्वास्थ्य-समाचार जानने के लिए उसके घर गये और कुशल-समाचार पूछने के पश्चात् मण्डली की विदाई का वृत्तान्त विस्तार से सुनाया। सरला ने उसे चुपचाप सुना—कुछ बोली नहीं। यों उसके हृदय में अप्रिय विचारों की आंधी-सी आरही थी। रामनाथ ने पहली रात जो वाक्य रूपी तीर छोड़े थे, वे तो दिल में करक ही रहे थे, उस पर रामनाथ के बलधारीसिंह के घर जाकर निर्मला को बम्बई जाने का सफल आग्रह करने और साथ साथ बम्बई जाने के वृत्तान्त ने उसके मन में एक ऐसी कड़वी विचार-धारा उत्पन्न की, जो पहले कभी नहीं हुई थी। उसके मन में अपमान के कारण जो अग्नि प्रदीप्त हुई थी, उस पर ईर्ष्या की घृताहुति पड़ गई। उसका हृदय असह्य जलन का अनुभव करने लगा।

अपना अपमान और निर्मला का प्रेम—ये दोनों अनुभूतियां उसे पागल-सा बनाने लगीं। जी चाहा, चिल्लाकर कह दे कि वह तुम्हारा सम्मानित लीडर बेवफा है, झूठा है, लम्पट है; परन्तु शील और कुल ने मुंह पर ताले लगा दिये, जिससे होंठ बन्द रहे परन्तु हृदय की दावाग्नि का वेग असह्य होने लगा। सरला का दिमाग उसका साथ छोड़ने लगा।

जब वे लोग चले गये, तो सरला चारपाई से उठी और गोदाम की कोठरी में जाकर अपना बक्स खोला। उसमें एक सुन्दर लिफाफे में चम्पा की छोटी-सी फोटो थी। सरला ने उसे निकाला और हाथ में लेकर चारपाई पर बैठ गई। चित्र को तकिये पर रख कर देर तक उसकी ओर देखती रही। फिर हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बोली — 'भाभी अब बता मैं क्या करूं? अब तो यह जीवन सहा नहीं जाता। मैं तो इस झमेले में फंसना ही नहीं चाहती थी, तुम्हारे सन्तोष के लिए यह भी अंगीकार कर लिया; पर तुम्हें सन्तोष न दे सकी। चाहा था कि विवाह के बन्धन में फस ही गई हूं तो जिसे पति माना है, उसी को सुखी कर सकूं। सारा यत्न देकर भी उन्हें सुखी न कर सकी। वे मुझे अपनी राह का कांटा समझते हैं, मेरे न रहने से सन्तुष्ट होंगे—और मुझसे निर्मला को........, बस इससे आगे सरला कुछ न बोल सकी। रोना आगया और वह फूट-फूट कर रोने लगी।

वह रात इसी तरह सङ्कल्प-विकल्प में बीत गई। सरला के दिल में यह बात जम-सी गई थी कि अब इस दशा में जीवन व्यतीत करना अनुचित है—पाप है—और घोर अपमान है। वह अब रामनाथ के रास्ते से हट जाना चाहती थी। संसार की ओर से बड़े से बड़े सङ्कट आने पर मानवती स्त्री का एक पति ही कवच होता है। वह उसके भरोसे पर आपत्तियों की अक्षौहिणी सेना को तृण के समान समझने की

हिम्मत रखती है, परन्तु जब वह टूट जाय, तब संसार से हट जाना चाहती है। सरला के हृदय से भी एक यही ध्वनि निकल रही थी कि 'वर्तमान दशा में जीवन व्यतीत करना मरने से बुरा है।' रामनाथ बम्बई से लौटकर आये और सरला को इस घर में देखे—यह उसे असह्य प्रतीत होरहा था।

रङ्गस्थली से हटने के दो उपाय थे। घर छोड़ देना या आत्म हत्या करना। सरला इन दोनों के बीच डावाडोल होरही थी। कभी इसे सोचती और कभी उसे। घर छोड़ने में बदनामी थी, आत्म-हत्या में पाप था। बदनामी और पाप में कौन हल्का और कौन भारी है, सरला के लिए यह निश्चय करना कठिन हो रहा था। वह इसी उलझन में पड़ी करवटें बदलती रही और प्रातःकाल होगया। पहले दिन शाम तक उसके मन के सामने दो समस्याएं थीं। पहली समस्या यह थी कि वर्तमान अपमानजनक परिस्थिति से निकलने के लिए क्या करे और दूसरी यह कि किस उपाय से करे? रात भर के ऊहापोह से उसकी पहली समस्या हल होगई। उसके मन में यह विचार निश्चित रूप से बैठ गया कि उसे यह घर छोड़ देना चाहिए। इतना निश्चय हो जाने से उसके सिर पर से मानो आधा बोझ उतर गया और वह चारपाई से उठने योग्य होगई। घर कैसे छोड़ा जाय—अन्यत्र जाकर या आत्म-हत्या करके, यह प्रश्न शेष रह गया।

दोपहर के समय चम्पा आगई। बम्बई जाते हुए रामनाथ ने एक आदमी के हाथ, चम्पा के पास चिट्ठी भेजकर यह सूचना दे दी थी कि 'मुझे आवश्यक कार्य से बम्बई जाना पड़ा है, सरला की तबियत खराब है, आपका शीघ्र से शीघ्र यहां आना आवश्यक है।' चम्पा दूसरे दिन प्रातःकाल वैलूर से चलकर दोपहर के समय पटना पहुंच गई।

चम्पा ने सरला को देखा तो स्तब्ध रह गई। इतने दिनों में सरला का चेहरा बिल्कुल बदल गया था। कपोलों पर पिलापा छा गया

था, आँखें शून्य-सी होगई थीं, होंठ सूख गए थे। जब चम्पा सामने आई, तो स्वाभाविक तो यह था कि सरला उल्लास और उत्साह से उसका स्वागत करती, परन्तु चम्पा को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सरला जहां थी, वहीं खड़ी रही; अचेतन ढङ्ग पर हाथ उठाकर नमस्कार किया और पथराई हुई सी आंखों से अपनी भाभी की ओर देखने लगी।

चम्पा के बहुत आग्रहपूर्वक पूछने पर सरला ने रो-रोकर अपनी दुःख कहानी सुनाई। उसे सुनकर चम्पा का दिल विह्वल हो गया। वह बोली—'बेटी, यह सब मेरी ही नासमझी का परिणाम है। मैंने जिसे सच्चा सोना समझकर दामाद बना लिया था, वह अन्दर से केवल घटिया पीतल निकला। मुझे स्वप्न में भी विचार नहीं हो सकता था कि देश-भक्ति का दावा करने वाला और स्त्री जाति के अधिकारों का दम भरने वाला आदमी ऐसा पतित और दम्भी निकलेगा। अब इस आपत्ति से छूटने का एक ही उपाय है कि तू मेरे साथ अभी चली चल; मैंने तुझे इस नरक में धकेला था, मैं ही तुझे इसमें से निकालती हूँ। चल तू मेरे साथ। सौ बार सिर पटकने और कसमें खाने पर भी तुझे इसके साथ नहीं भेजूंगी।'

इसका उत्तर सरला ने दृढ़ता से दिया—

'भाभी, अब यह बात नहीं हो सकती। वह समय चला गया। एक दिन मैंने स्वयं तुमसे कहा था कि मेरा यहां से उद्धार कर दो। तब तुमने जो उत्तर दिया था वह मेरी नस नस में व्याप्त होगया है। तुमने कहा था—जब तिवारीजी नहीं चाहते तो मैं तुझे कैसे ले चलूं? पति की इच्छा के विरुद्ध घर ले जाने से पीछे बहुत बुराइयां पैदा होती हैं। लड़की के माँ बाप को दोष आता है। तब तुम मुझे जिस दोष के डर से यहां छोड़ गई थीं, वह अब भी तो आयेगा। मेरे किसी काम से मां बाप को कलङ्क लगे, यह मुझे सह्य नहीं है। अब तो मेरा भौतिक शरीर यहीं की मिट्टी में मिलेगा। यह मेरा अन्तिम और दृढ़ निश्चय है।'

चम्पा ने सरला के निश्चय को हिलाने के बहुत यत्न किए। प्यार किया, धमकाया, रोष प्रकट किया, पर सरला टस से मस न हुई। वह किसी प्रकार भी बेलूर आने को तैयार न हुई।

[१०]

६ अगस्त के प्रातःकाल दैनिक समाचारपत्रों ने बम्बई के क्रान्तिकारी समाचार देश भर में फैला दिए। वे समाचार सरला ने भी पढ़े। जब उसने महात्मा गांधी का 'करो या मरो' वाला सन्देश पढ़ा तो उसका रोम-रोम हिल गया। मन में आया कि जिस क्षण के लिए मैं जीवित थी, वह आगया है। वह मन ही मन दुहराने लगी—'करो या मरो'। दुहराते-दुहराते इस जीवन-मन्त्र से सरला ने 'या' उड़ा दिया, और उसकी जगह 'और' रख दिया। वह सोचने लगी—'यह सन्देश मेरे लिए मार्ग-प्रदर्शक है। यदि मैं इस संसार में जीवित नहीं रहना चाहती, तो उसका यही समय है। क्यों न मैं इस राजक्रान्ति की अग्नि में अपने दुःखों को अपने साथ ही स्वाहा कर दूं। कुछ करूं भी और मरूं भी।'

ये भावनाएं सरला के मन में उठ ही रही थीं कि स्थानीय कार्यकर्त्ता उसके पास परामर्श के लिए इकट्ठे होने लगे। वह कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षा थी। सभी कार्यकर्त्ता उसका सम्मान करते थे। बम्बई के समाचारों ने देश भर में विद्रोह का तूफान खड़ा कर दिया। नेताओं की गिरफ्तारी के पश्चात् शहर भर की हड़ताल श्रीमती अरुणा द्वारा राष्ट्रीय झण्डे का आरोहण, पुलिस का प्रहार और जनता का विक्षोभ यह सभी खबरें भारत के कोने कोने में बड़ी उत्सुकता से पढ़ी गईं और दुहराई गईं। महात्माजी के व्याख्यान, और आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के 'भारत छोड़ो' वाले प्रस्ताव ने जो देश व्यापी यज्ञाग्नि प्रदीप्त की थी, बम्बई के ६ अगस्त के समाचारों ने उन पर घृत का काम दिया, जिससे स्वाधीनता के महायज्ञ की ज्वालायें आकाश की चोटियों को छूने लगीं।

पटना में भी हड़ताल हुई। हड़ताल के पश्चात् जो-जो प्रक्रियाएं नौकरशाही भारत में हुआ करती थीं, वह एक दूसरे के पश्चात् स्वभावतः होती गईं। १० तारीख को सरला के मकान पर कार्यकर्त्ताओं की जो बैठक हुई, उसमें ११ अगस्त का उग्र कार्यक्रम बनाया गया, जिसका प्रारम्भ प्रातःकाल से ही होने वाला था। उसका रूप यह था कि विद्यार्थी और चुने हुए कार्यकर्त्ता जलूस बनाकर सेक्रेटेरियट दफ्तर पर पहुंचें, और उसके मुख्य गुम्बज पर राष्ट्रीय झण्डा फहरायें। प्रारम्भ से ही यह निश्चय कर लिया गया था कि प्रान्त के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को अभी गिरफ्तारी से यथासम्भव बचाया जाय – ताकि कार्य चलता रहे। सरला उस समय शहर की सर्वप्रमुख कार्यकर्त्री थी, इस कारण कल के समारोह में उसके नेतृत्व का या भाग लेने का भी विचार नहीं उठा।

११ अगस्त के प्रातःकाल पूर्व निश्चय के अनुसार छात्रों और चुने हुए कार्यकर्ताओं की हजारों की भीड़ से घिरा हुआ जलूस 'भारत छोड़ो' और 'करो या मरो' के नारों से आकाश को गुंजाता हुआ सेक्रेटेरियट के दफ्तर की ओर प्रस्थित हुआ। रास्ते में गोल घर पड़ता था। उसके पास पुलिस की ओर से थोड़ा-बहुत प्रतिरोध हुआ, परन्तु पुलिस जनता की उस बाढ़ को न रोक सकी। जलूस आगे बढ़ता गया और पुलिस पीछे हटती गई, यहां तक कि मस्ताने देशभक्तों का दल सेक्रेटेरियट पर जा पहुंचा। तब तो पुलिस और फौज को उसके रास्ते में जम कर खड़ा हो जाना पड़ा। जलूस रुक गया, तो पुलिस के बड़े अफसर ने आगे बढ़कर पूछा—

"तुम लोग यहां क्या चाहते हो?"

देशभक्त दल के नेता ने उत्तर दिया –

'हम लोग सेक्रेटेरियट के दफ्तर पर राष्ट्रीय ध्वजा फहराना चाहते हैं। झण्डा फहरा कर हम लोग चले जायेंगे।'

इस उत्तर के मिलने पर पुलिस के अधिकारी आपस में कुछ परामर्श करने लगे। इतने में लोगों ने देखा कि जलूस के मध्य में कुछ

हलचल मच गई है, स्वयंसेवकों और दर्शकों की भीड़ दो हिस्सों में बंट-कर बीच में से किसी को रास्ता दे रही है। लोग उधर देखने लगे। उन्होंने देखा, एक महिला हाथ में तिरंगा झंडा लिये डगमगाते पाँव से भीड़ को चीरती हुई आगे बढ़ी आ रही है। उसके सिर पर का कपड़ा उतर गया था, बाल माथे पर बिखरे हुये थे। शरीर की निर्बलता के कारण पाँव सीधे नहीं पड़ते थे, परन्तु उसकी आंखों में शेरनी की सी दमक थी और माथे पर दृढ़ निश्चय लिखा हुआ था। जनता को पहि-चानने में देर न लगी। वह तो काँग्रेस कमेटी की अध्यक्षा, शहर की दुलारी सरला देवी थी। सहसा गगन-मण्डल 'सरला बहिन की जय' के जयघोष से गूंज उठा। भीड़ ने रास्ता दे दिया, जिसमें से आगे बढ़कर सरला उस पुलिस की पंक्ति के सामने आगई और आगे बढ़ने लगी। इस पर पुलिस के अफसरों ने उसके आगे खड़े होकर कहा—

"आगे मत जाओ।"

सरला ने दृढ़ता से उत्तर दिया—

'तुम हमें नहीं रोक सकते। हम आगे अवश्य जायेंगे और सेक्रेटेरियट के गुम्बद पर राष्ट्रीय-झंडा फहरायेंगे।'

यह कहने के साथ ही सरला ने अपना कदम आगे बढ़ा दिया।

"झण्डा फहराने से पहले गोली खाने को तैयार हो जाओ।"—

—क्रोध और दर्प से भरे स्वर में अंग्रेज अफसर ने कहा।

'उससे कौन डरता है, हम तैयार हैं।'

—यह वाक्य कहने के साथ ही सरला ने एक कदम और आगे रखा।

'दन' 'दन' 'दन' पुलिस की रायफलें बोल उठीं। सरला सबसे आगे थी। एक गोली उसके मस्तक से पार हुई और दूसरी छाती से। सरला तत्क्षण भूमि पर गिर गई, गिरते हुए उसके मुंह से केवल एक शब्द सुनाई दिया—'वन्दे....' उसने उस समय भगवान् की, मातृभूमि की, अपनी माता की या सभी की वन्दना की, यह भगवान् के सिवा कोई

नहीं जानता। सरला नीचे गिर गई और क्षण भर में इस संसार के बन्धन से मुक्त होगई। प्रतीत होता है कि उसके पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों का भोग समाप्त होचुका था। जो भोग शेष था, उसके लिये नया लोक और नया शरीर चाहिये था।

उस दिन पुलिस की गोलियों से घायल तो सैकड़ों आदमी हुए, परन्तु सरकारी तौर पर जो समाचार मान लिया गया वह यह था कि सेक्रेटेरियट पर पुलिस की गोलियों से एक दर्जन के लगभग आदमी मारे गये। उस एक दर्जन में सरला भी एक थी।

[५१]

सरला देश पर हुतात्मा हुई, इससे बड़ा सौभाग्य किसी को क्या मिल सकता है! साथ ही वह एक देशभक्त कहलाने वाले पुरुष के घोर अहङ्कार और हठीलेपन का शिकार हुई, इसमें भी संदेह नहीं।

सरला के आत्म-बलिदान का समाचार सुनकर रामनाथ ने कहा—'ओह, उसने मेरा रास्ता यों साफ़ किया।'

उसकी भाभी ने जब सुना कि सरला मर गई तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी और बेहोश होगई। जब होश आया तो उसे अनुभव हुआ कि गिरने में उसके सिर पर गहरा आघात पहुंचा है। उसे स्वस्थ होने में तीन महीने लग गये। उसके पश्चात् भी वह पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो सकी।

बेचारी वीणा 'जीजी,' 'जीजी' चिल्लाने और दीवारों से सिर मार-मारकर रोने लगी। सरला की मृत्यु से शहर-भर में मातम छा गया।

जब १२ अगस्त के दिन रामनाथ पटना वापिस लौटा तो उसे अपनी अल्मारी में सामने ही रखा हुआ एक पत्र मिला। पत्र पर लिखा था—'पूज्या भाभी के चरणों में'। रामनाथ ने उसे उठाकर धड़कते हुए दिल से पढ़ा। पत्र निम्नलिखित था—

'पूज्या भाभी,

मैं जीवन-भर यत्न करती रही कि कोई काम तुम्हारी आज्ञा के बिना और इच्छा के विरुद्ध न करूं। आज जो काम करने जारही हूँ उसके लिए तुम्हारी आज्ञा नहीं ले सकी, क्योंकि मैं जानती हूँ कि वह मुझे नहीं मिल सकेगी। यदि सम्भव होता तो मैं अब भी तुम्हारी इच्छा के विपरीत न जाती, परन्तु मेरी प्यारी भाभी, तुम विश्वास करो, मैं सर्वथा लाचार होकर मरने जा रही हूँ। मेरे पास अब कोई रास्ता ही नहीं रहा।

तुम जानती हो कि मैं विवाह के बन्धन में नहीं पड़ना चाहती थी। पिताजी ने कई बार आग्रह किया, तुमने आंखों में आंसू भर-भर के मुझे समझाया कि कन्या के लिए ठीक समय पर विवाह कर लेना उचित है, परन्तु मैंने स्वीकार नहीं किया। तुम्हारे दुःखों से मैं इतनी अधिक उद्विग्न होगई थी कि विवाह करने से डर लगने लगा था। पिताजी हमें छोड़कर चले गये, मुन्ना अभी बहुत छोटा था। तुम पर चिन्ताओं और आपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा और मैंने अनुभव किया कि मेरा अविवाहित रहना ही तुम्हारी मनोवेदना का कारण बना हुआ है। यह मुझ से न देखा गया। जो काम माता-पिता के समझाने से न हुआ, वह परिस्थितियों से लाचार होकर करना पड़ा। यह समझकर कि इससे तुम्हें सन्तोष होगा, मैंने विवाह कर लिया।

मुझे मालूम नहीं और लोग क्या कहेंगे, परन्तु मैं अपने दिल की बात तुम्हें बतलाती हूँ कि मैंने विवाह के पश्चात् अपने पत्नी धर्म का पालन करने की भरसक चेष्टा की। मैंने सदा यत्न किया कि मैं अपने पतिदेव को सब प्रकार से सन्तुष्ट करूं। उनकी इच्छा के अनुकूल बनूं और उनकी सेवा करूं। यह भाग्य का दोष है या मेरी समझ का, इसका निश्चय मैं नहीं कर सकती, पर यह असंदिग्ध है कि मैं उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकी। कभी-कभी मुझे ऐसा अनुभव होता था कि वह मुझे संसार में

॰मसे अधिक प्यार करते हैं, परन्तु अधिक समय ऐसा ही प्रतीत होता था कि वह मेरी प्रत्येक बात से असन्तुष्ट हैं; यहां तक कि मेरी अपने पास विद्यमानता से ही नाराज हैं। उनकी नाराजगी यहां तक बढ़ी कि एक दिन मुझसे कह दिया कि "तुम्हारा मरना भी अच्छा ही होगा। मेरे रास्ते का कांटा निकल जायगा।" भाभी, यदि मेरी शक्ति में होता तो मैं उसी समय पृथ्वी में समा जाती। मैंने मन-ही-मन पृथ्वी माता से प्रार्थना भी की कि मुझ निर्लज्जा को अपनी गोद में छिपा ले, पर उसने मेरी बात न सुनी। मेरे पुण्य ही इतने नहीं थे। फलतः उस समय मुझे जीवित रहना पड़ा, परन्तु मैंने मन-ही-मन संकल्प कर लिया था कि अब अधिक जीवित रहकर तुम्हारी चिन्ता और उनकी नाराजगी का कारण नहीं बनूंगी। जिनके मार्ग में आने वाले कांटों पर गद्दी बनकर बिछ जाना मेरा कर्त्तव्य था, वे मुझे कांटा समझें, इससे बड़ा दुर्भाग्य किसी स्त्री का क्या हो सकता है। मैं कल प्रातःकाल उसी संकल्प की पूर्ति के लिए जा रही हूँ। मुझे परमात्मा ने कर्त्तव्य-पालन का जो अवसर दिया है, उससे ॰ठाकर यदि मर जाऊं, तो भाभी, मुझे क्षमा कर देना। मैं तुम्हारी पुत्री हूँ; क्योंकि मैं आज तुमसे आज्ञा नहीं माँग सकी, परन्तु मेरी ॰श्वास करो, मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति आज भी वही अगाध प्रेम ॰श्रद्धा विद्यमान है, जो जीवन भर था। इस अंतिम समय में मेरी ॰त्मा से यही प्रार्थना है कि 'हे प्रभु, यदि मैंने इस अकिंचन जीवन ॰कोई एक भी भला काम किया हो, उसके फलस्वरूप मैं इतना ही ॰ाहती हूँ कि अगले जीवन में मुझे मेरी पुण्यमयी भाभी की गोद में उत्पन्न करना। अच्छा भाभी, अब मैं विदा होती हूँ तुम्हारे चरण छूकर ॰र पतिदेव को मनसा नमस्कार करके। उनसे मेरी इतनी प्रार्थना है कि मेरे सब अपराधों को क्षमा कर दें—क्योंकि मैंने अपनी इच्छा से उनका मार्ग निष्कण्टक कर दिया है।'

रामनाथ ने इस पत्र को पढ़कर केवल इतना कहा - "मैं यह तो नहीं चाहता कि तुम जीवित ही न रहो।"

